कृति

पद्मनंदि पंचविंशतिः अध्याय-3 ''अनित्यपञ्चाशत्''

प्रवचन

परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विरागसागर जी महाराज

प्रेरणा

पूज्य श्रमणी आर्यिका विशिष्ट श्री माता जी

सम्पादन

पूज्य श्रमणी आर्यिका विदूषी श्री माताजी

संकलन

पूज्य श्रमणी आर्यिका विश्वास श्री माता जी

प्रकाशन

श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ

बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

प्रसंग– परम पूज्य युगप्रमुख श्रमणाचार्य, राष्ट्रसंत, गणाचार्य श्री 108 डॉ. विरागसागरजी महाराज के ''राष्ट्रीय रजत आचार्य पदारोहण महोत्सव'' वर्ष 2016-17 के सुअवसर पर

कृति– पद्मनन्दि पञ्चविंशति : अध्याय 3 'अनित्यपञ्चाशत्'

प्रवचन– परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज

प्रवचन स्थल– हिम्मत नगर (गुज.), 2009

प्रेरणा– पूज्य श्रमणी आर्यिका विशिष्ट श्री माता जी

सम्पादन– पूज्य श्रमणी आर्यिका विदूषी श्री माता जी

संकलन– पूज्य श्रमणी आर्यिका विश्वास श्री माता जी

संस्करण– प्रथम, 1000 प्रतियाँ, सन् 2012
द्वितीय, नवम्बर 1000 प्रतियाँ, सन् 2016

पुण्यार्जक–

1. **संमति जनरल स्टोर**
   सब्जी मण्डी, स्टेशन रोड, भिण्ड - 477001 (म.प्र.)
   श्रीमान् अरुण, कमलेश, दीपाली, राहुल जैन

2. **श्रीमान् सुभाष-श्रीमती अनिता जैन, हलवाई खाना, भिण्ड (म.प्र.)**
   श्रीमान् गजेन्द्रप्रसाद, धीरजकुमार जैन, श्री सोनम जैन
   पाटेला रोड, फिरोजाबाद

मूल्य– **60.00 रुपये**

प्राप्ति स्थान– **श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ**
बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)

मुद्रक : **तिलोक प्रिंटिंग प्रेस**
मोहता अस्पताल के पास, मोहता चौक, बीकानेर-334005 (राज.)
मो. 09314962475

आगमचर्या चूड़ामणी-महिमावंत आचार्य
परम पूज्य गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज

भारत की पावन धरती भी, जिनके गीत सुनाती है,
चर्या की खुशबु हरपल ही, हम सबको महकाती है।
जिनके आदर्शों की महिमा, सारी जगसृष्टि गाती है,
ऐसे गुरुवर के चरणों में, जगती झुक-झुक जाती हैं।।

जी हाँ, समय-समय पर भारतीय वसुंधरा ने अनेकों महापुरुषों को जनम देने का सौभाग्य प्राप्त किया है। सम्प्रति युग की महान् विभूतियों में से एक अतिशय महिमावंत विभूति जो क्षितिज पर दैदीप्यमान आदित्य की तरह दमक रहे है जिनके बहुआयामी व्यक्तित्व को हम न तो कह सकते है, न लिख सकते है फिर भी सूरज को दीपक दिखाने की सूक्ति की तरह अल्प बयान कर रहे है उनके अनुपम जीवन चरित्र पर....

1. बुन्देलखण्ड की पावन धरा पर सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर तथा सिद्धक्षेत्र नैनागिरजी के मध्य बीना कटनी रेल्वे लाइन पर तथा सागर दमोह हाईवे के किनारे सुनार नदी के तट एवं अरावती पर्वत श्रृंखला के तट पर बसा पथरिया (जिला दमोह म.प्र.) नगर है, जहाँ पहले एक मंदिर तथा समाज के 40 घर थे, पर आज 7 मंदिर और 400 घर है।
2. परदादा - श्रीमान बंशीलालजी (गोला पूर्व- फुसकेलावंश के एक नक्षत्र थे, जिनके हरप्रसादजी श्री बाबूलालजी, श्रीजमना प्रसादजी पुत्र थे।

   दादा/पिता - श्रीमान् बाबूलाल-श्रीमती गुमानाबाई, (दादा-दादी) की पुत्री शांतिबाई (बुआ) एवं पुत्र कपूरचंदजी थे (वर्तमान - क्षु. विश्ववंद्यसागरजी हैं एवं पुत्रवधु-श्यामादेवीजी (समाधिस्थ आ. विशांतश्री माताजी) की कुक्षी से चार पुत्र श्री अरविन्दकुमार, विजयकुमार, सुरेन्द्रकुमार, नरेन्द्रकुमार/दो पुत्री श्रीमती मीना (नोहटा), श्रीमती विमला (सागर) ने जन्म लिया।
3. प्रथम पुत्र अरविन्द का जन्म 2 मई 1963 गुरुवार (वि. सं. 2020 वैशाख शुक्ल 9) को रात्रि 9:00 बजे हुआ था। आप ही कालान्तर में इस बुंदेली धरती के देवता परम पूज्य गुरुवर आचार्य विरागसागरजी के नाम से प्रसिद्ध हुए।
4. जब आप गर्भस्थ थे तब माँ को मुनियों को आहार देने, उनके सत्संग में रहने तथा तीर्थयात्रा करने के दोहले हुआ करते थे।

5. जन्म के बाद जब आप शैशव अवस्था में थे, तो हर किसी के साथ मंदिर जाते थे।

6. लगभग दो वर्ष की उम्र में आपने बिच्छु के साथ क्रीड़ा की थी।

7. लगभग तीन वर्ष की उम्र में आपने एक दिन हाथ में झाड़ू-लोटा ले अपनी माँ से कहा था- माँ मुझे पड़गाओ, मैं मुनि महाराज हूँ।

8. 8-9 वर्ष की उम्र में आपने माँ के लिए लकवा होने व जल जाने के समय बड़ी निष्ठा के साथ मातृ सेवा एवं अपने अनुजों को सम्हालने का महत्त्वपूर्ण दायित्व निभाया था।

9. प्रारंभिक प्रायमरी शिक्षा आपकी पथरिया में ही हुई। 10 वर्ष की उम्र में आपने श्री शांति निकेतन जैन संस्कृत विद्यालय कटनी में प्रवेश ले जैन धार्म के मूर्धन्य विद्वान पं. श्री जगनमोहन लाल जी, पं. धन्यकुमारजी, इन्दौर, पं. पद्मचंदजी, पं. हीराप्रसादजी, इन्दौर, पं. श्रुतसागरजी, शाहपुर आदि से चार भाग, रत्नकरण्डक श्रावकाचार, तत्वार्थ सूत्र, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, गोम्मटसार, सर्वार्थसिद्धि जैसे ग्रंथों का अध्ययन कर परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की थी। साथ ही पं. दादूरामजी त्रिपाठी से संस्कृत व्याकरण (लघु सिद्धान्त कौमुदी एवं मध्य सिद्धान्त कौमुदि) न्याय, दर्शन तथा साहित्य में निष्णातता पायी थी।

10. 14, 15 वर्ष की लघु वय में आप ट्यूशन पढ़ते नहीं किन्तु पढ़ाते थे।

11. लगभग 16 वर्ष की उम्र में आपने प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसागरजी से शूद्रजल का आजीवन त्याग एवं ब्रह्मचर्य व्रत लिया।

12. आप ब्रह्मचर्य अवस्था में केवल 20 घंटे रहे पश्चात् आपकी 20 फरवरी 1980 (वि. सं. 2036 फाल्गुन शुक्ल 5) को बुढार म.प्र. 16 वर्ष (16 वर्ष 9 माह 17 दिन 20 घन्टे) माह की उम्र में लगभग सायं 4:50 पर क्षुल्लक दीक्षा हो गई।

13. क्षुल्लक अवस्था में आपको गुरुदेव सन्मतिसागरजी के ही कमरे में रहने, प्रतिदिन उनके ही साथ आहार करने एवं गुरु सेवा का निकट से सौभाग्य मिला।

14. आपने प.पू. गुरुदेव की आज्ञा से कारजा (लाड) में लगातार दो वर्ष तक सिद्धान्त प्रवेशिका, गुणस्थान दर्पण, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, पंचाधयायी, व्याकरण, सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रंथो की पढ़ाई की। ब्र. माणिकचंदजी, पं. धन्यकुमार भोरे, पं. विष्णु साव जी, ब्र. श्री मञ्जाताई, श्रीमती विजयाताई पढ़ाने में प्रमुख थे।

15. इसी बीच कर्मोदय से आपको तपेदिक की बीमारी हो गई। जो सेकन्ड स्टेज पर पहुँच चुकी थी। डॉक्टरों, वैद्यों ने इंग्लिश दवा लेने का आग्रह किया, पर आप अशुद्ध दवाएँ, इंजेक्शन, कैप्सूल आदि नहीं लेना चाहते थे। विद्वानों, श्रेष्ठियों तथा समाज का विशेष आग्रह था किन्तु बार-बार मना करने पर जब कोई न माना तो आपने चन्द्रप्रभ भगवान के समक्ष भीष्म प्रतिज्ञा लेते हुए कहा कि - हे प्रभो! मैं अपने व्रतों में दोष नहीं लगने देना चाहता हूँ अत: देशी दवा ही लूँगा इग्लिश नहीं, यदि ठीक हो गया तो शीघ्र ही निर्ग्रंथ दिगम्बर दीक्षा ले लूँगा अन्यथा समाधि लूँगा आदि प्रतिज्ञा का इतना अच्छा प्रभाव पड़ा कि आप थोड़े ही दिनों में पूर्णत: स्वस्थ हो गये।

16. जब मुनि दीक्षा अतिशय क्षेत्र कचनेर में प.पू. आचार्य श्री विमलसागर जी ससंघ विराजमान थे, अत: आप उनके दर्शनार्थ गये। साथ में ब्र. श्री कुमार भी थे। पूज्य आचार्य श्री ने दोनों को देखते हुए

कहा- ये दो बाल वत्स दीक्षार्थ आये हैं, इनकी यहाँ दीक्षा होगी। दोनों चौंके जरूर, पर कहा कि हम लोग दर्शनार्थ आये हैं। पूज्य आचार्य श्री ने कहा कि भले ही दर्शनार्थ आये हो, पर दीक्षा लेकर ही जाओगे और ऐसा ही हुआ 20 वर्ष (20 वर्ष 7 माह 6 दिन 18 घण्टे) की उम्र में 9 दिसम्बर 1983 (वि. सं. 2040 मिगसर शुक्ल 5) दोपहर 3:00 बजे आपकी मुनि दीक्षा एवं श्री कुमार की ऐलक दीक्षा हुई। दोनों का नाम क्रमशः मुनि विरागसागर तथा ऐलक सिद्धान्त सागर रखा गया।

17. आपने दीक्षा-शिक्षा गुरुमुख से द्रव्यसंग्रह, परीक्षामुखसूत्र, कातंत्रव्याकरण, मूलाचार, भगवतीआराधना, पुरूषार्थ सिद्धुपाय (लाल राम कृत टीका) न्यायदीपिका प्रमेय रत्नमाला, प्रमयकमलमार्तण्ड आदि ग्रंथ पढ़े।

18. प.पू. वात्सल्य दिवाकर गुरुवर आ. श्री विमलसागर जी के साथ सन् 1987 का वर्षायोग किया तथा प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसागर जी के साथ 1980, 1981 तथा 2007 के वर्षायोग क्रमशः दुर्ग, नागपुर एवं उद्गांव में सानंद किये।

19. आप क्षुल्लक अवस्था में जब तक तपस्वी सम्राट आचार्य सन्मतिसागर जी के साथ रहे प्रायः उन्हीं के कमरे में रहते थे तथा उन्हीं के साथ आहारार्थ जाया करते थे।
2007 के वर्षायोग में तो एक साथ परिक्रमा तथा एक साथ पूजा होती थी। कार्यक्रमों तथा नगर प्रवेश या विहार के समय तो दो थालियों में एक साथ पाद प्रक्षालन होते थे। दोनों आचार्य एक ही पाटे पर बैठते थे। वार्षिक प्रतिक्रमण पूज्य आचार्य श्री ने समस्त संघ को पूज्य आचार्य श्री विरागसागर जी के सान्निध्य में करने का आदेश दिया था तथा प्रायश्चित्त भी पूज्य आचार्य विरागसागर जी से ही दिलाया था।

20. आपके लिये प्रायः 10 आचार्यों ने आचार्य पद की घोषणाएँ की। अंत में प.पू. आचार्य श्री विमलसागर जी एवं आचार्य सन्मतिसागर जी महाराज की आज्ञा से तथा आचार्य सुमतिसागर जी द्वारा प्रेषित नूतन पिच्छि एवं पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी ने आशीर्वाद भेजा। शताधिक विद्वानों एवं पंद्रह हजार के जनसमूह के बीच सिंहासन सहित उठाकर स्वस्तिक पर विराजमान कर (वि. सं. 2049 कार्तिक शुक्ला 13) 8.11.1992 में 30 वर्ष (29 वर्ष 6 माह 5 दिन 18 घण्टे) की उम्र में लगभग तीन बजे सायं द्रोणगिरी सिद्धक्षेत्र में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया था।

21. जैन धर्म के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथाधिराज षट्खण्डागम-धवला टीका की 16 पुस्तकों की द्रोणगिरी, टीकमगढ़, शाहगढ़, बीना, कटनी, सागर, ललितपुर, छतरपुर, पन्ना, देवेन्द्रनगर, सतना में सारगर्भित वाचनाएँ हुईं तथा ग्रंथाधिराज कषायपाहुड की 16 पुस्तकों में से चार पुस्तकों की जबलपुर, उस्मानपुरा (गुजरात), तारंगाजी (गुज.), ऋषभदेव जी (राज.), बांसवाड़ा (राज.), केकड़ी (राज.) में वाचनाएँ हुईं। जिसे देख मूढ़विद्री को भट्टारक श्री चारुकीर्ति ने आपको सिद्धांतरत्न की उपाधि दी थी।

22. विभिन्न स्थानों पर अनेकों विद्वत गोष्ठियाँ हुईं। जिनमें अधिकतम शताधिक विद्वानों ने भाग लिया।

23. आपने आचार्य कुन्दकुन्द देव कृत बारसाणुवेक्खा ग्रंथ पर 'सर्वोदया' नामक ग्यारह सौ पृष्ठीय संस्कृत टीका लिखी, जिस ग्रंथ का प्रकाशन दो भागों में श्री भारतीय ज्ञानपीठ से हुआ।
इस ग्रंथ पर शताधिक विद्वानों की संगोष्ठी हुई जिसमें लगभग 65 विद्वानों के आलेख वाचन पर सर्वोदया टीका अनुशीलन ग्रंथ का (400 पृष्ठों में) प्रकाशित हुआ।

24. सर्वोदया टीका लेखन पर जोराष्ट्रियन ओपन यूनिवर्सिटी, मुम्बई द्वारा आपको डॉक्ट्रेट उपाधि से सम्मानित किया गया।
25. तथा आचार्य कुन्द-कुन्द देव द्वारा ही रचित रयणसार ग्रंथ पर भी आपने लगभग 1300 पृष्ठीय - रत्नत्रयवर्धिनि संस्कृत टीका लिखी, जिसका प्रकाशन अंतिम चरण पर है।
26. आप वर्तमान में आचार्य श्री कुन्द-कुन्द के पाहुडद्वय पर भी 'श्रमण प्रबेधिनी' संस्कृत टीका लिख रहे हैं।
27. आपने आचार्य कुंदकुंद कृत प्राकृत भक्तियों में शेष रही प्राकृत चेईय भत्ति, णिव्वाण भत्ति, नंदीसर भत्ति, अरहद् भत्ति, संति थुति, संति भत्ति, समाहि भत्ति, गुरूभत्ति लिखी हैं तथा अनेक पाईयवत्ता, पाईय, कहा लिखी हैं।
28. आपके शोधात्मक ग्रंथों में शुद्धोपयोग, सम्यग्दर्शन, आगम चक्खू साहू, परम दिगम्बर जैन मुनि, सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म, तीर्थंकर वर्धमान महावीर, तीर्थंकर दिव्य दर्शन, सल्लेखना से समाधि, व्यसन विचार, जिनेन्द्र दर्शन - जिनेन्द्र पूजन, श्रमण आहारचर्या आदि कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। वैसे तो लगभग शताधिक कृतियाँ हैं।
29. स्कूल, कॉलेज, जेल, न्यायालय, सार्वजनिक चौराहे आदि पर आपके मार्मिक प्रवचन हुए। समय-समय पर आपके दर्शनार्थ भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम, श्रीमती प्रतिभा पाटिल, भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री एच.डी. देवगौड़ा, पूर्व उपप्रधानमंत्री श्री लालकृष्ण आडवाणी, मुख्यमंत्री श्री दिग्विजयसिंह (म.प्र.) श्री टी.एन. (कर्ना.), श्री अशोक गहलोत (राज.) जस्टिस्ट श्री एन.के. जैन, श्री ए.के. जैन, श्री जनार्दन व्यास, अजमेर, चीप जस्टिस श्रीमति विमला जैन एवं अनेक मंत्री, सांसद, विधायक व जज पधारे।
30. सर्वधर्म सम्मेलनों में प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य, श्वेताम्बराचार्य, बौद्धाचार्य, शंकराचार्य, सिक्ख, दरगाह से सदर, ईसाई, फादर, नन तथा प्रजापति ब्राह्मीकुमारी आश्रम की बहिनें पधारी।
31. आपने अनेकों स्थानों पर धार्मिक शिक्षण एवं प्रशिक्षण शिविर लगाये हैं।
32. आपकी प्रेरणा से भिण्ड में प्रायमरी मिडिल स्कूल, पन्ना में प्रायमरी हाई स्कूल, ब्रजपुर में मिडिल स्कूल, बीना में मिडिल बी. एड. कॉलेज चल रहे हैं।
33. आपने अभी तक मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडू, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड, गुजरात इन दस प्रान्तों में स्थित समस्त सिद्ध अतिशय तीर्थ क्षेत्रों की पैदल-पैदल लगभग सत्तर हजार (70,000) कि.मी. की यात्रा कर ली है। आपने अभी तक 34 वर्षायोग किये हैं। **क्षुल्लक अवस्था** में (4) 1980 से दुर्ग (छ.ग.), नागपुर (महा.), कारंजा (महा.), कारंजा (महा.) **मुनि अवस्था में** (9) 1984 से भावनगर (गुज.), पांचवा (राज.), निमाज (राज.), जयपुर (राज.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), टीकमगढ़ (म.प्र.), अतिशय क्षेत्र श्रेयासगिरी (म.प्र.), सिद्ध क्षेत्र द्रोणगिरी (म.प्र.), **आचार्य अवस्था में** (21) 1993 से अ.क्षे. श्रेयांसगिरी (म.प्र), बीना (म. प्र.), ललितपुर (उ.प्र.), जबलपुर (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), भिण्ड (म.प्र.), सि. क्षे. सम्मेद शिखर जी (झारखण्ड), गया (विहार), श्रेयांसगिरि (म.प्र.), भिलाई (छ.ग.), कारजा (महा.), अ.क्षे. मूढविद्रि (कर्ना.), अ.क्षे. मेलचित्तामूर (तमिलनाडू), ऊदगाँव (महा.), मुम्बई (महा.), गांधीनगर (गुज.), लोहारिया (राज.), अजमेर (राज.), जयपुर (राज.), इंदौर (म.प्र.)

34. प.पू. दीक्षा सिद्धहस्त, समाधि सम्राट, गणाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज द्वारा तथा उनके शिष्यों द्वारा प्रदत्त दीक्षाएँ एवं समाधि विवरण।

पदस्थ	कुल दीक्षित	निर्यापकाचार्य समाधि	समाधि सहयोग	स्वास्थ्य लाभ	अन्य दीक्षित	बहिस्कृत	वर्तमान	उपसंघ	दीक्षित	समाधिस्थ	वर्तमान
श्रमणाचार्य	8						8	8			
श्रमण मुनि	62	20	5	7	1	1	33	10	37	5	32
गणनी आर्यिका	4		2				4	4			
श्रमणी आर्यिका	54	9	8	4	1	3	38	4	26	12	14
ऐलक	6			1			3		1		1
क्षुल्लक	30	1	2	2	3	2	20	3	22	3	19
क्षुल्लिका	19	3		2		2	14		8	3	5
ग्र. व्रती श्रावक	5000	2	3								
गृ. व्रती श्राविका	8000	12	2								
पशु-पक्षी	22										
योग	183	47	22	16	5	8	121	29	94	23	71

कुल दीक्षित शिष्य-प्रशिष्य= 183+94 = 277

कुल समाधिस्थ = 69 तथा अनेक पशु-पक्षी तिर्यंच

वर्तमान = 121+71 = 192 शिष्यों द्वारा = 23 = 89

यह देख, गणधराचार्य श्री कुन्थुसागरजी महाराज ने आपको 'श्रमणरत्नाकर' उपाधि से संबोधा।

35. **वात्सल्य** - आप इतने वात्सल्य स्वभावी हैं कि आपकी शरण में आबाल-वृद्ध सभी साधक आश्रय चाहते हैं।

36. **दिशानिर्देशन** - आप प्राय: प्रतिदिन अपने शिष्यों को प्रशिक्षण भी देते हैं तथा यथा विधि प्रोत्साहन व सहयोग करते हैं। प्रतिदिन शास्त्रीय शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा भी देते हैं। यही कारण है कि जो एक बार समर्पित हो गया वह आपसे पृथक् नहीं रहना चाहता है।

37. **शिक्षा** - आपके संघ में सभी साधुओं के मध्य 3 बार स्वाध्याय होता है। विभिन्न आगम ग्रंथों की क्लास भी लगती है तथा पठित विषय की लिखित व मौखिक परीक्षा भी होती है। आप आगम

की गूढ़तम बातों को सरलतम तरीके से समझाते हैं। यही कारण है कि श्रवण बेलगोला के भट्टारकजी ने आपके संघ को चलती-फिरती युनिवर्सिटी कहा था।

38. **अनुशासन** - आपके संघस्थ साधुगण अपने क्रमिक नं. से ही उठना-बैठना-चलना सोना आहारचर्या को जाना आदि करते हैं। विहार में भी सभी एक साथ चलते हैं। कोई भी सामग्री की आवश्यकता हो तो बिना गुरुआज्ञा से नहीं लेते-देते हैं, गुरु से ही माँगते हैं। अन्य से नहीं, गुरु भी उचित समझ शीघ्र ही उसे आपूर्ति करा देते हैं।

39. **संघ में** - संघस्थ साधुगण प्रत्येक साधक की अस्वस्थता में सेवा व वैय्यावृत्ति करते, आहार कराने जाते हैं, पाठ सुनाते हैं। आवश्यक क्रियाओं को कराते हैं।

40. **अनुशासन** - संघ में माता-बहिनें जरूर रहती हैं पर वे सभी अपनी-अपनी मर्यादाओं में रहती हैं। स्वतंत्र रूप से किसी महाराजों से या महाराज माता-बहिनों से चर्चा, कोई भी सामग्री का आदान-प्रदान नहीं कर सकते हैं। संघ में मंत्र-तंत्र नहीं होता है। एक बार किसी साधक ने उक्त मर्यादा का उल्लंघन कर दिया। वे माता बहिनों से स्वतंत्र चर्चाएँ करने लगे, झूठी दैविक घोषणाएँ करने लगे कि 'यहाँ मंदिर गड़ा हैं, मूर्ति गड़ी हैं, धन गड़ा हैं, अनेको देवों ने मुझ से कहा है छह माह में निकलेगा आदि। पर आज तक नहीं निकला महाराज एवं माताएँ मंत्र, तंत्र, गठा, ताबीज देने लगे तब पूज्य आचार्य श्री ने प्रथम तो उन सबको अनेकों बार समझाया कि ऐसा न करें फिर डाँटा, जिससे वे रूष्ट हो गये तथा उन लोगों ने ग्रुप बना लिया और पूज्य आचार्य श्री के विरोध में बात करने लगे। उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे- एक ब्रह्मचारी भी इस ग्रुप में शामिल हुए। प. पू. आचार्य श्री ने भिण्ड में सभी की शंकाओं का समाधान किया तथा उठाई गई चर्चाओं का प्रमाण माँगा, पर वे एक भी प्रमाण न दे सके बल्कि हम भ्रम में थे, आवेग में थे, हमें क्षमा किया जाये आदि कहते हुए उन सबने पूज्य आचार्य श्री से सभी संघ के तथा समाज के प्रमुख लोगों के समक्ष क्षमा माँगी तथा प्रायश्चित्त माँगा और कहा कि यदि प्रायश्चित्त नहीं मिला तो हम समाधि ले लेंगे आदि। अतः उन सबको प्रायश्चित्त दिया गया। पर कालान्तर में पुनः यथा, तथा हो गये, अतः उन्हें पुनः समाधान के लिये बुलाया गया। जब वे नहीं आये तब सर्वसंघ ने उन्हें संघ से बहिष्कृत कर दिया और उनके द्वारा उठाई गई शंकाओं का समाधान श्रेयांसगिरी में सप्रमाण खुले मंच से किया गया और इसके बाद संघ ने पूर्ण माध्यस्थता रख ली, पर उनका प्रतिशोध और भड़कता गया लेकिन संघ मध्यस्थ रहा। समस्त समाज को उद्वेलित करने वाले भिलाई के अपहरण काण्ड में तो प.पू. आचार्य श्री ने 36 घंटे की अखण्ड ध्यान साधना के द्वारा अग्नि परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त की। फिर भी उक्त लोगों ने झूठा मायाजाल रचने का प्रयास किया, पर उसका खण्डन जब उसी प्रमुख पात्र ने कर दिया तब फिर वे शांत हुए लेकिन आचार्यश्री ने कहीं भी अनुशासन शिथिलता में समझौता नहीं किया। यदा-कदा और भी ऐसे प्रसंग आये, पर पूज्य आचार्य श्री अडिग रहे, तब कहीं समग्र समाज ने आचार्य श्री को घनघोर उपसर्ग विजेता के रूप में पाया। यद्यपि कतिपय ईर्ष्यालु लोगों ने भी नाजायज फायदा उठाना चाहा, पर ''उपसर्ग पर उत्कर्ष की यात्रा'' ने सभी को शांत कर दिया। इस यात्रा में अनेकों वरिष्ठ आचार्यों, विद्वानों श्रेष्ठियों तथा भक्तों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा,

जिसका हमें गौरव है। समग्र छत्तीसगढ़ समाज में 'उपसर्ग विजेता' तथा कारंजा समाज ने 'चारित्र शिरोमणी' उपाधि से सम्मानित किया।

41. **व्रत** - 13 कर्मदहन, भक्तामर, णमोकार पैंतीसी, चारित्रशुद्धि, कर्मनिर्जरा, षड्रसी, नीतिसार, वचनगुप्ति, प्रत्याख्यान, समवशरण, चौसठ ऋद्धि, दर्शन विशुद्धि, जिनगुण संपत्ति आदि।
42. **जाप** - वर्तमान 24 तीर्थंकर, व्रद्र, शांतिमत्र, णमोकार मंत्र आदि अनेक मंत्रों की 1 करोड़ 90 लाख से अधिक जाप कर चुके हैं।
43. **त्याग** - दही, तेल, सिंघाडा, बेर, करोंदा, टिंडा, जामुन, पपीता, कटहल, लबेडे, कद्दू, तरबूज, खिन्नी, आलुबुखारा, अंगीठा, फालसा, स्ट्रावेरी, चेरी, भिंडी, रामफल, सीताफल, खुरवानी, कुंदरू तथा मटर के अलावा सभी प्रकार की फली एवं हरी पत्ती का त्याग हैं- (औषधि के रूप में छूट)
44. **विशेष नियम** - कूलर, पंखा, ए.सी., मोबाईल, नेलकटर, लेपटाप त्याग।
45. आपने 1008 दिन तक सहस्रनाम का पाठ किया, 48 दिन तक भक्तामर का पाठ किया, 7-7 दिन में 3 बार पद्मपुराण पढ़ा, 5 दिन में 1 बार पाण्डवपुराण पढ़ा, 11 दिन में 1 बार हरिवंश पुराण पढ़ा, 3 दिन में 1 बार वर्द्धमान चरित्र पढ़ा, 3 दिन में 1 बार श्रेणिक चरित्र पढ़ा
46. **चमत्कारिक प्रभाव** - देवों द्वारा वैय्यावृत्ति, भिण्ड, **पाटे पर चरण उभरे**-सागर, कारंजा, इचलकरंजी (दो बार), टीकमगढ़ **जमीन पर चरण उभरे** - कुरुंदवाड़ी, लोहारिया (तीन बार) अजमेर (दो बारा) **थाली में चरण उभरे** इंदौर में लगभग 5-6 जगह **चरणोदक का चमत्कार** -कुएँ में पानी आया, आँखों की रोशनी आई, अनेकों लोगों के रोग शमन हुए।

47.	**पंच कल्याणक**	-	गजरथ लगभग 55
48.	**वेदी प्रतिष्ठा**	-	लगभग 40
49.	**विशेष विधान**	-	150
50.	**तीर्थोद्धार नव निर्माण**	-	75 जगह
51.	**कई बार आपने**	-	ज्येष्ठ वैशाख माह की कड़ी धूप में खुली छत पर सामायिक की
	अनेकों बार	-	सामायिक में घनघोर पानी बरसता रहा, पर आप विचलित नहीं हुए।
	अनेक बार	-	खेत की मिट्टी में शयन किया।
	अनेक बार	-	आपने 6-6 घंटे की सामायिक की।
	अनेक बार	-	शमशान घाटों में सामायिक की।

52. **जंगलों में साधना** - पांचवा, किसनगढ़, निवाई, सम्मेद शिखर जी, राजगिरी शाहगढ़, डेरापहाड़ी (छत्तरपुर) जयपुर (चूलगिरी), सोनागिर जी, श्रेयांसगिरी, द्रोणगिरी, नैनागिरी जी आदि तथा जंगलों में विहार करते समय सर्प, बिच्छू, जंगली भैंसे, रोझ, नील गाय, हिरण आदि जानवर अनेक बार मिले, पर आप अपने पथ से विचलित नहीं हुये।
53. अनेकों बार आपकी व्रतपरिसंख्यान तप में विधि नहीं मिलने से उपवास हुए यथा - एककलश,

तीन वादाम, मिट्टी का कलश, चीकू, अनार, तीन मिट्टी के कलश, पानी से भरा कलश, रंगोली, पुष्पराज आदि।

54. प.पू. आचार्य भरतसागर जी की समाधि के पश्चात् पट्टाचार्य पद के लिये प्रस्तावित किया गया, पर आपने लेने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसागर जी ने भी औरंगाबाद एवं उद्गांव में चर्चा के दौरान पट्ट की बात कही तथा संघस्थ साधुओं को वार्षिक प्रतिक्रमण एवं प्रायश्चित्त दिलाया तथा समाधि के बाद संघस्थ साधुओं व संघपतियों ने पट्ट पर विराजमान होने की बात कहीं पर आपने बड़ी नम्रता से कहा- मेरा इतना विशाल संघ है फिर मैं पूज्य आचार्य श्री के संघ को कैसे सम्हाल सकूँगा। किसी अन्य सुयोग्य साधु का चयन करें आदि। यह थी आपकी निस्पृहता। जहाँ पद के लिये लड़ाई होती है वहाँ आपने अलिप्ता दिखाई।

55. कुन्थुगिरी में विभिन्न संघों के लगभग 250 साधु-साध्वी ने, श्रवणबेलगोला में विभिन्न संघों के लगभग 250 साधु-साध्वी ने, वरूर में विभिन्न संघों के लगभग 100 साधु-साध्वी ने, ऊदगाँव में विभिन्न संघों के लगभग 80 साधु-साध्वी ने आपके संघ को बहुमान दिया गया।

56. प.पू. तपस्वी सम्राट आचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज के सान्निध्य में आपका ''रजत मुनि दीक्षा दिवस'' सम्पूर्ण संघ एवं समाज की उपस्थिति में बड़े ही धूमधाम से मनाया तथा पूज्य आचार्य श्री सन्मतिसागरजी महाराज ने स्वयं का पिच्छी-कमण्डल प.पू. गणाचार्य श्री विरागसागर को भेंट किया।

57. स्वर्ण जयन्ति महोत्सव पर आपके डेढ़ सौ (150) से अधिक शिष्य-प्रशिष्यों का वृहद् यतिसम्मेलन, युग प्रतिक्रमण जयपुर में हुआ। 50 से अधिक त्यागी व्रती थे। लगभग 10,000 लोगों ने बड़ी चौपड़, जयपुर में अगवानी की, जिसमें 11 हाथी, 11 ऊँट, 21 घोड़े, 11 बैंड, 51 बग्गीयों तथा हेलीकोप्टर ने पुष्प वर्षा की। 7000 इन्द्र-इन्द्राणियों ने कल्पद्रुम महामण्डल में भाग लिया। लगभग 25,000 लोग लगातार 6:00 घंटे चले युग प्रतिक्रमण में अनुशासित रूप में शामिल थे। अखिल भारतवर्षीय विद्वत गोष्ठी में शताधिक विद्वानों ने भाग लिया। यह एक ऐसी गोष्ठी थी जिसमें विद्वत् परिषद, शास्त्री परिषद, ऋषभदेव परिषद् तथा टोडरमल स्मारक के प्रमुख सभी विद्वान शामिल थे। पू. आचार्य श्री के द्वारा लिखी गई सर्वोदया संस्कृत टीका का विमोचन राजस्थान के पूर्व मुख्यमंत्री अशोकजी गहलोत, केन्द्रीय मंत्री प्रदीपजी आदित्य ने किया था। इस आयोजना में महासभा, तीर्थक्षेत्र कमेटी एवं महासमिति के प्राय: सभी पदाधिकारी सम्मिलित हुए थे। आयोजना के आयोजक श्री मालचंदजी रावका ने इस सारे आयोजन को भवानी निकेतन में 4 एकड़ की जमीन पर ''विराग नगर'' के रूप में आयोजित किया था जिसमें 80 x 150 के 9 बड़े-बड़े डोम थे, 15 x 12 के 90 प्लाई के कमरे साधु-संघ के लिये थे, 15 x 12 के 90 चौके के लिये कमरे थे, 15 x 12 के 250 विशिष्ट यात्री रूम थे, 15 x 12 के 50 ए.सी. रूम थे, 100 यातायात बसें थी, 1000 कर्मचारी थे, 200 सुरक्षाकर्मी थे, 50 लेस पुलिस थी। 2 पुलिस चौकी थी, 80 वायरलेस थे, 50 सी सी कैमरे लगे थे। चौकी की मर्यादित सामग्री के 3 स्टोर रूम थे, जिनकी बची सामग्री दूसरे दिन जनरल भोजनालय में भेज दी जाती थी और उसमें शुद्ध ताजी सामग्री रखी जाती थी। कार्यक्रम में लगभग 10 मंत्री एवं 20 विधायक आये। प्रतिदिन लगभग 50 हजार लोग भोजन करते थे। जिसमें नौ रथ थे। कल्पद्रुम विधाान में 150 पुजारी तथा 100 विद्वान् थे।

58. पू. गुरुवर के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से प्रभावित होकर साहित्यकार सुरेश सरल जी ने 'निस्पृही संत', प्रो. उदयचंदजी, उदयपुर ने प्राकृत महाकाव्य 'विरागसेतु', श्री ज्ञानचंद जी पिडरूआ ने 'विराग काव्याजंलि' काव्य, श्रमणी आर्यिका विविक्त श्री जी ने 'घटनायें ये जीवन की', श्री कांतकुमार जी करूण ने 'विरागसागर की उर्मिया', पं. श्री कमलकुमारजी छतरपुर ने कमल से महाकमल, एकांकी श्रीमति माधुरी जैन ने 'दिगम्बरत्व के चतेरे' आदि जीवन की झांकियों को लेखनी से साहित्य के रूप में लिपिबद्ध किया हैं तथा श्रीमती अल्पना जैन (ग्वालियर) एवं श्रमणमुनि श्री सुव्रतसागर जी महाराज भी ऐसी ही कृतियों का आलेखन कर रहे हैं।

59. आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के ऊपर लोकेश खरे ने पी.एच.डी. कर डॉक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की है।

60. भारत देश के प्रमुख 10 प्रांतों में ''अहिंसा शाकाहार एवं व्यसनमुक्ति'' अभियान को सफलतम चलाया है तथा जिसके तहत लगभग 10 लाख से भी अधिक लोग अपने को व्यसनमुक्त एवं शाकाहारी तथा अहिंसक मानने लगे हैं।

61 आपने अपनी अचिन्त्य साधना के फलस्वरूप ही आमेर (जयुपर) में यक्षरक्षित भूगर्भ स्थित 200 जिन प्रतिमाओं को एवं 63 यंत्रों के दर्शन कराये हैं।

62. आपकी प्रेरणा से औषद्यालय, स्कूल, कॉलेज, विराग विद्या पीठ साहित्य प्रकाशन, पत्रिका तथा अनेक विद्वत, प्रतिभा एवं साहित्य पुरस्कार दिये गये है।

63. आपकी प्रेरणा से द्रोणगिरी, श्रेयांसगिरी, मेलचित्तामूर, डेरापहाड़ी, वरासो क्षेत्र, वरई, सावँर, भिण्ड़ आदि प्राचीन क्षेत्रों का जिर्णोद्धार करवाया है।

64. आपके संघ में जो भी चर्या सम्पन्न होती है वे सभी आगामिक तथा गुरु परम्परा से चलायी आई है यथा

संघ की आगमिक चर्या एवं गुरु परम्परा

(I) **यज्ञोपवीत पहनवाना** - (अ) आदिनाथ भगवान ने जनेऊ धारण किया- आ.पु. 16/235।

(ब) ऋषभदेव द्वारा भरतचक्रवर्ती का जनेउ संस्कार - आ.पु. 15/164, 198।

(स) भद्रबाहु स्वामी के उपनयन संस्कार - पुण्यास्रवकथाकोश पृ. 215।
तिलोयपण्णत्ति, उत्तरपुराण, गुरुपरम्परा आदि (विशेष दे. श्रमण आहार चर्या)

(II) **चंदोवा लगवाना** - जिसके ऊपर चन्द्रोपक (चंदोवा) लगा है, ऐसी शुद्ध भोजनशाला मेंमुनि को ले जाकर आहार करावे धर्मसंग्रह श्रावकाचार 78[1]।
पुरुषार्थानुशासन श्रावकाचार174[2], प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 20/225[3], क्रियाकोश[4], गुरुपरम्परा आदि।

(III) **रात्रि भोजन (आलू-प्याज) आदि त्याग करवाना**- अव्रती देवों से चन्द्रगुप्तादि मुनियों ने आहार लिया तो उन्हें प्रायाश्चित दिया गया।भद्रबाहु चरित्र धत्ता 20 पृ. 40-41[1], पुण्यास्रवकथाकोश पृ. 228[2]।

(IV) **संघ में आर्यिका दीक्षा**- सीता, रुक्मणी, कुंती, द्रोपदी, सुभद्रा आदि ने दीक्षा लेकर.... प्रवचनसार ता. वृ. गा. 224-8[1]। तत्वार्थराजवार्तिक 7/16[2], मूलाचार गा. 911, 190[3], उत्तरपुराण 29/212[4],आदिपुराण 24/15[5], कार्तिकेयानुप्रेक्षा 360-361[6], वरांगचरित्र31/2[7], सुदर्शनचरित्र5/87-88, 11/89[8], हरिवंशपुराण[9], गुरुपरम्परा[10] आदि।

(V) **संघ में आर्यिका नवधाभक्ति (पूजा)** - आर्यिका को विधि (नवधाभक्ति) पूर्वक आहार दिया- उत्तरपुराण 172/498[1]। आदिपुराण 24/15[2], श्रमणसंघ संहिता पृ. 241[3], दान शासन पृ. 99[4], पद्मपुराण113/40, गुरुपरम्परा आदि।

(VI) **क्षुल्लकादि के पादप्रक्षालन** - श्रीकृष्ण ने क्षुल्लकधारक नारद के पादप्रक्षालन किये-पद्मुम्नचरित्र सर्ग 3 श्लोक 112[2]। पद्मपुराण 102/3[2], गुरुपरम्परा आदि।

(VII) **क्षुल्लकादि के अर्घ चढ़ाना**- कोटीध्वज राजा ने प्रियधर्म क्षुल्लक को अर्घ चढ़ाया-चंद्रप्रभुचरित्र टीका सर्ग 6 श्लोक 77,78[1]। शांतिपुराण 1/91-92[2], गुरुपरम्परा श्रावक धर्म टीका प्रदीप - 277 आदि।

(VIII) **चतुर्विध संघ साथ रहता है**- तीर्थंकर समवशरण वर्णन[2], वरांगचरित्र31/6[2], सुदर्शन चरित्र5/87-88[3] आचार्य कुन्दकुन्द परिचय[4], गुरुपरम्परा आदि।

(IX) **वाहनादि से लाया गया पानी आहार में नहीं लेते**- गुरुपरम्परा एवं गुरुआज्ञा।

(X) **हीनाधिक आंगोपांग वालों से आहार नहीं लेते**- अंधा या जिसे कम दिखता है वह आहार नहीं दे सकता। मूलाचार 463-475 दायक दोष[1]। प्राचीन संस्कृत विधान[2], गुरुपरम्परा आदि।

ऐसे आगमिक पद्धति एवं गुरुपरम्परा से चलने वाले एवं अपने शिष्यों को चलाने वाले आगमचर्या चूड़ामणि गुरुवर अनेक गुणों से सम्पन्न बहुआयामी प्रतिभाओं के धनी सम्प्रति एक मात्र ऐसे वात्सल्यस्वभावी आचार्य हैं जो सभी साधु-संतों से मिलते ही नहीं अपितु अनुपम ऐसा अपनत्व-प्रेम बांटते हैं कि सभी उनके हो जाते है आप कभी समाज को पथंवाद, संतवाद, परम्परावाद, साधुवाद, मंदिरवाद आदि में नहीं बांटते अपितु सभी को एकता-संगठन, सभी के प्रति आदर-सम्मान के सूत्र बांटते हैं। ऐसे संतों में श्रेष्ठ, ज्येष्ठ गुरुवर को पाकर समाज, नगर, प्रांत, देश क्या सारा विश्व गौरवान्वित है। सच गुरुवर जैसे संत ही इस ध रा पर सच्चे भगवंत है। तभी सारे प्राणी उनके चरणों में विनयवंत है।

❖ ❖ ❖

श्रीमान् वंशीलाल जी जोरतला
(गोला पूर्व फुसकेले वंश)

- श्री हर प्रसाद जी
- श्री बाबू लाल जी, श्रीमती गुमाना बाई
  - श्रीमती शांति देवी, श्री हजारी लाल जी
    - श्री राजेन्द्र कुमार जी
    - श्री जय कुमार जी
    - श्रीमती हेमलता जी
    - श्री देवेन्द्र जैन
    - श्री बबलू जैन
    - श्री सहगल
  - श्री कपूर चंद जी (क्षु. विश्ववंद्य सागर जी), श्री मति श्यामा देवी (समाधिस्थ आर्यिका विशान्त श्री माता)
    - श्री अरविन्द कुमार (प.पू.आ. श्री विराग सागर जी)
    - श्री विजय कुमार, श्रीमती वंदना जैन
    - श्री मती मीना, श्री वंसत जी नोहटा
    - श्री सुरेन्द्र जैन, श्रीमती अलका जैन
    - श्री ब्र. नरेन्द्र जैन
    - श्रीमती विमला, श्री सुरेश जैन
- श्री जमना प्रसाद जी

अनुक्रमणिका

विषय	प्रवचन	श्लोक	पृष्ठ
शरीर की क्षण भंगुरता	1	1-2	15
अशरीरी की यात्रा	2	3-4	20
दुख व मरण की जन्मभूमि शरीर	3	5-6	27
धर्म का आराधन करो	4	7-10	32
पाप व दुख का कर्त्ता-शोक	5	11	37
शोक तजिये मोक्ष राह पर बढ़िये	6	11-13	41
सद्गुरु दीपक का दिव्य प्रकाश	7	14-17	44
संयोग-वियोग कर्मानुसार	8	18-19	49
मानव जीवन की दुर्लभता	9	20-22	52
जन्म-मरण एक शाश्वत परम्परा	10	23	57
आपत्ति-सम्पत्ति की सूचक है	11	24	60
विपत्ति में विषाद क्यों?	12	25-30	63
मृत्यु अटल सत्य है	13	31-33	70
मरते न बचावे कोई	14	34-36	76
मृत्यु की सखी-जरा	15	37-39	82
मृत्यु वरण के पूर्व मुक्ति वरण हो	16	40-43	89
दुर्गुणों का जनक-शोक	17	44-47	97
मृत्युबेला में व्यर्थ प्रयास	18	48	103
अहंकार व ममकार संसार के द्वार	19	49-50	106
श्मशान का वैराग्य	20	51-53	112
मोह नहीं, धर्म करो	21	54-55	117

शरीर की क्षण भंगुरता

बाहर के शत्रुओं को जीतने वाले बहुत होते हैं अंतरंग शत्रुओं को जीतने वाले विरले ही होते हैं। बाहर के शत्रुओं को जीतने वाले के लिए भगवान नहीं कहा गया बल्कि जिसने अंतरंग के शत्रुओं को जीत लिया है उसे भगवान कहा है।

सन्त वैरागी होते हैं वे कभी मुरझाते नहीं हैं भले ही कितने उपवास आदि कर ले फिर भी उनकी हर चर्या व्यवस्थित रहती है कोई कमी नहीं आती। कारण कि उनका आत्मबल/मनोबल मजबूत रहता है।

बंधुओ! इस कलिकाल में साक्षात् जिनेन्द्र भगवान के दर्शन नहीं हो पाते, उनकी दिव्य देशना नहीं सुन पाते, फिर भी परम्परा से चली आई जो भगवान की वीतराग देशना या तत्त्व देशना है जिसे हमारे पूर्ववर्ती आचार्यों ने सृजन किया है वह आज हमें जिनवाणी के रूप में प्राप्त हो रही है। और जब हम जिनवाणी के वाक्यों का मनोयोग से स्वाध्याय व मनन करते हैं तो अपूर्व ही आनन्द आता है जिससे सम्यग्दर्शन निर्मल होता है, ज्ञान विशेष होता है और चारित्र में परिवर्तन आता है क्योंकि ज्ञान, मात्र पढ़ने, लिखने, सुनने, जानने तथा याद करने का नाम नहीं है। इसके विषय में न्याय के प्रकाण्ड विद्वान, जैनाचार्य माणिक्यनंदी जी महाराज परीक्षामुख सूत्र में लिखते हैं–

स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणं ॥1॥

अर्थात् अपने आपके और जिसे किसी अन्य प्रमाण से जाना नहीं है। ऐसे पदार्थ के निश्चय करने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं और वह ज्ञान ही प्रयोजनभूत है, महत्त्वशाली है आगे उस ज्ञान की महिमा कहते हैं।

हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् ॥2॥

अर्थात् जो हित की प्राप्ति कराये क्योंकि दुनियाँ के सभी दर्शन, सभी धर्म, सभी सम्प्रदाय तथा हर व्यक्ति ज्ञान की बात अपने-अपने तरीके से करते हैं लेकिन आचार्य महाराज जिस ज्ञान से आत्मा की सिद्धि, आत्मा का कल्याण हो उसकी बात यहाँ कह रहे हैं तथा जिससे अहित (अज्ञान) का परिहार हो, अर्थात् जो अहित का परिहार करने में समर्थ हो क्योंकि आत्मा के अहित के विषय में दर्शनस्तुति (सकल ज्ञेय) में पं. दौलतराम जी ने कहा है–

आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय॥14॥

अतः हमें अपनी आत्मा का अहित करने वाले विषय और कषायों को समझना होगा क्योंकि जब व्यक्ति की रुचि विषय-कषायों में होती है तो उसे मोक्षमार्ग रुचता नहीं है। इस प्रकार हित की प्राप्ति और अहित का परिहार करने में जो समर्थ है वही प्रमाण है और वही प्रमाण ज्ञान है। तथा हित की प्राप्ति तभी होगी जब अहित का परिहार होगा और अहित का परिहार तभी होगा जब हित की ओर कदम बढ़ेंगे और आत्मा का कल्याण होगा। आचार्य पद्मनंदि महाराज एक आध्यात्मिक संत हैं जिन्होंने अपने आध्यात्मिक चिन्तन को 'अनित्यपञ्चाशत्' नामक तीसरे अधिकार में गाथाओं के माध्यम से समाविष्ट किया है जिनके चिन्तन करने से एक-एक पद्य के अन्दर नई-नई एवं सुन्दर बातें मिलती हैं। पूज्य आचार्य महाराज इस तृतीय अधिकार के प्रारम्भ में भगवान जिनेन्द्र देव को नमस्कार करते हुए लिख रहे हैं—

जयति जिनो धृतिधनुषामिषुमाला भवति योगियोधानाम्।
यद्वाक्करुणामय्यपि मोहरिपुप्रहतये तीक्ष्णा॥1॥

अर्थ—जिस जिन भगवान की वाणी धीरता रूपी धनुष को धारण करने वाले योगीजन रूपी योद्धाओं के लिये बाण पंक्ति के समान होती है, तथा जिसकी वह वाणी दयामयी होकर भी मोहरूपी शत्रु का घात करने के लिए तीक्ष्ण तलवार का काम करती है वह जिन भगवान जयवन्त होवे।

हे आत्म हितेच्छु! पूज्य आचार्य महाराज भगवान जिनेन्द्र प्रभु की वाणी कैसी है? इस विषय में कहते हैं कि जो जिन भगवान की वाणी धीरतारूपी धनुष को धारण करने वाले योगी जन रूपी योद्धाओं के लिए बाण पंक्ति के समान है। यहाँ योद्धा का तात्पर्य जो दूसरों को मारता है, सताता है वह नहीं क्योंकि बाह्य शत्रुओं को जीतना सरल है, लेकिन अन्दर के शत्रुओं को जीतना बहुत कठिन है। इसलिए महावीराष्टक में भागचन्द्रजी भागेन्दु लिखते हैं—

अनिर्वा-रोद्रेकस्त्रिभुवन जयी काम सुभटः, कुमारावस्थाया मपि निज बलाद्येन विजितः।
स्फुरन् नित्यानन्द प्रशम पद राज्याय स जिनः, महावीर स्वामी नयन पथ गामी भवतुः मे॥7॥

अर्थात् हे भगवन्! आपने, जिसका उद्रेक अनिर्वार कठिन है जिसने तीन लोक के प्राणियों को अपने वश में किया है ऐसे काम रूपी सुभट कामदेव को आपने कुमारावस्था में ही अपने बल से जीत लिया है इसलिये भगवान महावीर सबसे बड़े योद्धा हैं क्योंकि **बाहर के शत्रुओं को जीतने वाले बहुत होते हैं अंतरंग शत्रुओं को जीतने वाले विरले ही होते हैं। बाहर के शत्रुओं को जीतने वाले के लिए भगवान नहीं कहा गया बल्कि जिसने अंतरंग के शत्रुओं को जीत लिया है उसे भगवान कहा है।** इस प्रकार जिस योद्धा के पास जिनेन्द्र भगवान की वाणी है तथा जिनकी वाणी दयामयी/करुणामयी होकर भी मोहरूपी शत्रु का घात करने के लिए तीक्ष्ण तलवार का काम करती है ऐसे जिनेन्द्र भगवान निरन्तर जयवन्त हो। हम उनकी सदैव-सदैव ही जयकार करते हैं नमस्कार करते हैं। यहाँ मंगलाचरण में पूज्य आचार्य ने किसी भगवान का नाम नहीं लिया गया

है क्योंकि मंगलाचरण कभी व्यक्ति प्रधान होता है तो कभी गुण प्रधान होता है। जहाँ व्यक्ति प्रधान होता है वहाँ एक-दो-तीन किसी न किसी व्यक्ति विशेष का नाम जुड़ा होता है और जहाँ गुण प्रधान होता है वहाँ संस्कार जन्य सभी आ जाते हैं। इस प्रकार आचार्य महाराज ने प्रथम गाथा में जिन्होंने सम्पूर्ण कर्मों को जीत लिया है अर्थात् घातिया कर्मों को जीत लिया है। उन्हें नमस्कार किया गया है। आगे पूज्य आचार्य भगवन् अनित्यानुप्रेक्षा के विषय में कह रहे हैं और उसमें भी शरीर की अनित्यता का वर्णन कर रहे हैं–

यद्येकत्र दिने विभुक्तिरथ वा निद्रा न रात्रौ भवेत्,
विद्रात्यम्बुजपत्रवद्दहनतोऽभ्यासस्थिताद्यद् ध्रुवम्।
अस्त्र व्याधिजलादितोऽपि सहसा यच्च क्षयं गच्छति,
भ्रातः कात्र शरीरके स्थितिमति र्नाशेऽस्य को विस्मयः॥2॥

अर्थ–यदि किसी को एक दिन भोजन प्राप्त नहीं होता या रात्रि में निद्रा नहीं आती है तो जो शरीर निश्चय से निकटवर्ती अग्नि से सन्तप्त हुए कमलपत्र के समान म्लानता को प्राप्त हो जाता है तथा जो अस्त्र, रोग और जल आदि के द्वारा अकस्मात् नाश को प्राप्त होता है; हे भ्रातः! उस शरीर के विषय में स्थिरता की बुद्धि कहाँ से हो सकती है, तथा उसके नष्ट हो जाने पर आश्चर्य ही क्या है? अर्थात् उसे न तो स्थिर समझना चाहिए और न उसके नष्ट होने पर कुछ आश्चर्य भी होना चाहिए।

हे आत्म हितैषी! पूज्य आचार्य महाराज कह रहे हैं कि संसार में ऐसे अनेक प्राणी हैं जिनकी शरीर में अनेक कारणों की अपेक्षा शाश्वतपने की मान्यता है इसलिए जब व्यक्ति के ऊपर कोई विपत्ति आती है तो वह कह देता है कि मर जाता तो अच्छा था लेकिन जब मरने का नम्बर आता है तो डॉ., वैद्य, हकीम आदि की शरण को प्राप्त होकर मृत्यु से बचने की प्रार्थना करता है। एक बार अखबार में एक खबर निकली कि किसी पत्नि ने घरेलू झगड़े के कारण आग लगा ली क्योंकि वह रोज अपने पति को मरने की धमकी देती थी लेकिन आग लगने से वेदना के कारण वह जोर-जोर से चिल्लाई कि मैं मर गई, मुझे बचाओ-बचाओ आदि। लोगों ने आवाज सुनकर उसकी आग बुझाई तथा अस्पताल में भर्ती किया। धीरे-धीरे जब वह ठीक हो गई और घर आई तो उसके शरीर की स्थिति भयानक थी लेकिन उसके बाद उसने कभी इस प्रकार की बात नहीं कही। इस प्रकार क्रोध में व्यक्ति कुछ भी कह दे और कर भी ले लेकिन वास्तविकता में व्यक्ति मरना नहीं चाहता, शरीर को छोड़ना नहीं चाहता अर्थात् वह हर प्रयत्न और प्रयास से शरीर को सुरक्षित रखना चाहता है लेकिन आज तक कोई भी इस जीव को मृत्यु से नहीं बचा सका। छहढ़ाला की 5वीं ढ़ाल में पं. दौलतराम जी ने कहा भी है–

मणी मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावे कोई॥4॥

ऐसा यह शरीर जो छूटने वाला है यदि उसे एक दिन भोजन न मिले तो रात्रि में नींद नहीं आती क्योंकि भूखे व्यक्ति को नींद नहीं आती या जिसे भूख लगी हो तो उसको नींद नहीं आती या जो कमजोर व्यक्ति होते हैं उन्हें नींद नहीं आती है। इस प्रकार जिसे एक दिन भोजन प्राप्त

नहीं होता है या जिसे रात्रि में नींद नहीं आती है तो यह शरीर निश्चय से निकटवर्ती अग्नि से सन्तप्त हुए कमलपत्र के समान म्लानता को प्राप्त हो जाता है अर्थात् जैसे कमल अग्नि के सम्पर्क से झुलस जाता है उसके सारे पत्ते यत्र-तत्र बिखर जाते हैं उसी प्रकार भोजन न मिलने से या रात्रि में नींद न आने से व्यक्ति की हर क्रिया कमलपत्र की तरह शिथिल हो जाती है। लेकिन सन्त वैरागी होते हैं वे कभी मुरझाते नहीं हैं भले ही कितने उपवास आदि कर ले फिर भी उनकी हर चर्या व्यवस्थित रहती है कोई कमी नहीं आती। कारण कि उनका आत्मबल/मनोबल मजबूत रहता है जिससे उन्हें परेशानी नहीं होती। आचार्य सन्मति सागर जी महाराज जो आहार में मात्र छाछ और पानी लेते हैं वो भी एक दिन छोड़ कर लेते हैं फिर भी खड़े होकर सामायिक करना, स्वाध्याय करना आदि क्रिया सुव्यवस्थित तरीके से करते हैं। एक दिन मैंने पूज्य आचार्य श्री से पूछा—हम लोगों के अन्दर इतनी शक्ति कैसे आए बता दीजिए जिससे हम भी ऐसी तपस्या करें? महाराज मुस्कुरा दिए पश्चात् मैंने कहा—आप मुझे ऐसी शक्ति दे दीजिए जिससे मैं भी ऐसा पुरुषार्थ करूँ? महाराज ने कहा—तत्त्व चिन्तन वैराग्य को बढ़ाता है लेकिन क्षयोपशम भी होना चाहिए कि जिससे इतनी साधना कर सको। मैं महाराज से कभी उपवास माँगता था तो महाराज कहते थे नहीं आगे अष्टमी या चतुर्दशी को करना क्योंकि तुमको बड़ा संघ चलाना है, पढ़ाना है आदि...बन्धुओ! कहने का तात्पर्य है कि साधुओं में सामर्थ्य रहती है, क्षयोपशम रहता है जिसके माध्यम से शरीर में शिथिलता नहीं आती है। दूसरी बात उनका वैराग्य मजबूत रहता है, तत्त्व चिन्तन गहरा रहता है जिससे वे मोह की भूमिका तक नहीं पहुँच पाते हैं। गुजरात के श्रीमद् राजचन्द्र जी जो आध्यात्मिक सन्त थे एक बार महात्मा गाँधी ने राजचन्द्र जी से प्रश्न किया—कि आपका शरीर इतना कमजोर है और आपका ज्ञान इतना गहरा है कि आप शतावधानि कहलाते हों ऐसा कैसे? उन्होंने उत्तर दिया- एक किसान के दो खेत हैं यदि वह एक खेत में पानी देता है तो वह हरा-भरा रहता है और जिस खेत में पानी नहीं देता वह खेत सूख जाता है। इसी तरह साधक आत्मा के खेत में पानी देते हैं इसलिए उनकी आत्मा हरी-भरी रहती है और शरीर सूख जाता है क्योंकि वे शरीर में पानी नहीं देते हैं। लेकिन आप सभी शरीर में पानी देते हैं इसलिए आपका शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता है और आत्मा सूखती है, आत्मा कमजोर होती है। अतः एक दिन भोजन न मिलने से या रात्रि में नींद न आने से शरीर झुलस जाता है जैसे अग्नि के ताप से कमल झुलस जाता है।

तथा जो अस्त्र, रोग और जल आदि के द्वारा अकस्मात् नाश को प्राप्त हो जाता है। यहाँ आचार्य महाराज ने शरीर नष्ट होने के तीन कारण गिनाए हैं लेकिन शास्त्रों में कदली घात मरण के ऐसे अनेक कारण गिनाए हैं जिसके कारण शरीर नाश को प्राप्त हो जाता है। इसलिए हे भ्रात! उस शरीर के विषय में स्थिरता की बुद्धि कहाँ से हो सकती है? तथा उसके नष्ट हो जाने पर आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि जो शरीर नष्ट होने वाला है उसके विषय में चिन्ता करना ठीक नहीं। इस प्रकार ज्ञानी पुरुष शरीर की अनित्यता के विषय में विचार करता है कि आजतक हमने इस नाशवान् शरीर की ओर ही ध्यान दिया आत्मा की ओर ध्यान नहीं दिया। देखो, उन साधुओं के लिए जो सल्लेखना समाधि की साधना में निरत रहते हैं कभी भी तकलीफ को नहीं देखते। तब कहीं सल्लेखना समाधि ठीक प्रकार से हो पाती है तथा साधना भी उन्हीं की सही होती है जो शरीर में उपयोग नहीं ले जाते हैं और जो शरीर को देखते रहते हैं वे दीक्षा भी नहीं ले सकते।

बंधुओ! एक बार एक सज्जन पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज के पास दीक्षा की भावना से आए और बोले—महाराज श्री बहुत इच्छा है दीक्षा की, बस अब आप मुझे दीक्षा दे दीजिए। आचार्य श्री ने कहा—बहुत अच्छी बात है मुहूर्त देखते हैं। सज्जन बोले—महाराज श्री, लेकिन मेरी 2-3 बातें हैं। महाराज ने कहा—क्या बातें हैं? बोले—पहली बात है मैं केशलोंच नहीं कर सकता हूँ, दूसरी बात है मैं पैदल नहीं चल सकता हूँ तथा तीसरी बात है मुझे गर्मी बहुत बढ़ती है तो कुछ जूस वगैरह की व्यवस्था हो जाए। महाराज ने कहा—जाओ, अभी तुम्हारी दीक्षा नहीं हो सकती। अर्थात् जिसका ध्यान अभी शरीर पर है वह रत्नत्रय की साधना नहीं कर सकता है इसलिए साधना के पूर्व संसार, शरीर और भोग इन तीन बातों से विरक्त हो जाना चाहिए और ऐसे विरक्त होना चाहिए जैसे सुकुमाल मुनिराज विरक्त हुए थे कि पैरों से खून बहने लगा फिर भी जंगलों के कंकरीले, पथरीले, काँटे भरे रास्ते पर चलते रहे उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा कि मेरे पैरों में कितने घाव आए हैं। परिणाम यह निकला कि वे अपने लक्ष्य को प्राप्त हो गए। यदि वे शरीर को देखते तो कुछ भी नहीं कर पाते। इसलिए वैराग्य भावना में कहा है—

पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै॥10॥

अर्थात् शरीर के पोषने से यह दुख देता है और शोषण करने से यानि त्याग-तपस्या करने से सुख देता है। इसलिए संत जन शरीर को पोषते नहीं हैं। एक बार हमारे संघ में क्षुल्लक विग्रह सागर जी की समाधी चल रही थी एक दिन रात्रि के समय किसी कारण से उनको उठना पड़ा तो उनके बेटे ने उन्हें उठाया जिससे उनकी अगुलियाँ माँस में धस गई। बेटे ने देखा तो वह घबरा गया पट्टी वगैरह की। प्रातः जब वो मेरे पास आए तो मैंने पूछा—क्या हुआ? बोले—कुछ नहीं, जब तक जेल की दीवारें टूटती नहीं हैं तब तक कैदी मुक्त नहीं होता है फिर यह तो शरीर है। अतः हम तभी स्वस्थ होंगे जब यह शरीर छूटेगा। इस प्रकार जो महापुरुष/ज्ञानी होते हैं एक ऐसा चिन्तन बना करके चलते हैं कि उनके अन्दर वैराग्य शक्ति बनी रहती है और वे साधना कर लेते हैं लेकिन जो शरीर का ध्यान रखते हैं उसको स्थिर बनाने का विचार रखते हैं उनके लिए आचार्य भगवन् कहते हैं कि हे प्राणी! यह शरीर कभी किसी का स्थिर नहीं रहा है, शाश्वत नहीं रहा है। यह निश्चित है कि एक दिन यह नष्ट हो जाएगा, समाप्त हो जाएगा तो इसके नष्ट होने में विस्मय आश्चर्य क्यों करते हो? यह तो नष्ट होता ही है इसलिए चिन्ता की कोई बात नहीं। अतः हम भी एक ऐसा आत्मचिन्तन बनाए और शरीर से वैराग्य उत्पन्न करें क्योंकि जो वैरागी होते हैं उनके अन्दर ही ऐसे वैराग्यवर्धक विचार होते हैं जिससे वे अपनी चर्या को निर्मल करते हैं। हम सब भी वैराग्य को वृद्धिंगत करें। **इसी भावना के साथ—**

भगवान महावीर स्वामी की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—3.12.09,
वार—गुरुवार

अशरीरी की यात्रा

जो शरीर के उपकार में लगा रहेगा वह आत्मा का उपकार नहीं कर सकता और जो शरीर का अपकार करता है वह आत्मा का उपकार कर सकता है। अशरीर अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

बाहर की सफाई से आत्मा साफ नहीं होती, आपका वस्त्र बाहर से जितना गन्दा है आपकी आत्मा उससे भी अधिक गन्दी है। ऐसा विचार जब उत्पन्न होता है तो जीवन में परिवर्तन आता है और सहनशक्ति उत्पन्न होती है।

भव्य बन्धुओ! आत्मा के अखण्ड शाश्वत स्वरूप को पाने के लिए बाधक स्वरूप जो शरीर के प्रति मोह है उससे विरक्ति लाने के लिए पूज्य आचार्य भगवन् पद्मनंदि महाराज उस शरीर के स्वभाव का वर्णन करते हैं कि जिस शरीर में हम रहते हैं उस शरीर के स्वभाव को जब तक हम नहीं जानेंगे तब तक सही तरह से हम उस शरीर से छूट नहीं सकते। पं. दौलतराम जी ने छहढ़ाला की तीसरी ढ़ाल में कहा भी है—

बिन जाने ते दोष गुणन को, कैसे तजिये गहिये॥14॥

अर्थात् जितना आवश्यक गुणों को जानना है उतना ही आवश्यक दोषों को जानना है क्योंकि जब तक हम दोष को दोष नहीं जान पाते हैं तो उसको छोड़ नहीं पाते हैं इसलिए गुणों को ग्रहण करने की उपादेय दृष्टि से, तथा दोषों को छोड़ने की हेय दृष्टि से जानना चाहिए क्योंकि **शरीर के स्वभाव का ज्ञान भी हमारे लिए आत्मा के अभिमुख कर देता है और शरीर से विरक्ति दिला देता है।** इसी बात को आचार्य महाराज कह रहे हैं—

दुर्गन्धाशुचि धातु भित्तिकलितं संछादितं चर्मणा,
विण्मूत्रादिभृतं क्षुधादि विलसद्दुःखाखुभिश्छिद्रितम्।
क्लिष्टं कायकुटीरकं स्वयमपि प्राप्तं जरावह्निना,
चेदेतत्तदपि स्थिरं शुचितरं मूढो जनो मन्यते॥3॥

अर्थ—जो शरीर रूपी झोपड़ी दुर्गन्ध युक्त अपवित्र धातुओं रूप भित्तियों (दीवालों) से सहित है, चमड़े से ढ़की हुई है, विष्ठा एवं मूत्र आदि से परिपूर्ण है, तथा भूख-प्यास आदि

के दुःखों रूप चूहों के द्वारा किए गए छिद्रों से (बिलों से) संयुक्त है; वह क्लेश युक्त शरीर रूपी झोपड़ी जब स्वयं ही वृद्धत्व (बुढ़ापा) रूप अग्नि से आक्रान्त हो जाती है। तब भी यह मूर्ख प्राणी उसे स्थिर और अतिशय पवित्र मानता है।

बन्धुओ! यहाँ पूज्य आचार्य महाराज ने शरीर को एक कुटीर/झोपड़ी की उपमा दी है और कुटीर का अर्थ हिन्दी में क्षुद्र होता है अर्थात् जहाँ पर क्षुद्र लोग रहा करते हैं। जिन्हें झोपड़ पट्टी वाले कहते हैं उनकी झोपड़ी गंदी, अस्थायी, अव्यवस्थित रहती है और उसकी दीवारें भी गन्दगी से युक्त होती है। जगह-जगह चूहे के बिल होते हैं और वे भी यत्र-तत्र विचरण करते रहते हैं ऐसी झोपड़ी जब कभी अतिक्रमण की सीमा में आती है तो फिर वो लोग उन्हें छोड़ कर चले जाते हैं या उनमें आग लगा दी जाती है। बस शरीर भी एक ऐसी ही झोपड़ी है और वह शरीर रूपी झोपड़ी दुर्गन्ध युक्त अपवित्र धातुओं रूपी भित्तियों (दीवारों) से सहित है। तात्पर्य जिसकी अपवित्र धातुओं से बनी दीवारों से दुर्गन्ध आ रही है। संसार में एक मात्र तीर्थंकर को छोड़कर सभी के शरीर से दुर्गंध ही आती है। दूसरे कोई विशेष पुण्यात्मा होते हैं जिनके शरीर में पसीना कम आता है तो दुर्गंध भी कम आती है लेकिन जो पुण्यात्मा नहीं होते हैं उनके पास बैठने से पसीने की या मुख से दुर्गंध आती है कि बैठना कठिन हो जाता है। लेकिन संत जिनका अस्नान तथा अदंत धावन नामक मूलगुण है उनके पास बैठने से से गंध नहीं आती लेकिन जब वही ग्रहस्थ थे एक दिन भी स्नान या ब्रश नहीं करते थे तो दुर्गंध आती थी जिससे पता चल जाता था कि स्नान नहीं किया है और उस दुर्गंध को छिपाने के लिए सुगंधित सामग्री इत्र, तेल आदि का प्रयोग करते हैं लेकिन सुगन्धित सामग्री के लगाने से शरीर सुगन्धित नहीं हो जाता बल्कि अधिक दुर्गन्धित हो जाता है और जब इसका प्रयोग नहीं किया जाता है तो आपकी असलियत का पता चल जाता है। अर्थात् सुगन्धित सामग्री हमारे शरीर के असली धर्म को ढाँकती है जिससे हमको जो वैराग्य होना चाहिए था वह नहीं हो पाता है। इसलिए सन्त जन सुगन्धित सामग्री का प्रयोग नहीं करते हैं क्योंकि वे पदार्थ रागवर्धक हैं, रागपूर्ण हैं। तथा यह शरीर अपवित्र धातु रूपी भित्तियों से सहित है।

बन्धुओ! आप इस अपवित्र शरीर को पवित्र करने के लिए कितना और कितनी बार स्नान करते हैं लेकिन स्नान करने से शरीर पवित्र नहीं होता, न आत्मा पवित्र होती है इसलिए संत स्नान के त्यागी होते हैं वे मंत्र स्नान करते हैं लेकिन शरीर की शुद्धि रखते हैं अर्थात् हाथ, पैर, नाक आदि स्थानों पर हाथ लग जाने से वे तुरन्त हाथ की शुद्धि करते हैं। साथ ही वे अपवित्र शरीर के विषय में विचार करते हैं कि—

ऐसे अपवित्र शरीर को सजाने में जितना समय लगाएँगे उतना आत्मध्यान से वंचित हो जाएँगे। जिससे शरीर के प्रति राग रहेगा और **'रत्तोबंधदि कम्मं'** राग से कर्म बंधता है इसलिए सन्त शरीर की सेवा शरीर के उपकार में नहीं आत्मा के उपकार में लगे रहते हैं।

इष्टोपदेश ग्रंथ में आचार्य पूज्यपाद ने भी कहा है—

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकं।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकं॥19॥

अर्थात् **जो शरीर के उपकार में लगा रहेगा वह आत्मा का उपकार नहीं कर सकता और जो शरीर का अपकार करता है वह आत्मा का उपकार कर सकता है। अशरीर अवस्था को प्राप्त कर सकता है।** सन्त जन उस अशरीर अवस्था के लिए ही यात्रा करते हैं। ज्ञान शरीर की प्राप्ति का पुरुषार्थ करते हैं। छहढ़ाला में पं. दौलतराम जी ने तीसरी ढ़ाल में कहा भी है–

ज्ञान शरीरी त्रिविध कर्ममल वर्जित सिद्धमहंता।
ते हैं निकल अमल परमातम भोगे शर्म अनंता॥6॥

अर्थात् जो शरीर से विरक्त हो जाता है वह सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेता है। यह शरीर रूपी झोपड़ी चमड़े से ढ़की हुई है यदि इस चमड़ी को निकाल दिया जाए तो देखना भी कठिन हो जाएगा इतना अधिक बीभत्स है तथा संसार के अन्दर जितने भी अशुचि पदार्थ हैं उन पदार्थों से इस शरीर का निर्माण हुआ। इसलिए पं. भूधरदास जी ने भी बारह भावना में कहा है–

दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥6॥

इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि हे भव्य! जिस शरीर से तू राग करता है वह शरीर ऊपर से चमड़े से आच्छादित है अन्दर झाँक करके देखो यह शरीर विष्ठा एवं मूत्रादि से परिपूर्ण है भरा हुआ है। आदि शब्द से यहाँ खून, पीप, मज्जा आदि सात धातुयें भरी हुई हैं। जब इस पर किसी का पैर पड़ जाता है तो हम इससे दूर हट जाते हैं नहाते हैं लेकिन वही सारे अपवित्र पदार्थ हमारे शरीर में भरे हुए हैं और हम उसमें अनादि काल से निवास कर रहे हैं उससे निकलना नहीं चाहते हैं। तथा इस शरीर के अन्दर नव मल द्वार नाक के-2, आँख-2, मुख-1, कान-2, मल-मूत्र के स्थान हैं जिनसे सदैव मल ही मल बहता रहता है फिर भी हम उसी से दिन-रात मोह करते हैं यदि इस शरीर में कुछ भी अच्छी वस्तु होती तो मेरा मोह करना ठीक है लेकिन इसके अन्दर में तो अपवित्रता ही अपवित्रता है। साथ ही यह शरीर क्षुधा-प्यास आदि के दुखों रूप चूहों के द्वारा किए गए छिद्रों से (बिलों से) संयुक्त है तथा यह क्लेश को उत्पन्न करने वाली शरीर रूपी झोपड़ी स्वयं ही वृद्धत्व (बुढ़ापा) रूप अग्नि से आक्रान्त हो जाती है।

बन्धुओ! बुढ़ापे की स्थिति बड़ी विचित्र होती है जिसमें न कुछ सुनाई पड़ता है न कुछ दिखाई देता है, कोई वस्तु खाना चाहते हैं तो चबती नहीं है, जैसे-तैसे खा लेते हैं तो पचती नहीं है, पैर कहीं रखते हैं पहुँच कहीं जाते हैं, यह वृद्ध अवस्था जीवन की आखिरी अवस्था होती है जो कुछ क्षणों में राख हो जाती है। ऐसी वृद्धा अवस्था के प्राप्त होने पर भी यह मूर्ख प्राणी उसे स्थिर एवं अतिशय पवित्र मानता है। तथा यह शरीर छूटे न ऐसा प्रयास करता है लेकिन एक दिन अवश्य छूटेगा किसी के भी बचाने से नहीं बचेगा। इसलिए कहा है–

मरना अवश्य होगा, करना जो चाहो कर लो।
फल उसका पाना होगा, करना जो चाहो कर लो॥

इस प्रकार विवेकी अपने विवेक के द्‌वारा सावधान होता है और प्रत्येक क्रिया को सावधानता के साथ करता है। वह पानी, सर्फ, साबुन, सोड़ा आदि पदार्थों का प्रयोग हिसाब से करता है ताकि जीव विराधना से बच सके क्योंकि अनछने पानी की एक बूँद में आगम के अनुसार असंख्यात जीव होते हैं तथा विज्ञान के अनुसार 36450 या 39000 जीव होते हैं जो सर्फ आदि के गिरने से खत्म हो जाते हैं और फिर ऐसा पानी जब नदी नालों से बहकर के जाता है तो अनंत जीवों की हिंसा हो जाती है ऐसा ज्ञान जब व्यक्ति की आत्मा तक पहुँचता है तो व्यक्ति सावधान होता है। क्योंकि **बाहर की सफाई से आत्मा साफ नहीं होती, आपका वस्त्र बाहर से जितना गन्दा है आपकी आत्मा उससे भी अधिक गन्दी है। ऐसा विचार जब उत्पन्न होता है तो जीवन में परिवर्तन आता है और सहनशक्ति उत्पन्न होती है** तथा जिसको शरीर से विरक्ति हो गई है उसकी आत्मा के प्रति अभिमुखता बढ़ती है। इस प्रकार अज्ञानी/विवेकहीन व्यक्ति असावधान रहता है और इस अस्थिर तथा अपवित्र शरीर को स्थिर तथा पवित्र मानता है लेकिन ज्ञानी इसके प्रतिकूल मानता है कि यह शरीर कब धोखा दे दे, इसके विषय में एक क्षण का भी विश्वास नहीं करना चाहिए कि एक क्षण में यह रहेगा या नहीं रहेगा, साथ देगा या नहीं देगा। इसलिए **यह तन पाय महातप कीजे यामें सार यही है॥10 वैरा.भाव.॥** इस प्रकार विचार करते हुए सावधान रहता हैं, शरीर से विरक्त रहता हैं और अपनी आत्मा का कल्याण करता हैं।

इसी बात के लिए आगे कहते हैं कि—

अम्भो बुद्‌बुद संनिभा तनुरियं श्रीरिन्द्रजालोपमा,
दुर्वाताहतवारिवाहसदृशाः कान्तार्थपुत्रादयः।
सौख्यं वैषयिकं सदैव तरलं मत्ताङ्गनापाङ्गवत्,
तस्मादेतदुप्ल वाप्तिविषये शोकेन किं किं मुदा॥4॥

अर्थ—यह शरीर जल बुद्‌बुदे के समान क्षणक्षयी है, लक्ष्मी इन्द्रजाल के सदृश विनश्वर है; स्त्री, धन एवं पुत्र आदि दुष्ट वायु से ताड़ित मेघों के सदृश देखते-देखते ही विलीन होने वाले हैं; तथा इन्द्रिय विषय जन्य सुख सदा ही कामोन्मत्त स्त्री के कटाक्षों के समान चंचल है। इस कारण इन सबके नाश में शोक से तथा उनकी प्राप्ति के विषय में हर्ष से क्या प्रयोजन है? कुछ भी नहीं। अभिप्राय यह है कि जब शरीर, धन-सम्पत्ति, स्त्री एवं पुत्र आदि समस्त चेतन-अचेतन पदार्थ स्वभाव से ही अस्थिर हैं तब विवेकी जन को उनके संयोग में हर्ष और वियोग में शोक नहीं करना चाहिए।

बन्धुओ! यहाँ पर पूज्य आचार्य भगवन् ने शरीर की क्षणभंगुरता का चित्रण एक ही काव्य में किया है। वे कहते हैं यह शरीर जल के बुदबुदे की तरह क्षणक्षयी है जैसे बरसात के मौसम में पानी बरसता है तो बुदबुदे उत्पन्न होते हैं या कभी गहराई में जाकर कोई नली लगा करके फूँके तो भी बुदबुदे उत्पन्न होते हैं जिन्हें छोटे-छोटे बच्चे पकड़ने के लिए दौड़ते हैं लेकिन पकड़ने के पहले वे फूट जाते हैं पकड़ में नहीं आते हैं। वैसे ही यह शरीर भी क्षणभंगुर है, शाश्वत रहने वाला नहीं है। महाराजा आदिनाथ को एकमात्र नीलाञ्जना की मृत्यु को देखकर, उसके शरीर की

क्षणभंगुरता को देखकर वैराग्य हुआ था कि ओह हो! इतना क्षणभंगुर है शरीर। जैसे नीलाञ्जना की मृत्यु हुई एक दिन मेरी भी ऐसे ही मृत्यु होगी। यह शरीर छूटेगा। अच्छा है जब तक नवीन आयु का बंध नहीं हुआ है तब तक कुछ कर लेना चाहिए। तब आदिनाथ महाराज ने जिस शरीर के साथ 83 लाख वर्ष पूर्व व्यतीत किए थे उस शरीर से विरक्त हो दीक्षा लेकर आत्मसाधना में लीन हो गए। इसी प्रकार जब किसी की मृत्यु होती है तो शरीर की क्षणभंगुरता दिखाई देती है फिर उसकी मात्र स्मृतियाँ शेष रह जाती हैं। इसी तरह लक्ष्मी यानि धन-सम्पदा आदि आकाश के इन्द्रधनुष (इन्द्रजाल) की तरह विनश्वर है। अर्थात् जब पानी बरसता है और यदि उस समय सूर्य की किरणें उस बरसते पानी पर पड़े तो आकाश में इन्द्र धनुष दिखाई देने लगता है और वह धीरे-धीरे देखते-देखते विलीन हो जाता है।

बन्धुओ! कहने का तात्पर्य है कि व्यक्ति दिन-रात हाय पैसा-हाय पैसा करता है और कमा-कमा कर रखता जाता है। लेकिन आचार्य महाराज कहते हैं कि जीवन में पैसा ही सब कुछ नहीं है। पुण्य है तो पैसा है और पुण्य नहीं तो पैसा नहीं। जब व्यक्ति के पुण्य का पन्ना पलटता है तो सम्पदा पता नहीं कहाँ से निकल जाती है इसलिए लक्ष्मी की फोटू सदैव खड़ी बनाई जाती है ताकि पुण्य का पन्ना पलटते ही वह तुरन्त वहाँ से चली जाती है क्योंकि खड़े व्यक्ति को जाने में समय नहीं लगता, बैठे को जाने में समय लगता है। इस प्रकार पुण्य का पासा कब पलटे किस प्रकार पलटे कोई भरोसा नहीं है। आचार्य समन्तभद्र महाराज भी रत्नकरण्ड श्रावकाचार में लिखते हैं—

यदि पापनिरोधोऽन्य, सम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्य, सम्पदा किं प्रयोजनम्॥27॥

अर्थात् यदि तुमने पाप का निरोध कर दिया है तो सम्पदा का क्या प्रयोजन? क्योंकि जिसने पाप को छोड़ दिया है सम्पदा उसके पीछे-पीछे दौड़ेगी। जैसे छाया को पीठ करके व्यक्ति यदि दौड़े तो छाया उसके पीछे-पीछे दौड़ती है। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी जाता सफलता हाथ लेकर लौटता है, मिट्टी को हाथ लगाता सोना हो जाता है। लेकिन जिसने पाप का निरोध नहीं किया है तो भी सम्पदा का क्या प्रयोजन? क्योंकि जिसके जीवन में पाप का आस्रव हो रहा है वह कितनी सम्पदा कमाएगा या पूर्व संचित जो सम्पदा होगी वह क्षणभर में समाप्त हो जाएगी। पाण्डव जो बहुत बड़े राजा थे लेकिन पाप कर्म का उदय कि वन-वन भटकना पड़ा। रावण त्रिखण्डी, लंकाधिपति था देखते-ही-देखते उसकी सारी सम्पदा समाप्त हो गई और कहाँ वह एक बालक जो पुण्योदय से राजा बन गया। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं—लक्ष्मी पर विश्वास नहीं धर्म पर विश्वास करना चाहिए क्योंकि लक्ष्मी तो इन्द्रधनुष की तरह कभी भी समाप्त हो सकती है। अतः हम जितना समय लक्ष्मी संग्रह के लिए देते हैं हम उतना समय धर्म के कार्यों में लगायें क्योंकि धर्म रहेगा तो सब कुछ हमारे साथ रहेगा और धर्म नहीं तो कुछ भी साथ नहीं रहेगा। आज व्यक्ति अपने लिए नहीं अपने बेटों के और वंश परम्परा के लिए धन संचय करता है। इसलिए किसी कवि ने लिखा है—

पुत्र कुपुत्र तो का धन संचय।
पुत्र सुपुत्र तो का धन संचय॥

अर्थात् यदि पुत्र कुपुत्र है तो भी धन संचय से कोई प्रयोजन नहीं, और यदि पुत्र सुपुत्र है तो भी धन संचय की आवश्यकता नहीं, वह स्वयं धन कमा लेगा। इसलिए धन नहीं धर्म का संग्रह करना चाहिए। आगे आचार्य महाराज कहते हैं कि स्त्री, धन और पुत्र आदि दुष्ट वायु से ताड़ित मेघों के सदृश देखते ही देखते विलीन होने वाले हैं क्योंकि एक दिन सभी को संसार से जाना पड़ता है कोई स्थाई नहीं रहता। एक सेठानी के सेठ जी के स्वर्गवास होने के पश्चात् सेठानी का इकलौता पुत्र रह गया। सेठानी की सभी आशायें उस पर टिकी थी लेकिन दुर्भाग्य कि उसकी भी जवान अवस्था में मृत्यु हो गई। अभी तक सेठानी सेठ जी के बाद पुत्र के भरोसे जीवन जी रही थी लेकिन पुत्र की मृत्यु होने से वह एकदम पागल हो गई। और वह शव को लेकर अनेकों डॉ., वैद्यों के पास गई कि आप कुछ भी ले लीजिए लेकिन मेरे पुत्र को ठीक कर दीजिए। जैसे रामचन्द्र जी लक्ष्मण के शव को लेकर 6 माह तक घूमे थे जो तद्भव मोक्षगामी थे और यदि कोई उनसे कहता कि लक्ष्मण की मृत्यु हो गई है तो वह मानने को तैयार नहीं होते पश्चात् देवताओं ने आकर उन्हें समझाने का प्रयास किया और वे पत्थर की शिला पर हल चलाकर बीज बोने लगे जिसे देख रामचन्द्र ने पूछा—क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा—देख नहीं रहे हो, खेत जोत कर बीज बो रहा हूँ जिससे फसल आएगी। रामचन्द्र जी बोले—मूर्ख हो, पत्थर की शिला पर बीज बोने से फसल आएगी क्या? तब देव ने कहा—तो क्या मरा व्यक्ति कभी वापिस आएगा? और राम इस बात को सुन आगे बढ़ जाते हैं लेकिन कुछ दूर जाने पर देखते हैं कि कुछ लोग जल को मथ रहे हैं। तब राम पूछते हैं कि—आप लोग क्या कर रहे हैं? देव कहते हैं—हम लोग जल को मथकर घी निकाल रहे हैं। राम सुनकर बोले—तुम सब मूर्ख हो, क्या कभी जल के मथने से घी निकला है। तब देव कहते—तो क्या कभी मरा व्यक्ति वापिस आ सकता है? इस बात को सुनकर राम पुनः आगे बढ़ते हैं और देखते हैं कि कुछ दूरी पर कुछ लोग बालू को पेल रहे हैं। वे उनसे पूछते हैं कि आप लोग क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा—हम लोग बालू को पेल कर तेल निकाल रहे हैं। रामचन्द्र जी बोले—आप लोग कैसी मूर्खता की बातें करते हो, क्या कभी बालू के पेलने से तेल निकलता है? देव ने कहा—बालू के पेलने से कभी तेल नहीं निकलता है तो फिर मरा हुआ व्यक्ति भी वापिस नहीं आता। इतना सुनते ही रामचन्द्र जी को समझ में आ गया कि लक्ष्मण की मृत्यु हो गई है और मैं व्यर्थ में मोह के कारण ऐसा मान रहा हूँ। इतना ज्ञान होते ही रामचन्द्र जी को वैराग्य हो गया और जिनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली।

ठीक इसी प्रकार बेटे की मृत्यु होने पर सेठानी की स्थिति थी तब किसी सज्जन ने आकर उसे सलाह दी कि माँ पास के उद्यान में एक दिगम्बर सन्त आए हैं वे तपस्वी साधक हैं आप उनके पास जाकर उनका आशीर्वाद लो वे आपके बेटे को ठीक कर देंगे। वह माँ, मृत बेटे को लेकर सन्त के चरणों में पहुँच गई और बोली—आप महात्मा हैं मेरे बेटे को ठीक कर दीजिए। महाराज अवधिज्ञानी थे। उन्होंने कहा—अवश्य यह बिल्कुल ठीक हो जाएगा। बस आपके लिए एक

काम करना है ग्राम में जाकर सात सरसों के दाने लाना, लेकिन ऐसे घर से लाना है जिस घर में कोई मरा न हो। सेठानी ने कहा—यह बात तो आसान है मैं अभी जाती हूँ और सात दाने लेकर आती हूँ। सेठानी सारे नगर में घर-घर में जाती है तो उसे सात दाने तो मिल जाते हैं लेकिन घर में कोई मरा न हो इस बात को सुनकर वापिस लौट आती है और महाराज के पास आकर पुत्र को उठाकर जाने लगती है। तब महाराज ने कहा—क्यों? सेठानी ने कहा—महाराज जिसके कारण मेरा ज्ञान रूपी बेटा बीमार हो गया था वह अब ठीक हो गया है। मुझे ज्ञान हो गया है मैं अभी तक अज्ञान दशा के कारण सोच रही थी कि मेरा बेटा शाश्वत रहेगा। लेकिन यह सत्य है कि चाहे राजा हो या रंक, चाहे पुत्र आदि हो सभी को अपने-अपने समय पर जाना ही पड़ेगा इस अकाट्य सिद्धान्त को कोई बदल नहीं सकता। इसी प्रकार इन्द्रिय जन्य विषय सुख सदा ही कामोन्मत्त स्त्री के कटाक्षों के समान चंचल है। जैसे कामोन्मत्त स्त्री जो सदैव काम से पीड़ित रहती है कभी किसी को देखती है, किसी से बात करती है, किसी के सामने रोती है, तो किसी के सामने हँसती है। इस प्रकार की आदत या दृष्टि अच्छी नहीं मानी जाती है। तथा यह इन्द्रिय जन्य सुख क्षणभंगुर है क्यों? क्योंकि ये थोड़े सुख को प्रदान करने के बाद बहुत दुख उत्पन्न करने वाले होते हैं। शास्त्रों में विषय सुख को 'शहद लगी तलवार' कहा है जैसे तलवार की धार पर लगी शहद को जब व्यक्ति चाटता है तो मधु का स्वाद तो आता है लेकिन जीभ कट जाने पर जो असीम वेदना होती है उसके सामने शहद का स्वाद नहीं आ पाता। अतः इन्द्रिय सुख शाश्वत नहीं अशाश्वत है। इस कारण से इन सबके नाश में शोक से तथा उनकी प्राप्ति के होने पर हर्ष से क्या प्रयोजन है? कुछ भी नहीं। अतः हम सभी को भी एक ऐसे तत्त्व ज्ञान का अर्जन करना चाहिए, ज्ञान का प्रयोग करना चाहिए जिससे हम अशाश्वत नहीं शाश्वत सुख को प्रदान करने वाले मोक्ष सुख को प्राप्त कर सके। **इसी भावना से—**

भगवान महावीर स्वामी की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—4.12.09
वार—शुक्रवार

भय किससे करें ?

कस्माद् भयोऽत्र कर्तव्यः श्रेयान् पापिजनाश्रयात्।
व्रत भङ्गाद् दुराचारान् मिथ्यात्वादेर्न चान्यतः।। *सु.स.564।।*

अर्थ- यहाँ किससे भय करना श्रेष्ठ है? पापीजनों के आश्रय से, व्रत भङ्ग से, दुराचार से और मिथ्यात्व आदि से भय करना चाहिए अन्य से नहीं।

दुख व मरण की जन्मभूमि शरीर

शोक से बचने के लिए सर्वप्रथम उपयोग बदलना चाहिए क्योंकि उपयोग, साधुओं के पास एक ऐसा साधन है जिसके कारण वे दुख में भी सुख का संवेदन करने लगते हैं।

दो काम एक साथ नहीं होते कि धर्मध्यान भी चलता रहे और आर्त्तध्यान भी चलता रहे। यदि धर्मध्यान है तो आर्त्तध्यान नहीं होगा और आर्त्तध्यान होगा तो धर्मध्यान नहीं होगा।

यह हमारी भारतीय संस्कृति है कि शोक के समय, वियोग के समय व्यक्ति आत्मसाधना में निमग्न होता है, आत्म कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करता है।

हे आत्मकल्याणेच्छु! यहाँ पर पूज्य आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि संसार में जिन पदार्थों का संयोग हुआ है एक दिन उनका वियोग होगा ही। जो आज मिला है वह कल बिछुड़ेगा। लेकिन अज्ञानता के कारण अज्ञानी प्राणी ऐसा मानता है कि यह हमेशा-हमेशा रहेगा और इसी मान्यता के कारण वह लोक में दुखी होता है। लेकिन ज्ञानी इस स्थिति को जानता है इसलिए उसके वियोग होने पर दुखी नहीं होता। इसी बात को पूज्य आचार्य महाराज यहाँ पर कह रहे हैं—

दुःखे वा समुपस्थितेऽथ मरणे शोको न कार्यो बुधैः,
संबंधो यदि विग्रहेण यदयं संभूति धात्र्येतयोः।
तस्मात्तत्परिचिन्तनीयमनिशं संसारदुःखप्रदो,
येनास्य प्रभवःपुरः पुनरपि प्रायो न संभाव्यते॥5॥

अर्थ—यदि शरीर के साथ सम्बन्ध है तो दुःख के अथवा मरण के उपस्थित होने पर विद्वान पुरुषों को शोक नहीं करना चाहिए। कारण यह है कि वह शरीर इन दोनों (दुःख और मरण) की जन्मभूमि है, अर्थात् इन दोनों का शरीर के साथ अविनाभाव है अतएव निरन्तर उस आत्म स्वरूप का विचार करना चाहिए जिसके द्वारा आगे प्रायः संसार के दुख को देने वाली इस शरीर की उत्पत्ति की फिर से संभावना ही न रहे।

बन्धुओ! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि यदि शरीर के साथ सम्बन्ध है तो दुख के अथवा मरण के उपस्थित होने पर विद्वान पुरुषों को शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि जब तक शरीर का

सम्बन्ध है तब तक दुख व मरण होता रहेगा। शरीर के नष्ट किए बिना दुखों का अभाव नहीं हो सकता इसलिए जिसका शरीर नहीं है उनको कोई दुख नहीं है जिनका शरीर है उनको दुख है। इसी कारण शरीर दुखों की जड़ है, दुखों को उत्पन्न करने वाला है। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि एक ऐसा पुरुषार्थ कीजिए जिससे शरीर की प्राप्ति ही न हो। अतः भगवान तीर्थंकरों ने एक ऐसा पुरुषार्थ किया कि वे अशरीरी हो गए। (मोक्ष/सिद्धालय/सिद्ध अवस्था का दूसरा नाम अशरीरपना है) क्योंकि यह शरीर दुखों का घर है और वह दुख शरीर के जन्म-मरण का है यदि जन्म हुआ है तो नियम से मरण होगा, किसी का जल्दी तो किसी का देरी से। इसलिए हे भव्य! जो तू शरीर के विषय में मोह रखता है आसक्ति रखता है और इसे विश्वासपात्र कहता है—इसकी सेवा में रत रहता है। लेकिन तू यह भूल जाता है कि यह तेरा नहीं है।

वर्द्धमान चरित्र में उल्लेख है कि जब तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी को वैराग्य हुआ और वे वन की ओर जाने लगे तो उनके पीछे-पीछे उनकी माता विलाप करते हुए पहुँच गई और इतनी जोर से विलाप करते हुए पहुँची कि सारा जंगल गूँज उठा। उसके इस विलाप को सुनकर सौधर्म इन्द्र विचार में डूब गया कि साधारण माँ को तो समझाया जा सकता है लेकिन तीर्थंकर की माँ को कौन समझा सकता है? और वह माता त्रिशला के पास गया और बोला—हे माँ! हे जगत माँ!! आपका यह रोना वर्द्धमान के लिए क्या प्रयोजन सिद्ध करेगा? शुभ कार्यों में रोना अशुभ माना जाता है, अमंगल माना जाता है, अपशकुन माना जाता है। तीर्थंकर वर्द्धमान भी कहते हैं—हे माँ! मैं अब ऐसा पुरुषार्थ करूँगा जिसके बाद किसी को रोना नहीं पड़ेगा। आज तक मैंने इतनी माताओं को रुलाया कि यदि उनके आसुँओं को एकत्रित किया जाए तो समुद्र बन जाएगा। इसलिए अब तू मेरी अन्तिम माँ होगी, शोक करने से तो कर्म का ही बंध होता है क्योंकि शरीर का सम्बन्ध ही ऐसा है जिससे कभी आस्रव-बंध रुकता नहीं है। पश्चात् वर्द्धमान दीक्षा ले लेते हैं और माँ के विचारों में अन्तर आ जाता है वह सावधान हो जाती है क्योंकि माँ का सम्बन्ध सबसे अधिक मोह को उत्पन्न करता है।

बन्धुओ! एक मात्र सन्त ऐसे होते हैं जो शरीर से विरक्त होते हैं वे विचार करते हैं कि इस शरीर में मेरा जन्म आत्म साधना के लिए हुआ है और मैंने दीक्षा आत्मसाधना के लिए ली है इसलिए वे स्नान नहीं करते, मंजन नहीं करते जिससे शरीर पर तथा दाँतों में सहज मात्रा में मैल जम जाता है। एक बार किसी ने पूछा—सन्त स्नान व दाँतुन क्यों नहीं करते? मैंने कहा—अहिंसा व्रत की रक्षा के साथ-साथ ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा के लिए क्योंकि मैल जम जाने से शरीर तथा दाँतों से गंध आती है तो उनके पास बैठने के लिए कोई तैयार नहीं होता और उनका ब्रह्मचर्य व्रत का पालन सहज हो जाता है। शरीर में मैल होने से आराम से कहीं पर भी बैठने में कोई परेशानी नहीं होती क्योंकि जिसके शरीर में पहले से मिट्टी या मैल लगा हुआ है अब उसको बैठने में क्या परेशानी? हम लोगों का श्रेयांसगिरि क्षेत्र का चातुर्मास एक ऐसा ही था जहाँ मिट्टी ही मिट्टी और बैठने तथा सोने के लिए शिलाएँ ही शिलाएँ। वहाँ साधना करने में बड़ा आनन्द आता था। तथा ऐसे स्थानों पर साधना करने से एक अनुभव तथा सहनशीलता मिलती है और एक साहस उत्पन्न होता है कि कभी ऐसी परिस्थिति भी मिल जाएगी तो भी काम चल सकता है।

इसलिए साधुओं को कभी पराधीन नहीं रहना चाहिए जिससे निर्भीकता के साथ हर परिस्थिति में प्रसन्न रह सके। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि हम किसी कारण से कोई परिषह सहन कर लेते हैं या किसी परिस्थिति से गुजर जाते हैं तो कभी कैसी भी परिस्थिति के आने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और वह जो जिन्दगी भर याद रहता है स्मृति में रहता है कि हम ऐसी परिस्थिति में भी समता रख सकते हैं। कारण यह है कि यह शरीर इन दोनों (दुख और मरण) की जन्मभूमि है। अर्थात् शरीर में ही जन्म-मरण और दुख होता है। इसलिए मरण या दुख के उपस्थित होने पर शोक नहीं करना चाहिए। अतएव निरन्तर उस आत्मस्वरूप का विचार करना चाहिए जिसके द्वारा आगे प्रायः संसार के दुख को देने वाली इस शरीर की उत्पत्ति की संभावना ही न रहे। अर्थात् **शोक से बचने के लिए सर्वप्रथम उपयोग बदलना चाहिए क्योंकि उपयोग, साधुओं के पास एक ऐसा साधन है जिसके कारण वे दुख में भी सुख का संवेदन करने लगते हैं।** वे तत्त्व चिन्तन में इतना डूब जाते हैं कि उनका ध्यान भी अन्य जगह नहीं जाता है और जो व्यक्ति इस प्रकार से आत्म-स्वरूप का चिन्तन करता है उसका समय बहुत आसानी से निकल जाता है निराकुलता से निकल जाता है।

बन्धुओ! एक बार पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज का ससंघ विहार चल रहा था उस समय हम भी साथ में थे विहार करते-करते रास्ते में शाम हो गई ठंडी का मौसम था और रात्रि विश्राम जंगल में करना पड़ा। पूज्य आचार्य श्री तो ध्यान में तल्लीन हो गए संघ में रहने वाले संघपति श्रीपालजी ने लालटेन जलाकर रख दी। उन्होंने देखा कि महाराज के शरीर से पसीना बह रहा है और जब महाराज के शरीर को छूकर देखा तो शरीर गर्म था। प्रातः होने पर उन्होंने पूज्य आचार्य श्री से पूछा—आचार्य श्री आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है क्या? रात्रि में इतनी ठंडी होने पर भी आपके शरीर से पसीना आ रहा था और आपका शरीर गर्म था क्या आपको ठंडी नहीं लग रही थी? महाराज—हाँ, शुरू में मुझे ठंडी लगी थी फिर मैं ध्यान में बैठ गया था और अग्नि धारणा प्रारम्भ कर दी थी जिससे ठंडी नहीं लगी। इस प्रकार सन्त हर परिस्थिति में रहने के पहले तत्त्व चिन्तन कर लेते हैं जिससे उन्हें हर कष्ट आसान हो जाते हैं। अथवा आत्मा का सहारा लेते हैं कि शरीर दुखों का वेदन करता है आत्मा तो अनंत गुणों का पिण्ड/समूह है। अनंत/असीम आनन्द से सम्पन्न शुद्ध हमारी आत्मा है। जब ऐसे शुद्ध आत्मा का आश्रय लेते हैं तो दुख सहना आसान हो जाता है। गजकुमार मुनिराज जिनके सिर पर जलती हुई सिगड़ी रख दी, सुकुमाल मुनिराज जिन्हें तीन दिन तक श्यालनी खाती रही, सुकौशल मुनिराज जिन्हें शेरनी चीथती रही फिर भी प्रसन्न मुद्रा, कोई आकुलता-व्याकुलता नहीं क्योंकि आत्मा का आश्रय लिया है। इस प्रकार सन्त बड़े-बड़े परिषह आत्म-बल, आत्म-चिन्तन के बल से सहन कर लेते हैं। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि मोक्ष सुख के लिए आत्म सुख का चिन्तन करना चाहिए क्योंकि जो संसार के दुखों का, शरीर के दुखों का चिन्तन करता है वह संसार-शरीर के दुखों से मुक्त हो जाता है लेकिन जो आत्म ध्यान से विरक्त हो जाते हैं और शरीर का ध्यान करते रहते हैं उनके लिए फिर पुनः-पुनः शरीर की प्राप्ति होती रहती है। इसी बात के लिए आगे कहते हैं—

**दुर्वारार्जितकर्मकारणवशादिष्टे प्रणष्टे नरे,
यच्छोकं कुरुते तदत्र नितरामुन्मत्तलीलायितम्।
यस्मात्तत्र कृते न सिध्यति किमप्येतत्परं जायते,
नश्यन्त्येव नरस्य मूढमनसो धर्मार्थकामादयः॥6॥**

अर्थ—पूर्वोपार्जित दुर्निवार कर्म के उदय वश किसी इष्ट मनुष्य का मरण होने पर जो यहाँ शोक किया जाता है वह अतिशय पागल मनुष्य की चेष्टा के समान है। कारण कि उस शोक के करने पर कुछ भी सिद्ध नहीं होता, बल्कि उससे केवल यह होता है कि उस मूढ़ बुद्धि मनुष्य के धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ आदि ही नष्ट होते हैं।

बन्धुओ! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि पूर्वोपार्जित दुर्निवार कर्म के उदयवश किसी इष्ट मनुष्य का मरण होने पर जो शोक किया जाता है वह अतिशय पागल मनुष्य की चेष्टा के समान है। कारण कि उस शोक के करने पर कुछ भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि शोक करने से मृत व्यक्ति फिर से वापिस नहीं आ सकता है पुनः जीवित नहीं हो सकता है लेकिन अज्ञानीजन उसके विषय में उल्टा सोचता है, उसका बार-बार ध्यान करता है जिससे उसके जीवन में इष्ट वियोग जन्म आर्त्तध्यान चलता रहता है और आर्त्तध्यान से व्यक्ति निरन्तर नए-नए कर्मों को बाँधता है। एक तो पूर्व में आर्त्तध्यान करने से इष्ट का वियोग हुआ और उसके वियोग में पुनः आर्त्तध्यान करने से पुनः इष्ट वियोग जन्म दुख होगा। इसलिए शोक करने से कुछ भी सफलता नहीं होती, बल्कि उससे यह होता है कि उस मूढ़ मनुष्य के धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ आदि ही नष्ट होते हैं क्योंकि **दो काम एक साथ नहीं होते कि धर्मध्यान भी चलता रहे और आर्त्तध्यान भी चलता रहे। यदि धर्मध्यान है तो आर्त्तध्यान नहीं होगा और आर्त्तध्यान होगा तो धर्मध्यान नहीं होगा।** इस प्रकार शोकाकुलित व्यक्ति कुछ भी काम नहीं कर सकता है अर्थात् व्यापार आदि कार्य को नहीं कर सकता है। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं हे भव्य! इस बात का ध्यान रख कि कभी भी किसी भी इष्ट के वियोग हो जाने पर शोक मत करो। बल्कि सत्य स्थिति का चिन्तन करो क्योंकि सत्य का चिन्तन करने वाला इष्ट का वियोग होने पर भी अपने परिणामों को सन्तुलित करता है और अपनी धार्मिक भावनाओं को जागृत करता है।

बन्धुओ! एक स्वाध्याय शील परिवार था जिसमें मात्र पति, पत्नी और एक बेटा ऐसे तीन प्राणी थे वे सभी स्वाध्याय प्रेमी के साथ-साथ वैरागी भी थे एक दिन ऐसी घटना घटी कि रात्रि के समय बेटे की मृत्यु हो गई। पत्नि ने रात्रि होने से बेटे को कपड़े में लपेट दिया और स्वयं रातभर गहरे तत्त्व चिन्तन में डूबी रही। लेकिन प्रातः होने पर पति ने उठकर देखा तो वह समझ नहीं पाया कि बेटा खत्म हो गया है वह यही समझ रहा था कि बेटा जीवित है। जब कुछ समय बीत गया पति ने पत्नि से कहा—क्या बात है, बेटा का स्वास्थ्य ठीक नहीं है क्या? पत्नि ने कहा—अपने घर में एक यात्री आया था वह अपनी समय सीमा तक रहा और रात्रि में ही विदाई ले लिया। पति, पत्नि की बात सुनकर संसार-शरीर की दशा का चिन्तन करता है। पश्चात् दोनों आत्म-साधना में निमग्न हो जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जिसके पास तत्त्व ज्ञान होता है और तत्त्व-ज्ञान

के साथ-साथ वास्तविक आत्म चिन्तन होता है वह किसी भी वस्तु के वियोग होने पर शोक नहीं करता अपितु स्वयं जाग जाता है, स्वयं आत्म साधना में रत हो जाता है क्योंकि वह सोचता है मुझे जो समय मिला है उस समय का सदुपयोग कर ले, जीवन का सदुपयोग कर ले, जीवन को धर्म साधना के द्वारा सार्थक और सफल कर ले। मन्दोदरी के विषय में आता है कि जिस समय रावण का शव युद्ध स्थल पर गिरा हुआ था उस समय मन्दोदरी आदि 18000 रानियाँ उस शव के समक्ष विलाप कर रही थी काफी समय पश्चात् वे सोचती है कि विलाप से कोई लाभ नहीं है और अन्त में वे सभी रानियाँ दीक्षा ले लेती हैं। **यह हमारी भारतीय संस्कृति है कि शोक के समय, वियोग के समय व्यक्ति आत्मसाधना में निमग्न होता है आत्म कल्याण के मार्ग को प्रशस्त करता है** लेकिन आज की पाश्चात्य संस्कृति है कि जब किसी पर ऐसी घटना घटती है या सहन नहीं होती तो व्यक्ति आत्महत्या कर लेता है। यही दोनों संस्कृतियों में अन्तर है कारण कि भारतीय संस्कृति में हमारे सन्तों, मुनियों ने हमारे लिए एक ऐसे चिन्तन की धारा दी है एक ऐसे विचार की धारा दी है जो पाश्चात्य संस्कृति में नहीं मिल पाती। इसलिए बन्धुओ! हम सभी को चाहिए कि किसी के जीवन में कभी कर्म के उदयवश ऐसा समय आ जाए तो तत्त्व चिन्तन के द्वारा अपनी समता बनाना चाहिए और अपनी भावना को प्रशस्त करना चाहिए—यही जीवन की सार्थकता है। **इसी भावना के साथ—**

महावीर भगवान की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—5.12.09
वार—शनिवार

धन्य कौन?

के धन्या यौवनस्था ये प्राथ चक्रयादिजां श्रियम्।
त्यजन्ति तृणवद् धन्यास्त एवान्ये न सन्त्यहो।। *सु.स.560।।*

अर्थ- धन्य कौन है ? जो यौवन में स्थित होकर तथा चक्रवर्ती आदि से समुत्पन्न लक्ष्मी को तृण के समान छोड़ देते है वे ही धन्य हैं अन्य नहीं।

धर्म का आराधन करो

संयोग एक ऐसा धर्म है जो नियम से वियोग को प्राप्त होगा ही, तो फिर उसमें हर्ष और विषाद नहीं करना चाहिए।

सूर्य, सूर्य होता है वह किसी धर्म, सम्प्रदाय, पंथ, परम्परा का नहीं होता है वह सभी का होता है। इसी प्रकार धर्म किसी व्यक्ति विशेष का नहीं, सभी का होता है।

बन्धुओ! आचार्य श्री पद्‌मनंदि महाराज भव्य प्राणियों के लिए बता रहे हैं कि संयोग, वियोग का अंग है इसलिए पदार्थों के वियोग में शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि शोक, मोह के कारण होता है और उस शोक से व्यक्ति दया का पालन नहीं करता तथा शोक से अशुभ कर्मों का आस्रव होता है जिसका परिणाम भविष्य में दुख के रूप में ही भोगना पड़ता है। इसलिए ज्ञानियों को कभी दुख/शोक नहीं करना चाहिए। इसी बात को आचार्य महाराज कह रहे हैं–

उदेति पाताय रविर्यथा तथा शरीरमेत्तन्ननु सर्वदेहिनाम्।
स्वकालमासाद्य निजेऽपि संस्थिते करोति कः शोकमतः प्रबुद्धधीः॥7॥

अर्थ–जिस प्रकार सूर्य का उदय अस्त होने के लिए होता है उसी प्रकार निश्चय से समस्त प्राणियों का यह शरीर भी नष्ट होने के लिए उत्पन्न होता है। फिर काल को पाकर अपने किसी बंधु आदि का भी मरण होने पर कौन सा बुद्धिमान् पुरुष उसके लिए शोक करता है? अर्थात् उसके लिए कोई भी बुद्धिमान् शोक नहीं करता।

हे परमात्मपदेच्छु! आचार्य महाराज यहाँ कह रहे हैं कि शोक, मात्र मनुष्य गति के मनुष्यों में ही नहीं होता बल्कि चारों गति के प्राणियों में होता है। जब हम बन्दरिया को देखते हैं यदि जन्म देने के बाद उसके बच्चे की छोटी उम्र में ही मृत्यु हो जाए तो वह उसे यूँ ही नहीं छोड़ देती बल्कि कई दिनों और महिनों तक उसे लेकर घूमती है और उसे सम्हालने का प्रयास करती है इसी प्रकार हथनी का बच्चा यदि खत्म हो जाए तो वह कितने दिनों तक भोजन नहीं करती क्योंकि उसको भी शोक/दुख होता है। चूँकि वह पशु है उसे ज्ञान नहीं है लेकिन एक ज्ञानी के लिए दीर्घकाल तक शोक बना रहे तो आचार्य महाराज कहते हैं यह अज्ञानता है क्योंकि जिस प्रकार सूर्य का उदय अस्त होने के लिए होता है उसी प्रकार से सम्पूर्ण प्राणियों का यह शरीर भी नष्ट होने के लिए उत्पन्न होता है अर्थात् जो जन्म लेता है वह नियम से मृत्यु को प्राप्त होता है यह

शाश्वत सिद्धान्त है जिसे कभी मिटाया नहीं जा सकता, इसी का नाम संसार है और इस जन्म-मरण रूप संसार में अपने-अपने समय को पाकर अपने किसी बंधु आदि का भी मरण होने पर कौन सा बुद्धिमान् पुरुष उसके लिए शोक करता है? अर्थात् कोई नहीं करता। क्योंकि हर व्यक्ति अपनी-अपनी आयु लेकर आता है और आयु प्रमाण जीवन व्यतीत कर मरण को प्राप्त होता है इसलिए बुद्धिमान् इस विषय में शोक नहीं करता। बल्कि सावधान होकर, संसार की स्थिति को जानकर उसे छोड़ देता है। लेकिन अज्ञानी का मोह बना रहता है और जिसका जितना-जितना अधिक मोह होता है उसको उतनी-उतनी अधिक वेदना होती है और कभी-कभी तो कमजोर दिल वाले व्यक्ति की समाचार सुनते ही जीवन लीला समाप्त हो जाती है। इसलिए कभी शोक के समाचार किसी को डायरेक्ट नहीं दिए जाते और न देना चाहिए क्योंकि पता नहीं रहता व्यक्ति किस प्रकार का है?

बन्धुओ! लक्ष्मण के विषय में पद्मपुराण में उल्लेख है कि उन्हें राम से इतना अधिक मोह था कि रावण द्वारा राम की आवाज में 'हाय लक्ष्मण' इतना सुनते ही लक्ष्मण की मृत्यु हो गई। जिसका घनिष्ठ मोह रहता है उसकी ऐसी ही स्थिति होती है इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं मोह का परिणाम अच्छा नहीं है क्योंकि संयोग होने पर जितनी खुशी, आनन्द होता है वियोग होने पर उससे अधिक वेदना होती है और कभी अधिक राग का परिणाम प्रतिकूल (द्वेष रूप में भी) निकलता है। सुकौशल की माँ को अपने बेटे से घनिष्ठ राग था और उसका परिणाम यह निकला कि वह मरकर शेरनी हुई और मोह के कारण सुकौशल को मुनि अवस्था में भक्षण करती रही। इसलिए हे भव्य! तू ऐसा मोह क्यों करता है जिसके कारण शोकाकुलित होना पड़ता है अतः तू ऐसे मोह को/शोक को छोड़ दे। इसी बात को आगे आचार्य महाराज कहते हैं—

भवन्ति वृक्षेषु पतन्ति नूनं पत्राणि पुष्पाणि फलानि यद्वत्।
कुलेषु तद्वत्पुरुषाः किमत्र हर्षेण शोकेन च सन्मतीनाम्॥8॥

दुर्लङ्घ्याद्भवितव्यताव्यतिकरान्नष्टे प्रिये मानुषे,
यच्छोकः क्रियते तदत्र तमसि प्रारभ्यते नर्तनम्।
सर्वं नश्वरमेव वस्तु भुवने मत्वा महत्या धिया,
निर्धूताखिल दुःख संतति रहो धर्मः सदा सेव्यताम्॥9॥

अर्थ—जिस प्रकार वृक्षों में पत्र, पुष्प एवं फल उत्पन्न होते हैं और वे समयानुसार निश्चय से गिरते भी हैं, उसी प्रकार कुलों (कुटुम्ब) में जो पुरुष उत्पन्न होते हैं वे मरते भी हैं। फिर बुद्धिमान मनुष्यों को उनके उत्पन्न होने पर हर्ष और मरने पर शोक क्यों होना चाहिए? नहीं होना चाहिए।

अर्थ—दुर्निवार दैव के प्रभाव से किसी प्रिय मनुष्य का मरण हो जाने पर जो यहाँ शोक किया जाता है वह अँधेरे में नृत्य प्रारम्भ करने के समान है। संसार में सभी वस्तुएँ नष्ट होने वाली हैं, ऐसा उत्तम बुद्धि के द्वारा जानकर समस्त दुखों की परम्परा को नष्ट करने वाले धर्म का सदा आराधन करो।

हे भव्य! जिस प्रकार वृक्ष के ऊपर पत्र, पुष्प एवं फल उत्पन्न होते हैं वे समय आने पर निश्चय से गिर जाते हैं। अर्थात् ऐसा कभी नहीं होता कि वृक्ष पर पत्ते, पुष्प व फल बराबर लगे रहें बल्कि आते हैं और गिर जाते हैं ऐसा निरन्तर चलता रहता है। ठीक उसी प्रकार से कुलों (कुटुम्ब) में जो पुरुष उत्पन्न होते हैं वे मरते भी हैं। फिर बुद्धिमान पुरुषों को उनके उत्पन्न होने पर हर्ष और मरने पर शोक क्यों होना चाहिए? नहीं होना चाहिए क्योंकि **संयोग एक ऐसा धर्म है जो नियम से वियोग को प्राप्त होगा ही, तो फिर उसमें हर्ष और विषाद नहीं करना चाहिए।** इसी प्रकार—

हे मोक्षेच्छुक! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि भवितव्यता अत्यन्त दुर्लभ है। भवितव्यता यानि भाग्य, दैव जो दुर्निवार है दुर्लभ है ऐसे दुर्निवार दैव के प्रभाव से किसी प्रिय मनुष्य का मरण हो जाने पर जो शोक किया जाता है वह अंधेरे में नृत्य प्रारंभ करने के समान है क्योंकि अंधेरे से सभी को डर लगता है। यदि कदाचित् कोई कार्यक्रम रात में भी किया जाता है तो वहाँ पर्याप्त प्रकाश किया जाता है। इसलिए वियोग में शोक करना यानि रात्रि में नृत्य करने के समान है क्योंकि इस संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सभी नष्ट होने वाली हैं, ऐसा उत्तम बुद्धि के द्वारा जानकर दुखों की परम्परा को नष्ट करने वाले धर्म की सदा आराधना करना चाहिए।

बन्धुओ! हमारे शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि जिस समय किसी इष्ट का वियोग हुआ तो परिजनों ने व्रत, संयम को धारण किया। आज लोक व्यवहार में भी देखा जाता है कि जब पति का वियोग हो जाता है तो पत्नि श्रृंगार को अलग कर देती है सादा वेश को धारण करती है लेकिन आज की परम्परा इतनी बिगड़ गई है कि पता ही नहीं चलता कि सौभाग्यवती है या विधवा अर्थात् पति की मृत्यु के पश्चात् भी शृंगार करती है। अब यह परम्परा तो यहाँ तक पहुँच गई है कि छोटी उम्र होने के कारण माता-पिता या बेटी स्वयं दूसरी शादी के लिए तैयार हो जाती है। एक बार मारबाड़ में हम लोग विहार कर रहे थे तो एक गाँव में आहार हुआ और मेरा शुरू में अंतराय हो गया। गाँव के लोग जो कि जैन नहीं थे लेकिन श्रद्धालु थे उन लोगों में और संघपति में काफी चर्चा वार्ता हुई और अन्त में गाँव के लोगों ने हम लोगों को आगे विहार नहीं करने दिया, वही रोक लिया और हम लोगों को वहाँ रुकना पड़ा। उस समय उस गाँव के ठाकुर की पत्नि अपनी बेटी को लेकर आई। उस समय उसकी बेटी के विषय में चर्चा सब जगह थी कि इसका पति खत्म हो गया है और यह दूसरी शादी नहीं करा रही है। घर के लोगों ने सुना। तो वो भी सोच में पड़ गए। बेटी ने कहा—महाराज, मैं दूसरी शादी नहीं कराऊँगी। घर के लोग भी काफी मेहनत कर रहे हैं लेकिन यह बात सत्य है। यदि अभी तक किसी को पता न हो तो आज मैं व्रत लेती हूँ कि मैं दूसरी शादी नहीं करूँगी। तथा मैं अपने परिवार के साथ भी नहीं रहूँगी मेरा अलग ही मकान रहेगा। मात्र खान-पान एक साथ रहेगा। सफेद ड्रेस में रहूँगी। हम लोगों ने उसको खूब आशीर्वाद दिया। कहने का तात्पर्य है पहले जब भी कोई स्त्री विधवा हो जाती थी वह शृंगार धारण नहीं करती थी क्योंकि कि शृंगार सौभाग्य का लक्षण है और जिसके पति की मृत्यु हो गई है अब वह सौभाग्यवती नहीं कहलाती है ऐसी अवस्था में विधवा का धर्म पालन करना चाहिए यानि सात्विक जीवन व्यतीत करना चाहिए अर्थात् उस अनन्त सुख को प्रदान करने वाले धर्म का सेवन करना

चाहिए श्रवण करना चाहिए और अपने जीवन को धर्ममय करना चाहिए, आत्म साधना में निरत रहना चाहिए ऐसा आचार्य महाराज ने कहा है। आगे लिखते हैं—

पूर्वोपार्जित कर्मणा विलिखितं यस्यावसानं यदा,
तज्जायेत तदैव तस्य भविनो ज्ञात्वा तदेतद्ध्रुवम् ।
शोकं मुञ्च मृते प्रिये ऽपि सुखदं धर्मं कुरुष्वादरात्,
सर्पे दूर मुपागते किमिति भोस्तद्घृष्टिराहन्यते॥10॥

अर्थ—पूर्व में कमाए गए कर्म के द्वारा जिस प्राणी का अन्त जिस समय लिखा गया है उसका उसी समय में अन्त होता है, यह निश्चित जानकर किसी प्रिय मनुष्य का मरण हो जाने पर भी शोक को छोड़े और विनयपूर्वक सुखदायक धर्म का आराधन करो। ठीक है—जब सर्प दूर चला जाता है तब उसकी रेखा को कौन-सा बुद्धिमान पुरुष लाठी आदि के द्वारा ताड़न करता है? अर्थात् कोई भी बुद्धिमान वैसा नहीं करता है।

भव्य बन्धुओ! आचार्य महाराज कहते हैं पूर्वोपार्जित यानि पूर्व में कमाए गए कर्म के द्वारा जिस प्राणी का अंत जिस समय लिखा गया है उसका उसी समय में अंत होता है क्योंकि जिस जीव ने अपनी भुज्यमान आयु (वर्तमान में जो आयु चल रही है) का त्रिभाग निकल जाने पर जो बंधापकर्ष का काल आता है (आयुबंध का समय आता है) यदि उस समय अजघन्य या अनुत्कृष्ट परिणाम हो तो आयु का बंध होता है। अजघन्य और अनुत्कृष्ट का अर्थ है जघन्य तथा उत्कृष्ट परिणाम नहीं होना क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट परिणामों में आयु का बंध नहीं होता और यह बंधापकर्ष 8 होते हैं जिसमें पहला बंधापकर्ष भुज्यमान आयु के तीन भाग निकल जाने पर जो पहला समय होता है उसमें होता है कदाचित् उसमें आयु का बंध नहीं हुआ तो बची शेष आयु के पुनः त्रिभाग निकल जाने पर जो पहला समय आता है उसमें दूसरा बंधापकर्ष होता। इस प्रकार 8 बंधापकर्ष का काल जानना चाहिए। फिर भी इसमें आयु का बंध नहीं हुआ तो मृत्यु के अन्तमुर्हूर्त पहले नियम से अजघन्य परिणाम होते हैं और उस समय आयु का बंध होता है। तथा जिस जीव की जितनी लम्बी या छोटी आयु होगी उसी के अनुसार उसमें अबाधा काल पड़ता है। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि जिस व्यक्ति ने पूर्व में जिस आयु को बाँधा है उस कारण से उसकी स्थिति निश्चित है उसे घटा-बड़ा नहीं सकते हैं। आगे कहते हैं इस प्रकार आयु का अन्त समय निश्चित जानकर किसी प्रिय मनुष्य का मरण हो जाने पर शोक को छोड़ो और विनयपूर्वक सुखदायक धर्म का आराधन करो क्योंकि मृत्यु ध्रुव है उसको कोई टाल नहीं सकता, बदल नहीं सकता। इसलिए जिसकी जितनी आयु है वह आयु प्रमाण रहकर मृत्यु को अवश्य प्राप्त होता है। अतः प्रियजनों की मृत्यु के पश्चात् शोक को छोड़कर सुख को उत्पन्न करने वाले तथा कष्ट एवं विपत्तियों को दूर करने वाले धर्म को आदर से धारण करना चाहिए।

बंधुओ! धर्म हमारे लिये आदर-सम्मान प्राप्त कराता है, धर्म नम्रता सिखाता है लेकिन कोई कहे कि हम है इसलिए धर्म है यदि हम नहीं होते तो धर्म का नाम नहीं होता। आचार्य महाराज

कहते हैं कि ऐसा नहीं है आपके नहीं होने पर भी धर्म है और आप हैं तब भी धर्म है और जब आप नहीं रहेंगे तब भी धर्म रहेगा। धर्म आपके अनुसार नहीं चलता बल्कि हम धर्म के अनुसार चलते हैं कि हमारा कल्याण/हित हो। अन्यथा अहंकार जाग्रत होगा जिससे वह व्यक्ति नियम से पाप करेगा। इसलिए धर्म हमारे साथ नहीं अपितु हमें धर्म के साथ खड़ा होना होगा।

एक बार की बात है कि एक व्यक्ति के अन्दर ऐसी धारणा थी कि धर्म, हमारे अनुसार चलता है। एक दिन उसे समझाने के लिए मैंने कहा—बताओ सही, धर्म क्या है? उसने कहा—जैन धर्म सत्य है। चूँकि वह जैन था इसलिए उसने जैन धर्म कहा। हमने कहा—यदि मृत्यु के पश्चात् तुम्हारा जन्म किसी मुसलमान, बौद्ध, सिक्ख आदि परिवार में हो जाए तो आप क्या कहेंगे? फिर तो आपको यही कहना पड़ेगा कि मुस्लिम, बौद्ध, सिक्ख आदि धर्म सही है फिर बतलाओ सत्य-सत्य रहेगा क्या? नहीं सत्य-सत्य नहीं रहेगा। इसलिए धर्म किसी के अनुसार नहीं चलता। धर्म सदैव एक जैसा रहता है उसके साथ कोई विशेषण नहीं होता क्योंकि विशेषण लगा देने से धर्म संकीर्ण हो जाता है। आचार्य समन्तभद्र महाराज जिन्होंने धर्म की व्याख्या करते हुए रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है—

देशयामि समीचीनं, धर्मं कर्मनिबर्हणम्।
संसार दुःखतः सत्त्वान्, यो धरत्युत्तमे सुखे॥2॥

मैं धर्म को कहूँगा? जब पूज्य आचार्य श्री से प्रश्न किया गया कि आप किस धर्म के विषय में कहेंगे जैन धर्म, बौद्ध, हिन्दूधर्म पर? तो आचार्य महाराज कहते हैं—नहीं, मैं उस धर्म को कहूँगा जिसे **धर्मं धर्मेश्वरा विदुः**॥3र.क.श्रा.॥ धर्म के ईश्वर धर्मेश्वर ने कहा है। यहाँ उन्होंने कोई विशेषण नहीं लगाया। जैसे **सूर्य, सूर्य होता है वह किसी धर्म, सम्प्रदाय, पंथ, परम्परा का नहीं होता है वह सभी का होता है। इसी प्रकार धर्म किसी व्यक्ति विशेष का नहीं, सभी का होता है।** इसलिए हम धर्म के प्रति सदैव आदर, सम्मान रखें क्योंकि आज हमें जो कुछ भी मिला है धर्म करने से मिला है। यदि कभी सौभाग्य से भगवान के दर्शन, पूजा, पाठ, स्वाध्याय, जाप, सामायिक, प्रतिक्रमण करने का अवसर मिल जाए तो आदर के साथ करें क्योंकि जो व्यक्ति धर्म को छोड़कर के शोक करता है वह उसी प्रकार से जैसे सर्प के निकल जाने के बाद उसकी रेखा को कौन सा बुद्धिमान पुरुष लाठी आदि के द्वारा ताड़न करता है? अर्थात् कोई भी बुद्धिमान वैसा नहीं करता क्योंकि शोक में बैठे रहने से कोई लाभ नहीं है अपितु ऐसी साधना करना चाहिए कि जीवन में कभी शोक न हो। **इसी भावना के साथ—**

महावीर भगवान की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—6.12.09
वार—रविवार

पाप व दुख का कर्त्ता-शोक

व्यक्ति अपने दुखों से कम दुखी, दूसरों के सुखों से अधिक दुखी है।

शोक, पापों को जन्म देने वाला होता है और भविष्य में भी विशाल दुखों को प्रदान करने वाला होता है इसलिए जो शोक करता है वह व्यक्ति महामूर्ख कहलाता है

बन्धुओ! आचार्य पद्मनंदि महाराज अपने पुनीत ग्रंथ में उन प्राणियों के लिए बार-बार सम्बोधन कर रहे हैं जो निरन्तर मोक्ष की राह पर चल कर भी इष्ट के वियोग हो जाने पर शोक करते हैं और दीर्घकालीन शोक करते रहते हैं इस शोक के कारण वे न तो पर्याप्त भोजन कर पाते हैं, न नींद ले पाते हैं, न आराम कर पाते हैं इसी कारण वे अस्वस्थ हो जाते हैं, बीमार हो जाते हैं और कभी-कभी तो उनकी बेमौत मृत्यु हो जाती है इसलिए आचार्य महाराज बार-बार सावधान करते हैं कि शोक नहीं करना चाहिए। वे लिखते हैं—

ये मूर्खा भुवितेऽपि दुःखहतये व्यापारभ्मातन्वते,
सा मा भूदथवा स्वकर्मवशतस्तस्मान्न ते तादृशाः।
मूर्खान् मूर्ख शिरोमणीन् ननु वयं तानेव मन्यामहे,
ये कुर्वन्ति शुचं मृते सति निजे पापाय दुःखाय च॥11॥

अर्थ—इस पृथ्वी पर जो मूर्खजन हैं वे भी दुख को नष्ट करने के लिए प्रयत्न करते हैं। फिर यदि अपने कर्म के प्रभाव से वह दुख का विनाश न भी हो तो भी वे वैसे मूर्ख नहीं हैं। हम तो उन्हीं मूर्खों को मूर्खों में श्रेष्ठ अर्थात् अतिशय मूर्ख मानते हैं जो किसी इष्ट जन का मरण होने पर पाप और दुख के निमित्तभूत शोक को करते हैं।

हे आत्महितेच्छु! पृथ्वी (संसार) में जितने भी मूर्ख प्राणी हैं वे दुख नहीं करते हैं क्योंकि संसार में व्यक्ति जिनके लिए मूर्ख मानते हैं उनके लिए आचार्य पद्मनंदि महाराज मूर्ख नहीं मानते हैं क्योंकि वे दुखों को नहीं चाहते इसलिए वे दुखों को दूर करने का अपने बुद्धि, विवेक, ज्ञान के अनुसार प्रयास करते हैं फिर भी अपने कर्म के उदय/प्रभाव से उस दुख का विनाश हो अथवा न हो तो मैं उनके लिए उतना मूर्ख नहीं मानता हूँ जितना कि उन्हीं मूर्खों को मूर्खों में श्रेष्ठ अर्थात् अतिशय मूर्ख मानता हूँ जो किसी इष्ट जन की मृत्यु हो जाने पर पाप और दुख को प्रदान करने वाला शोक करता है क्योंकि शोक नियम से दुखों को उत्पन्न करता है। तत्वार्थ सूत्र के छठवें अध्याय में आचार्य उमास्वामी महाराज ने असातावेदनीय कर्म के आस्रव के कारणों में कहा है—

दुख शोक तापाक्रन्दन-वधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य॥11॥

अर्थात् जब असातावेदनीय कर्म का तीव्र उदय होता है तो दुख होता है और उससे पुनः असातावेदनीय कर्म का आस्रव होता है। संसार में व्यक्ति अनेक कारणों से दुखी होता है और अज्ञानता के कारण सोचता है कि यह मुझे दुख दे रहा है और ऐसी मान्यता के कारण, विचारों के कारण निरन्तर कर्मों को बांधता है। सत्य यह है कि कोई किसी को दुख नहीं देता है। हर व्यक्ति अपने-अपने कर्म के कारण से दुखी है। यदि कोई किसी को सुखी या दुखी करने लग जाए तो फिर व्यक्ति के अपने कर्म का कोई फल नहीं रह जाएगा। सामायिक पाठ में आचार्य अमितगति महाराज लिखते हैं–

स्वयं कृत कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥30॥

अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति को अपनी करनी का फल स्वयं प्राप्त होता है पाप का फल दुख रूप तथा पुण्य का फल सुख रूप होता है। लेकिन किसी के हाथ की बात नहीं है कि कोई किसी को सुख या दुख दे। यह हमारी गलत मान्यता है कि कोई हमको सुख देता है या दुख देता है। हर व्यक्ति के अपने-अपने कर्म हैं इसलिए दुख अपनी अज्ञानता के प्रति मानना चाहिए न कि किसी व्यक्ति आदि के वियोग होने पर क्योंकि संसार में व्यक्ति वियोग होने पर शोक करता है लेकिन क्या आपके दुखी होने से/शोक करने से व्यक्ति वापिस आ जाएगा? नहीं आएगा किन्तु जो व्यक्ति शोक में डूबा रहता है वह निरन्तर असातावेदनीय कर्म को बाँधता रहता है इस कारण से वह आने वाले समय में भी दुख को प्राप्त होता है। तथा दूसरा कारण बताते हुए आचार्य महाराज कहते हैं कभी दुखी/शोक मत करो क्योंकि जितना दुख तुम्हारे पास नहीं है उतना तुमने मान लिया है अथवा आज के समय में व्यक्ति को जितना दुखी नहीं होना चाहिए उससे अधिक दुखी है। कारण उसने अज्ञानता के कारण दुखों का निर्माण कर लिया है। किसी ने कहा है– **व्यक्ति अपने दुखों से कम दुखी, दूसरों के सुखों से अधिक दुखी है।** क्योंकि वह निरन्तर दूसरों की वृद्धि को देखकर सोचता रहता है कि इसके पास इतना सुख कैसे हो गया आदि? इसलिये आचार्य भगवन् उसे समझाते हैं हे भव्य! तू व्यर्थ में दूसरों के लिए सोचता है अगर तुझे सोचना ही है तो अपनी आत्मा के विषय में सोच तो तेरा कल्याण हो जाएगा।

बन्धुओ! एक बार अकबर ने बीरबल से प्रश्न किया कि बीरबल एक लाइन है उस लाइन को बिना मिटाये, बिना काँट-छाँट किये छोटा करना है? बीरबल ने कहा–बिल्कुल आसान काम है हुजूर, उस लाइन के सामने एक बड़ी लाइन खींच दीजिए तो पहली लाइन अपने आप छोटी हो जाएगी, यदि उसे बड़ा करना है तो उसके सामने एक छोटी लाइन खींच दीजिए तो वह बड़ी हो जाएगी।

लेकिन आज व्यक्ति दूसरों को देखता है जिसके कारण वह कभी-कभी डिप्रेशन में आ जाता है तब डॉ. कहते हैं कि भाई तुम अपने से छोटे व्यक्ति को देखो जिसके पास मकान नहीं, कपड़ा

नहीं, भोजन नहीं, गाड़ी नहीं। तुम्हारे पास तो सब कुछ है तुम उनकी अपेक्षा बड़े हो। तब उसको लगने लगता है मैं बहुत खुश हूँ, बहुत बड़ा हूँ। लेकिन जब अपने से बड़े को देखता है तो घबरा जाता है कि मेरे पास कुछ नहीं है। तब आचार्य महाराज कहते हैं कि जो अपने दुख से कम दूसरों के सुखों से दुखी है उन्हें अपने से छोटों का चिन्तन करना चाहिए तो उसका दुख कम हो जाएगा। और यह कर्म के उदय पर नहीं हमारी मानसिकता पर निर्भर है।

बन्धुओ! एक बार एक व्यक्ति पानी पीने जल के पास पहुँचा तभी जल के पास की दीवार पर एक छिपकली थी। जैसे ही उसने नल चालू किया पानी पिया तो पानी के वेग से वह छिपकली वहाँ से चली गई लेकिन पानी का वेग ऐसा था कि उसको लगा छिपकली पानी के वेग के साथ उसके पेट में चली गई। वह वहीं बीमार हो गया और इतना बीमार हो गया कि वह तुरन्त डॉ. के पास पहुँच गया। डॉ. को सारी बात बताई गई। डॉ. ने भी उसकी बात को ध्यान से सुना और कहा अमुक अस्पताल में आप चले जाइए वहाँ आपका इलाज हो जाएगा। उस अस्पताल में मनोवैज्ञानिक डॉ. थे उसने वहाँ भी डॉ. को सारी जानकारी दी। डॉ. ने भी बहुत सारे प्रश्न किए। पश्चात् उसने सोचा यह डॉ. बहुत अच्छा है, इसने सही बताया कि तुम्हारे पेट में छिपकली है यह डॉ. जरूर मुझे ठीक करेगा तथा उसने राहत की साँस ली। तथा डॉ. ने कहा—आप घबराए नहीं, अमुक-2 दवाई लेना पड़ेगी, कुछ दिन यहाँ रहना पड़ेगा। उसने कहा—ठीक है। पश्चात् डॉ. ने कम्पाउंडर को बुलाया और कहा—देखो मरी हुई छिपकली को खोजकर लाओ। कम्पाउंडर मरी हुई छिपकली को ले आया और डॉ. ने उस व्यक्ति को कुछ रेचक औषधि दी जिससे उसे उल्टी हो गई। डॉ. ने कम्पाउंडर को पहले ही बात दिया था कि जैसे ही उसे उल्टी हो उसमें मरी छिपकली को डाल देना और ऐसा ही हुआ उसको जैसे ही उल्टी हुई उसने उसमें मरी छिपकली डाल दी और उससे कहा—उल्टी हो गई। उल्टी में छिपकली निकली क्या? उसने कहा—देखा नहीं। डॉ. ने कहा—देखो। उसने कहा—हाँ-हाँ मरी हुई छिपकली निकल गई। डॉ. ने कहा—अभी थोड़ा विश्राम करना और फिर बताना कि आराम मिला या नहीं। आराम करने के बाद पूछा तो बोला हाँ छिपकली निकलने से आराम हो गया और वह बड़ा खुश होकर डॉ. की प्रशंसा करने लगा। इस प्रकार संसार में कितने सारे लोग हैं जो वास्तविकता में बीमार नहीं हैं लेकिन भ्रम के कारण अपने आपको बीमार मान बैठे हैं और भ्रम की बीमारी ऐसी बीमारी है जिसका इलाज कठिन हो जाता है। जिससे वह निरन्तर दुखी रहता है।

बन्धुओ! कुछ लोग तो अपने नकारात्मक चिन्तन के कारण दुखी हैं इसलिए कहा जाता है ऐसा चिन्तन भी मत कीजिए जो दुखों को उत्पन्न करता हो क्योंकि नकारात्मक चिन्तन वर्तमान में भी दुखी करता है और भविष्य में भी दुखी करता है इसलिए हमारा चिन्तन ऐसा हो जो हमें वर्तमान में भी सुखी रखे और भविष्य में भी सुखी रखे। असातावेदनीय का तीसरा कारण ताप/संताप अर्थात् जब किसी व्यक्ति की लोक निंदा होती है तो संताप होता है और ऐसा संताप जो बाहर से नहीं दिखता लेकिन अन्दर ही अन्दर व्यक्ति को दुबला करता है, कमजोर करता है, जलाता है। लेकिन ऐसा अज्ञानी जीव करता है। ज्ञानी जीव तो तुरन्त संभलता है यदि गल्ति है तो स्वीकार

करके उसका सुधार करता है यदि गल्ति नहीं है तो भी उदास नहीं होता, घबराता नहीं है उसमें भी परीक्षा देता है। सती सीता जिसके सामने भी ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति खड़ी हुई लेकिन वह घबराई नहीं, उसने भी परीक्षा दी। लेकिन परीक्षा के लिए धैर्य होना चाहिए तभी वह सफल हो सकता है। चौथा कारण है आक्रंदन—जिसका अर्थ है विलाप करना और एक ऐसा विलाप करना कि जिसमें अश्रु की धारा बहने लग जाए। कभी-कभी ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो अन्दर की वेदना सहन नहीं कर पाते हैं या अपनी बात कह नहीं पाते हैं तो अश्रु बहाते हैं इसका नाम है आक्रन्दन। पांचवाँ कारण है वध और अन्त में होता है परिवेदन। जिसका अर्थ है कि इस प्रकार से अश्रु बहाना, विलाप भी करना और ऐसे हाव भाव करना कि जिससे दूसरों को रोना आ जाए। नाटक आदि के पात्रों का विलाप ऐसा ही होता है कि दूसरे रोने लगते हैं लेकिन उन लोगों को कुछ नहीं होता।

बंधुओ! आज संसार में जिस घर में रोने वाले नहीं हैं वहाँ रोने के लिए किराये के व्यक्ति बुलाए जाते हैं और वे इस तरह से फूट-फूट कर रोते हैं कि सामने वाले को भी पता चल जाता है इस घर में शोक हुआ है और वे भी रोने लगते हैं। कहने का तात्पर्य है कि शोक करने वाला व्यक्ति एक प्रकार से नहीं बल्कि अनेक प्रकार से कर्मों का आस्रव कर लेता है। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि वह व्यक्ति मूर्ख नहीं मूर्ख शिरोमणी है, महामूर्ख है जिसने इस तत्त्व को नहीं समझा कि पूर्व अशुभ कर्म के उदय से तो आज दुख प्राप्त हुआ है और इस दुख के उदय में यदि हम दुखी होंगे तो पुनः दुख को उत्पन्न करने वाला कर्म बँधेगा जो भविष्य में दुख को ही प्रदान करेगा और इस दुख में वह कभी-कभी इतना बड़ा पाप कर बैठता है जिसका परिणाम जीवन से भी हाथ धोना पड़ता है। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि **शोक, पापों को जन्म देने वाला होता है और भविष्य में भी विशाल दुखों को प्रदान करने वाला होता है इसलिए जो शोक करता है वह व्यक्ति महामूर्ख कहलाता है।** अतः कभी भी शोक नहीं करना चाहिए। **इसी भावना के साथ—**

महावीर भगवान की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—7.12.09
वार—सोमवार

महापुरुष संगति

महानुभव संसर्गः कस्य नोन्नति कारणम्।
गङ्गा प्रविष्टं रक्याम्बु त्रिदशैरपि वन्द्यते।। *सु.स.850।।*

अर्थ- महान् पुरुषों की संगति किसकी उन्नति का कारण नहीं हैं ? किन्तु सभी की उन्नति का कारण है क्योंकि गङ्गा में प्रविष्ट हुआ गलियोर का पानी देवों के द्वारा वन्दनीय हो जाता है।

शोक तजिये मोक्ष राह पर बढ़िये

यदि तुम्हें शोक करना ही है या इस बात की वेदना हो रही है कि अमुक व्यक्ति चला गया तो इस बात का शोक क्यों नहीं करते हो कि मुझे भी एक दिन जाना है और जब जाना ही है तो इस बात को क्यों नहीं सोचते कि जाने से पहले कुछ अच्छा काम करके जाएँ।

मृत्यु के पहले अवश्य ही सावधान होना चाहिए तथा उस शोक को छोड़कर ऐसा कुछ प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि शाश्वतिक उत्तम सुख के स्थानभूत मोक्ष को प्राप्त हो सको।

भव्य बन्धुओ! आचार्य पद्मनंदि महाराज शोकाकुलित व्यक्ति को समझाने के लिए 'पद्मनन्दि पञ्चविशंतिः' ग्रंथ में कहते हैं कि–

किं जानासि न किं शृणोषि न न किं प्रत्यक्षमेवेक्षसे,
निःशेषं जगदिन्द्रजालसदृशं रम्भेव सारोज्झितम्।
किं शोकं कुरुषेऽत्र मानुषपशो लोकान्तरस्थे निजे,
तत्किंचित्कुरु येन नित्यपरमानन्दास्पदं गच्छसि॥12॥

अर्थ–हे अज्ञानी मनुष्य! यह समस्त जगत् इन्द्रजाल के सदृश विनश्वर और केले के स्तम्भ के समान निस्सार है; इस बात को तुम क्या नहीं जानते हो, क्या आगम में नहीं सुनते हो, और क्या प्रत्यक्ष में ही नहीं देखते हो? अर्थात् अवश्य ही तुम इसे जानते हो, सुनते हो और प्रत्यक्ष में भी देखते हो। फिर भला यहाँ अपने किसी सम्बन्धी जन के मरण को प्राप्त होने पर क्यों शोक करते हो? अर्थात् शोक को छोड़कर ऐसा कुछ प्रयत्न करो जिससे कि शाश्वतिक उत्तम सुख के स्थानभूत मोक्ष को प्राप्त हो सको।

हे अज्ञानी पुरुष! यह सारा (सम्पूर्ण) जगत् इन्द्रजाल के सदृश विनश्वर और केले के स्तम्भ के समान निस्सार है और इन्द्रजाल का अर्थ होता है जादू। जो जादूगर होते हैं उनके पास हाथ की सफाई रहती है अथवा वे दूसरों की दृष्टि को बाँध देते हैं फिर वो जो दिखाते हैं दिखता रहता है। एक बार मैंने एक जादूगर से कहा–कि आपकी तो बिदाई हो गई। तो वह हँसने लगा। मैंने कहा–क्या हुआ? आप तो अपने जादू से इतने नोट बना लेते हो तो जितना भी आपको दिया जाए वह कम रहेगा। आप तो जादू से इससे भी कई गुना बना सकते हैं। उसने कहा–यह जादू

है हाथ की सफाई है। यह जो भी होता है वह वास्तव में नहीं होता और जो दिखाया जाता है बाद में वह उपयोगी नहीं रहता बल्कि जो रखे रहते हैं वह दिखा देते हैं नया कुछ नहीं दिखाते हैं। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं बाह्य संसार भी इन्द्रजाल की तरह ऐसा ही विनश्वर है और केले के स्तम्भ के समान निस्सार है। जैसे केले के वृक्ष की छाल निकालते जाओगे तो वह निकलती जाएगी और अंत में कुछ भी नहीं मिलेगा। इसी प्रकार संसार में कोई सुख नहीं मिलता है शान्ति नहीं मिलती है। तो आचार्य महाराज कहते हैं इस बात को तुम क्या नहीं जानते हो, क्या तुमने इन सारी बातों को शास्त्रों से, गुरुओं के मुख से नहीं सुना है और क्या तुमने प्रत्यक्ष में भी कभी नहीं देखा है? ऐसा तो नहीं है आप सब कुछ जानते हो, सुनते हो और प्रत्यक्ष में भी देखते हो।

बन्धुओ! आज संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ कोई खत्म नहीं हुआ हो, हम रोज अखबार में पढ़ते हैं T.V. में देखते हैं कि यहाँ बाढ़ आ गई इतने लोग खत्म हो गए, एक्सीडेंट हो गया इतने लोग खत्म हो गए तथा कभी-कभी अपनी आँखों से देखते हैं कि ऐसा संसार है जहाँ किसी न किसी कारण से व्यक्ति की मृत्यु होती रहती है ऐसा क्या तुम नहीं जानते हो, नहीं देखते हो, नहीं समझते हो अर्थात् सभी देखते हो, जानते हो, सुनते हो, समझते हो। फिर भला यहाँ अपने किसी सम्बन्धीजन के मरण को प्राप्त होने पर क्या शोक करते हो? और **यदि तुम्हें शोक करना ही है या इस बात की वेदना हो रही है कि अमुक व्यक्ति चला गया तो इस बात का दुख क्यों नहीं करते हो कि मुझे भी एक दिन जाना है और जब जाना ही है तो इस बात को क्यों नहीं सोचते कि जाने से पहले कुछ अच्छा काम करके जाएँ।** किसी ने कहा भी है–

मरना अवश्य होगा करना जो चाहो कर लो।
फल उसका पाना होगा करना जो चाहो कर लो॥

इसलिए **मृत्यु के पहले अवश्य ही सावधान होना चाहिए तथा उस शोक को छोड़कर ऐसा कुछ प्रयत्न करना चाहिए जिससे कि शाश्वतिक उत्तम सुख के स्थानभूत मोक्ष को प्राप्त हो सको।**

इसी बात को आचार्य महाराज आगे कहते है।–

जातो जनो म्रियत एव दिने च मृत्योः प्राप्ते पुनस्त्रिभुवनेऽपि न रक्षकोऽस्ति।
तद्यो मृते सति निजेऽपि शुचं करोति पूत्कृत्य रोदिति वने विजने स मूढः॥13॥

अर्थ–जो जन उत्पन्न हुआ है वह मृत्यु के दिन के प्राप्त होने पर मरता ही है, उस समय उसकी रक्षा करने वाला तीनों लोकों में कोई भी नहीं है। इस कारण जो अपने किसी इष्ट जन के मरण को प्राप्त होने पर शोक करता है वह मूर्ख निर्जन वन में चिल्ला करके रोता है। अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार जनशून्य वन में रुदन करने वाले के रोने से कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है उसी प्रकार किसी इष्टजन के मरण को प्राप्त होने पर उसके लिए शोक करने वाले के भी कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता, बल्कि उससे दुखदायक नवीन कर्मों का ही बन्ध होता है।

बन्धुओ! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि जो व्यक्ति उत्पन्न हुआ है वह मृत्यु के दिन के प्राप्त होने पर मरता ही है उस समय उसकी रक्षा करने वाला तीनों लोकों में कोई भी नहीं है अर्थात् कोई भी रक्षा नहीं करता है। इस कारण जो अपने किसी इष्ट जन के मरण को प्राप्त होने पर शोक करता है वह उसी प्रकार से है जैसे मूर्ख पुरुष निर्जन वन में चिल्ला करके रोता है बिलखता है लेकिन उसके बिलखने से कोई प्रयोजन नहीं क्योंकि उसके रोने की आवाज को कोई सुन नहीं पाता है।

बन्धुओ! संसार में अधिकतर व्यक्ति रोते हैं और इसलिए कि हमारी कोई सुने, कोई हमारी तरफ देखे, हमारी सहायता करे, सहयोग करे। आचार्य महाराज कहते हैं कि यदि समूह में कोई रुदन करे तो उसका रुदन करना सार्थक हो सकता है लेकिन जंगलों में रुदन करने से क्या फायदा? जिस समय नारायण श्री कृष्ण की मृत्यु का समय आया तो भगवान नेमीनाथ जी की देशना खिरी कि द्वीपायन मुनिराज के क्रोध से द्वारिका जलेगी और जरत कुमार के बाण से नारायण श्रीकृष्ण की मृत्यु होगी। इस समाचार को सुनकर जरत कुमार तथा द्वीपायन मुनि द्वारिका छोड़ कर दूसरे देश चले गए। लेकिन होनहार जिसकी जैसी होती है वैसा ही होकर के रहता है और ऐसा ही हुआ कि श्रीकृष्ण और बलराम वन विहार करते हुए एक ऐसे जंगल में भटक गए कि रास्ता नहीं मिल रहा था उस समय श्री कृष्ण को बहुत प्यास लगी कि उन्हें एक-एक कदम रखना कठिन हो गया और वे एक वृक्ष के नीचे लेट गए और बलराम पानी लेने के लिए निकल गए। तभी जरत कुमार भी घूमते हुए शिकार के लिए वहाँ से निकल पड़े, तभी उन्हें दूर से श्रीकृष्ण के पैर में चमकता हुआ पद्म दिखा। तब जरत कुमार ने समझा यह कोई हिरण की आँख है और हिरण सोचकर उसने बाण चला दिया। बाण के लगते ही श्री कृष्ण के मुख से आवाज निकली। तभी जरत कुमार दौड़कर उनके पास पहुँचे कि यह तो कोई मनुष्य की आवाज है और देखा कि श्री कृष्ण हैं जिसे देख वे दुखी हो गये। तब श्री कृष्ण कहते हैं कि आप घबराओ नहीं, भगवान की वाणी कभी गलत नहीं होती जो नियोग है वह होकर ही रहता है। अब अच्छा है तुम बलराम से न मिलो क्योंकि बलराम ने यदि देख लिया तो वह तुमको नहीं छोड़ेगा, इसलिए तुम शीघ्र ही यहाँ से प्रस्थान करो।

कहने का तात्पर्य यह है कि जब मृत्यु की बेला आती है तो वह कहीं भी आ सकती है किसी भी समय तथा स्थान पर आ सकती है। अतः हम सभी को ऐसे मौके पर यही विचार करना चाहिए कि आयु के निषेक इतने ही थे और जिसका जितना आयु कर्म था वह उतना ही रहेगा तो फिर विलाप करने से, रोने से कोई फायदा नहीं। इस प्रकार से आत्म चिन्तन करते हुए अपनी आत्म का कल्याण करना चाहिए। **इसी भावना के साथ—**

महावीर भगवान की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—8.12.09
वार—मंगलवार

सद्गुरु, दीपक का दिव्य प्रकाश

जिसके जीवन में सत् गुरु का उपदेश प्राप्त हो जाता है वे व्यक्ति सच्चे रास्ते पर आ जाते हैं फिर वे संसार में भटकते नहीं हैं और एक दिन अपनी मंजिल को प्राप्त कर लेते हैं।

बन्धुओ! परमोपकारी आचार्य भगवन् बतला रहे हैं कि इष्ट के वियोग से जो शोक होता है उससे कुछ भी लाभ नहीं है बल्कि निरन्तर हानि ही हानि है। एक तो शोक करने वाले व्यक्ति का वर्तमान समय आर्त्त ध्यान के साथ व्यतीत होता है, भोजन नहीं रुचता, नींद नहीं आती, चिन्ताएँ व्याकुलित करती है, शरीर सूख जाता है, व्यापार में मन नहीं लगता जिससे उसे हानि होती है। साथ ही असातावेदनीय कर्म का आस्रव होता है जिससे परलोक बिगड़ता है। इसलिए किसी को कभी भी शोक नहीं करना चाहिए। यह बात पूर्व गाथा में आचार्य महाराज ने समझाई थी आज पुनः इसी बात को आचार्य महाराज समझा रहे हैं।

इष्टक्षयो यदिह ते यदनिष्टयोगः पापेन तद्भवति जीव पुराकृतेन।
शोकं करोषि किमु तस्य कुरु प्रणाशं पापस्य तौ न भवतः पुरतोऽपि येन॥14॥

अर्थ—हे जीव! यहाँ जो तेरे लिए इष्ट का वियोग और अनिष्ट का संयोग होता है वह तेरे पूर्वकृत पाप के उदय से होता है। इसलिए तू शोक क्यों करता है? उस पाप के नाश करने का प्रयत्न कर जिससे कि आगे भी वे दोनों (इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग) न हो सकें।

हे परम मोक्षेच्छुक! संसार में पाप कर्म के उदय से व्यक्ति के जीवन में दो प्रकार की स्थिति होती है एक इष्ट का वियोग और दूसरा अनिष्ट का संयोग। लेकिन जब सामान्य तौर पर देखते हैं तो इष्ट का वियोग ही अनिष्ट का संयोग है। जैसे किसी व्यक्ति का कोई खास व्यक्ति खत्म हो गया तो इष्ट का वियोग हुआ है चूँकि वह इष्ट का वियोग नहीं चाहता था इसलिए वियोग उसके लिए अनिष्ट का संयोग है इस प्रकार दोनों बातें एक साथ होती है कि जहाँ इष्ट का वियोग होता है वहाँ अनिष्ट का संयोग हो जाता है और जहाँ अनिष्ट का संयोग होता है वहाँ इष्ट का वियोग हो जाता है और यदि कोई व्यक्ति इसी सिद्धान्त को लेकर बैठ जाए कि क्या इष्ट के वियोग हुए बिना अनिष्ट का संयोग हो सकता है और अनिष्ट का संयोग हुए बिना इष्ट का वियोग हो सकता है? जैसे किसी खाली गिलास में पानी भर रहा है इसका मतलब है खालीपन कम हो

रहा है और खालीपन कम हो रहा है इसका तात्पर्य है कि उसमें पानी भरा जा रहा है। इस प्रकार देखने के दो दृष्टिकोण हैं जब हम इन दोनों दृष्टिकोण से देखते हैं तो ऐसा लगता है दोनों बातें एक हैं अलग-अलग नहीं। लेकिन वास्तविकता में ऐसा नहीं है यदि हम इतना ही मान ले तो आर्त्त ध्यान के 4 भेद-इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीड़ा चिन्तन और निदान बंध कहे है उनमें से यदि इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग को एक मान लिया जाए तो आर्त्त ध्यान के मात्र 3 भेद रह जाएँगे। इसलिए आचार्य महाराज कह रहे हैं ऐसा नहीं है क्योंकि यह सूत्र गलत नहीं है तथा हमारे आचार्यो के वचन गलत नहीं होते और न वे कोई बात अन्यथा लिखते हैं, न कहते हैं।

बन्धुओ! आवश्यक नहीं हैं कि इष्ट के वियोग में अनिष्ट का संयोग होगा ही और अनिष्ट के संयोग में इष्ट का वियोग होगा ही जैसे जंगल में किसी के पास नाग आ गया और फन फैला लिया यहाँ अनिष्ट का संयोग तो है किन्तु इष्ट का वियोग नहीं है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति का धन चला गया तो इष्ट का वियोग तो हुआ लेकिन अनिष्ट का संयोग नहीं हुआ। इसलिए आचार्य महाराज ने कहा अनिष्ट संयोगज तथा इष्ट वियोगज आर्त्त ध्यान स्वतन्त्र-2 है। तथा अनिष्ट का अर्थ है जो व्यक्ति के लिए खतरनाक हो, ऐसी वस्तु का संयोग जिसका कोई सहयोग नहीं होता। इसलिए आचार्य महाराज कह रहे हैं कि हे जीव! यहाँ जो तेरे लिए इष्ट का वियोग और अनिष्ट का संयोग हो रहा है वह तेरे पूर्वकृत पापकर्म के उदय से हो रहा है। इसलिए हम पापकर्म के दो विभाग बनाते हैं एक वह पापकर्म जो व्यक्ति के लिए इष्ट वियोग कराता है तथा दूसरा वह पापकर्म जो व्यक्ति के लिए अनिष्ट संयोग कराता है।

बन्धुओ! राजा श्रेणिक जो राजगृही के महाराजा एवं भगवान महावीर स्वामी के प्रमुख श्रोता थे उन्होंने नंदीग्रामवासियों के पास एक बकरा भेजा। चूँकि राजा श्रेणिक नंदीग्रामवासियों पर कुपित थे और वे इंतजारी में थे कि जैसे ही नंदीग्रामवासी प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थता प्रकट करेंगे उनके लिए दण्डित किया जाएगा। बकरे को भेजने के बाद कहा कि यह बकरा आपको 6 दिन तक अपने पास रखना पश्चात् वापिस करना है। लेकिन शर्त यह है कि बकरा न तो मोटा होना चाहिए और न पतला। ग्रामवासी शर्त को सुनकर चिन्ता में पड़ गए कि ऐसा कैसे हो सकता है और यदि आज्ञा का पालन नहीं किया तो देश निकाला दिया जाएगा क्योंकि ग्रामवासी की बुद्धि कम थी। एक दिन अभय कुमार ने सबसे पूछा कि आप सब इतने उदास क्यों दिख रहे हैं? उन्होंने सारी बात अभय कुमार से कही। अभय कुमार कुशाग्र बुद्धि थे उन्होंने उसे समाधान बता दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि जब व्यक्ति शोक करता है उसकी बुद्धि काम नहीं करती। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं पूर्व पापकर्म के उदय का वर्तमान में यह फल है तो फिर वर्तमान में तुम शोक करोंगे उससे क्या पापकर्म का नाश होगा? नहीं होगा। इसलिए तू शोक क्यों करता है? बल्कि उस पाप के ही नाश करने का प्रयत्न कर जिससे कि आगे वे दोनों (इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग) न हो सके क्योंकि शोक से पापकर्म का क्षय नहीं धर्म से पापकर्म का क्षय होता है। इसलिए तुझे शोक को छोड़कर पवित्र मन से धर्म ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार आचार्य महाराज ने कहा। इसी बात को आगे कहते हैं–

नष्टे वस्तुनि शोभनेऽपि हि तदा शोकः समारभ्यते,
तल्लाभोऽथ यशोऽथ सौख्यमथ वा धर्मोऽथ वा स्याद्यदि।
यद्येकोऽपि न जायते कथमपि स्फारैः प्रयत्नैरपि,
प्रायस्तत्र सुधीर्मुधा भवति कः शोकोग्ररक्षोवशः॥15॥

अर्थ—मनोहर वस्तु के नष्ट हो जाने पर यदि शोक करने से उसका लाभ होता हो, कीर्ति होती हो, सुख होता हो अथवा धर्म होता हो तब तो शोक का प्रारम्भ करना ठीक है। परन्तु जब अनेक प्रयत्नों के द्वारा भी उन चारों में से प्रायः कोई एक भी नहीं उत्पन्न होता है तब भला कौन-सा बुद्धिमान मनुष्य व्यर्थ में उस शोक रूपी महाराक्षस के अधीन होगा? अर्थात् कोई नहीं।

हे आत्म पिपासु! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि मनोहर वस्तु के नष्ट हो जाने पर या वियोग हो जाने पर यदि कुछ लाभ होता है तो शोक अवश्य करना चाहिए, यदि कुछ यश या कीर्ति फैलती है तो शोक करना चाहिए, यदि सुख होता है तो फिर शोक करना उचित है और यदि शोक करने से धर्म प्राप्त होता है तो शोक करना उचित है। लेकिन शोक करने से धर्म नहीं होता क्योंकि प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जो शोकाकुलित होता है उसका मन धर्म में नहीं लगता है धर्म की बातें रुचिकर नहीं होती है, धर्म के चार अक्षर पढ़ने के लिए तैयार नहीं होता। लेकिन गुजरात में एक अच्छी परम्परा है कि किसी की मृत्यु के पश्चात् स्वाध्याय की परम्परा रखी जाती है और उस शोकाकुलित परिवार के लोगों को शास्त्र सुनाया जाता है और उसमें भी ऐसी बातें सुनाई जाती हैं कि उसके विचारों में अन्तर आता है और वह आर्त्त ध्यान छोड़ देता है। म.प्र. में भी परम्परा है कि 3 दिन के उपरान्त सारी समाज उसे मन्दिर ले जाती और दर्शन के पश्चात् घर ले जाती है तथा कहीं मन्दिर में ले जाने के पश्चात् मन्दिर में बैठकर सामूहिक स्तुति पाठ, वैराग्य भावना, बारह भावना आदि पढ़ते हैं और फिर एक दूसरे के प्रति यथा संभव आदर-सम्मान करके उनके लिए घर पहुँचा देते हैं। इसका कारण है उनके शोक को कम करना, शोक को भुला देना क्योंकि शोक का परिणाम कभी अच्छा नहीं हुआ करता है। शोक करने से कभी लाभ नहीं होता, यश नहीं होता, सुख नहीं होता और धर्म भी नहीं होता बल्कि विनाश ही होता है, धर्म ध्यान नष्ट होता है, सुख-शान्ति नष्ट होती है, लाभ नहीं होता है, यश की स्थिति नष्ट होती है। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि जब अनेक प्रयत्नों के द्वारा भी उन चारों में से प्रायः कोई एक भी नहीं उत्पन्न होता है तब भला कौन-सा बुद्धिमान मनुष्य व्यर्थ में उस शोक रूपी महाराक्षस के अधीन होगा? अर्थात् कोई नहीं क्योंकि बुद्धिमान ज्यादा समय तक शोक नहीं करते। ऐसा यहाँ कहा है। आगे आचार्य महाराज लिखते हैं—

एक द्रुमे निशि वसन्ति यथा शकुन्ताः प्रातः प्रयान्ति सहसा सकलासु दिक्षु।
स्थित्वा कुले बत तथान्यकुलानि मृत्वा लोकाः श्रयन्ति विदुषा खलु शोच्यते कः॥16॥

अर्थ—जिस प्रकार पक्षी रात्रि में किसी एक वृक्ष के ऊपर निवास करते हैं और फिर सबेरा हो जाने पर वह सहसा सब दिशाओं में चले जाते हैं खेद है कि उसी प्रकार मनुष्य भी किसी एक कुल में स्थित रहकर पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होते हुए अन्य कुलों का आश्रय करते हैं। इसीलिए विद्वान मनुष्य इसके लिए कुछ भी शोक नहीं करते।

हे मनीषियो! यहाँ आचार्य महाराज बतला रहे हैं कि जिस प्रकार पक्षी गण भिन्न-भिन्न दिशाओं से उड़कर रात्रि में किसी एक वृक्ष के ऊपर निवास करते हैं और प्रातः होते ही वे सभी भिन्न-भिन्न दिशाओं में सहसा उड़ जाते हैं। ठीक उसी प्रकार से मनुष्य भी किसी कुल में स्थित रहकर पश्चात् मृत्यु को प्राप्त होते हुए अन्य कुलों का आश्रय करते हैं। अर्थात् मनुष्य अपनी आयु को लेकर जन्म लेता है और आयु पर्यन्त रह कर आगे बाँधी हुई पर्याय की प्राप्ति के लिए गमन करता है और नवीन पर्याय को प्राप्त करता है इस सत्य को समझ कर विद्वान मनुष्य इसके लिए क्या शोक करते हैं ? अर्थात् कुछ भी शोक नहीं करते है। इष्टोपदेश में भी आचार्य पूज्यपाद महाराज लिखते हैं—

दिग्देशेभ्याः खगा एत्य, संवसन्ति नगे नगे।
स्व स्व कार्य वशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे प्रगे॥9॥

अर्थात् भिन्न-भिन्न दिशाओं और भिन्न-भिन्न देशों से पक्षीगण आकर के वृक्ष की डाल-डाल पर बैठ जाते हैं और रात भर विश्रान्ति करते हैं और प्रातः काल होते ही वे सभी अपने-अपने कार्यवश अपनी-अपनी दिशा और देशों की ओर उड़ जाते हैं। ठीक इसी प्रकार एक तत्त्वज्ञानी संसार की वियोग जन अवस्थाओं में ऐसा ही चिन्तन करते हैं कि एक व्यक्ति मेहमान की तरह यात्री की तरह आया था और अपनी समय सीमा तक रहा पश्चात् अपने देश को निकल गया, ऐसा संसार है। लेकिन हर व्यक्ति इस रहस्य को नहीं समझ पाता और उसमें मोह उत्पन्न कर लेता है जिससे वियोग की पीड़ा असहनीय हो जाती है फिर ऐसी हालत में व्यक्ति किसी का वियोग देखना नहीं चाहता है। लेकिन आचार्य महाराज कहते हैं कि हे भव्य! संसार का यह एक अकाट्य सिद्धान्त है कि जिसकी जितनी आयु है उसे उतनी आयु प्रमाण रहकर इस संसार से विदा लेना पड़ती है ऐसा विचार करके कभी भी किसी के वियोग होने पर शोक नहीं करना चाहिए तथा इतना गहरा शोक नहीं करना चाहिए जो तुम्हारे धर्म ध्यान को नष्ट कर दे, सम्यक् विचारों/परिणामों को नष्ट कर दे। अतः किसी का वियोग होने पर कभी भी शोक मत कीजिये। आगे इसी बात को पुनः आचार्य महाराज लिखते हैं।

दुःख व्यालसमाकुलं भववनं जाड्यान्धकाराश्रितं,
तस्मिन् दुर्गतिपल्लिपातिकुपथैर्भ्राम्यन्ति सर्वेऽङ्गिनः।
तन्मध्ये गुरुवाक्प्रदीपममलं ज्ञानप्रभा भासुरं,
प्राप्यालोक्य च सत्पथं सुखपदं याति प्रबुद्धो ध्रुवम्॥17॥

अर्थ—जो संसार रूपी वन दुखों रूप सर्पों से व्याप्त एवं अज्ञानरूपी अंधकार से परिपूर्ण हैं उसमें सब प्राणी दुर्गति रूप भीलों की बस्ती की ओर जाने वाले खोटे मार्गों से परिभ्रमण करते हैं। उस (संसार वन) के बीच में विवेकी पुरुष ज्ञानरूपी ज्योति से दैदीप्यमान निर्मल गुरु के वचन (उपदेश) रूप दीपक को पाकर और उससे समीचीन मार्ग को देखकर निश्चय से सुख के स्थानभूत मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

हे परमहंस आत्मन्! यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं कि जो संसार रूपी वन, दुखों रूप सर्पों से व्याप्त एवं अज्ञान रूपी अंधकार से परिपूर्ण है ऐसे जंगल में भटके हुए प्राणी दुर्गति रूप भीलों की बस्ती की ओर जाने वाले खोटे मार्गों से परिभ्रमण करते हैं। जैसे भील प्राणी क्रूर परिणामी व क्रूर आचरण वाले होते हैं, दूसरों को सताने वाले होते हैं वे आगे बढ़ते हुए प्राणियों को पकड़कर तकलीफ पहुँचाते हैं ऐसे भीलों की बस्ती में यदि कोई पहुँच जाए और सौभाग्य से उस मौके पर कोई पुण्यात्मा व्यक्ति उनको रास्ता दिखाने के लिए नजर आ जाए कि तुम जिस रास्ते पर जा रहे हो उस रास्ते पर सर्प है वे तुम्हें डस लेंगे, या अंधकार के रास्ते पर जाओंगे तो गिर सकते हो इसलिए इस रास्ते पर जाइये तो आप शान्ति से निकल सकते हो और अपने रास्ते पर पहुँच सकते हो। ठीक उसी प्रकार संसार रूपी वन में बड़े-बड़े विकराल काले विशाल दुख रूपी भुजंग मुख फैलाये हुए यत्र-तत्र विचरण कर रहे हैं और जहाँ अज्ञान रूपी घनघोर अंधकार छाया हुआ है उसमें रहने वाले प्राणी के पास इतना विवेक नहीं है कि वह दुखों को समझ सके कि दुख किसे कहते हैं? सुखों का रास्ता कैसे प्राप्त करूँ? उस संसार वन के बीच में विवेकी पुरुष ज्ञान रूपी ज्योति से देदीप्यमान निर्मल गुरु के वचन रूप दीपक को पाकर और उससे समीचीन मार्ग को देखकर निश्चय से सुख के स्थानभूत मोक्ष को प्राप्त कर लेते है। अर्थात् ऐसे घनघोर अंधकार में संत ज्ञान रूपी दीपक लेकर आपको दिखाते हैं कि हे भव्य! इस रास्ते पर चलो तो तुम कभी भी दुख को प्राप्त नहीं कर सकोगे, तुम्हारे जीवन में कभी दुख नहीं होगा, इसलिए शोक को नहीं करना चाहिए। और **जिसके जीवन में सत् गुरु का उपदेश प्राप्त हो जाता है वे व्यक्ति सच्चे रास्ते पर आ जाते हैं फिर वे संसार में भटकते नहीं हैं और एक दिन अपनी मंजिल को प्राप्त कर लेते हैं। इसी भावना के साथ**

भगवान महावीर स्वामी की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—9.12.09
वार—बुधवार

संयोग-वियोग कर्मानुसार

एक ज्ञानी होता है जिसे संयोग होने पर हर्ष भी इतना अधिक नहीं होता है कि सब कुछ भूल जाएँ और किसी का वियोग होने पर विषाद भी इतना नहीं होता है कि परिणाम संक्लेशित हो जाए, वे अपने परिणामों को इतना व्यवस्थित करके रखते हैं कि न हर्ष न विषाद।

अन्य के जन्म और मृत्यु में जो हर्ष-विषाद होता है वह मोक्षमार्ग को प्रशस्त नहीं करता बल्कि बाधक होता है।

बन्धुओ! यहाँ पर पूज्य आचार्य महाराज बता रहे हैं कि पदार्थों के और व्यक्तियों के वियोग को जानते हुए भी हमें शोक नहीं करना चाहिए। अपितु आत्म साधना के/मोक्ष मार्ग के पथ को प्रशस्त करना चाहिए। इसी बात को आचार्य महाराज पुनः कह रहे हैं–

यैव स्वकर्मकृतकालकलात्र जन्तुस्तत्रैव याति मरणं न पुरो न पश्चात्।
मूढास्तथापि हि मृते स्वजने विधाय शोकं परं प्रचुर दुःख भुजो भवन्ति॥18॥

अर्थ–इस संसार में अपने कर्म के द्वारा जो मरण का समय नियमित किया गया है, उसी समय ही प्राणी मरण को प्राप्त होता है वह उससे न तो पहले मरता है और न पीछे भी। फिर भी मूर्खजन अपने किसी संबंधी के मरण को प्राप्त होने पर अतिशय शोक करके बहुत दुख के भोगने वाले होते हैं।

हे आत्मेच्छु! इस संसार में अपने कर्म के द्वारा जो मरण का समय निर्धारित किया गया है अर्थात् अपने द्वारा पूर्व में जो किये गये कर्म हैं उन कर्म के द्वारा काल का जो विधान निर्धारित किया गया हैं कर्मों में भी विशेषकर आयु कर्म के बंध को। आयु भी भुज्यमान और बध्यमान के भेद से दो प्रकार की होती है भुज्यमान आयु जिसे वर्तमान में भोगा जा रहा है और बध्यमान आयु जिसे आगामी काल के लिये जीव ने बाँधा है। बध्यमान आयु में उत्कर्षण-अपकर्षण हो सकता है लेकिन भुज्यमान आयु में किसी प्रकार का उत्कर्षण और अपकर्षण नहीं हो सकता है यह अकाट्य सिद्धान्त है क्योंकि जो आयु बँध चुकी है और उस आयु का प्रारम्भ हो चुका है तो फिर उस आयु को न कोई कम कर सकता न बढ़ा सकता अर्थात् काल का या आयु अवसान का नियम जो नियमित किया गया है उसी समय में ही प्राणी मरण को प्राप्त होता है वह उससे न तो पहले

मरता है और न पीछे भी। फिर भी आश्चर्य है कि मूर्खजन अपने किसी सम्बन्धी के मरण के प्राप्त होने पर अतिशय शोक करके बहुत दुःख के भोगने वाले होते हैं। आचार्य महाराज कहते हैं कि क्या आपके शोक करने से किसी की आयु बढ़ जाएगी? नहीं बढ़ेगी। ज्ञानी इस तत्त्व को समझते हैं और ऐसी निर्धारणा पर पहुँचते हैं कि जिसकी जितनी आयु है उतनी आयु प्रमाण ही व्यक्ति रह सकता है और यदि किसी की आयु पूरी हो भी गई तो हमारे शोक करने से कोई लाभ होने वाला नहीं। ऐसा विचार करके वह अपने परिणामों में समता लाते हैं। लेकिन जिन्हें तत्त्व ज्ञान नहीं होता है वे विभिन्न प्रकार के संकल्प-विकल्पों में डूबे रहते हैं और परिणामों को खराब करके नये-नये कर्मों को बाँध लेते हैं। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि कभी शोक नहीं करना चाहिए। इसी बात को पुनः आचार्य महाराज कह रहे हैं–

वृक्षाद्वृक्षमिवाण्डजा मधुलिहः पुष्पाच्च पुष्पं यथा,
जीवा यान्ति भवाद्भवान्तरमिहाश्रान्तं तथा संसृतौ।
तज्जातेऽथ मृतेऽथ वा न हि मुदं शोकं न कस्मिन्नपि,
प्रायः प्रारभतेऽधिगम्य मतिमानस्थैर्यमित्यङ्गिनाम॥19॥

अर्थ–जिस प्रकार पक्षी एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष के ऊपर तथा भ्रमर एक पुष्प से दूसरे पुष्प के ऊपर जाते हैं उसी प्रकार से यहाँ संसार में जीव निरन्तर एक पर्याय से दूसरी पर्याय में जाते हैं। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य उपर्युक्त प्रकार से प्राणियों की अस्थिरता को जानकर प्रायः करके किसी इष्ट सम्बन्धी के जन्म लेने पर हर्ष को प्राप्त नहीं होता तथा उसके मरने पर शोक को भी नहीं प्राप्त होता है।

हे मोक्षेच्छुक! पूज्य आचार्य महाराज यहाँ बतला रहे हैं कि जिस प्रकार अण्डज यानि अण्डे से जन्म लेने वाले पक्षी गण एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष के ऊपर बैठते हैं, बसेरा करते हैं (पक्षी तो अण्डज होते ही हैं अन्य जैसे मछलियाँ भी अण्डज होती है) वे भी एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान को ग्रहण करती है। तथा भौंरा (भ्रमर) एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर जाते हैं अर्थात् वह निरन्तर स्थान को बदलता रहता है। ठीक उसी प्रकार से इस संसार में भ्रमण करते हुए जीव निरन्तर एक पर्याय (भव) से दूसरी पर्याय (भव) को प्राप्त होते हैं पर्यायें निरन्तर बदलती रहती हैं। इसलिए बुद्धिमान मनुष्य उपर्युक्त प्रकार से प्राणियों की अस्थिरता को जानकर किसी इष्ट के जन्म लेने पर हर्ष तथा मरने पर शोक को प्राप्त नहीं होते हैं।

बन्धुओ! चक्रवर्ती जिसकी 96वें हजार रानियाँ थीं तो उसका कुटुम्ब-परिवार कितना बड़ा होगा और फिर उसके यहाँ तो रोज जन्म-मरण होता होगा। अब वह रोज-रोज हर्ष और विषाद करे? नहीं, वह वैरागी होता है इसलिए हर्ष और विषाद नहीं करता। ठीक इसी प्रकार **एक ज्ञानी होता है जिसे संयोग होने पर हर्ष भी इतना अधिक नहीं होता है कि सब कुछ भूल जाएँ और किसी का वियोग होने पर विषाद भी इतना नहीं होता है कि परिणाम संक्लेशित हो जाए, वे अपने परिणामों को इतना व्यवस्थित करके रखते हैं कि न हर्ष न विषाद।**

आज भी ऐसे वैरागी देखने को मिलते हैं। एक बार पं. गणेशप्रसाद जी वर्णी की माँ चिरोंजा बाई शिखर जी की यात्रा के लिए गई हुई थी उसी बीच उनके घर में चोरी हो गई। लोगों ने किसी प्रकार से उनके पास तार द्वारा समाचार दिया कि आपके घर में चोरी हो गई और चोर सब कुछ चुरा ले गए। चिरोंजा बाई के साथ वालों ने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने कहा—चिरोंजा बाई अब घर चलो। चिरोंजा बाई बोली—चोरी तो हो ही गई और चोर सब कुछ ले ही गए हैं अब भगवान के दर्शन तथा तीर्थ यात्रा क्यों छोड़े? अब पूरी यात्रा करके ही लौटेंगे, आराम से भगवान के दर्शन वन्दना करेंगे। भाग्य में जो था वो हो ही गया है अच्छा हुआ जो पुराना कर्म था वह उदय में आकर खिर चुका है अब मैं वर्तमान के पुण्य को नहीं छोड़ना चाहती हूँ और वह पूरी यात्रा करके ही लौटी। इस प्रकार संसार में ऐसे भी व्यक्ति हैं जो अपने परिणामों का इतना सुन्दर सन्तुलन बना लेते हैं। इसी प्रकार प्राणियों को संसार के विषय को जानकर कभी भी शोक नहीं करना चाहिए। बल्कि तत्त्व के द्वारा दिखाई देने वाला आत्मा का जो शाश्वत धर्म है वह ही हमारा है हम उसका आश्रय लें और उसके विषय में हर्ष-विषाद करें तो वह हर्ष-विषाद नहीं कहलाएगा। अर्थात् उसके नहीं पाने पर विषाद करे कि अहो! मेरा इतना समय व्यतीत हो गया और हम अपने निज स्वभाव को प्राप्त नहीं कर पाए तो यह विषाद हमारे आत्म कल्याण के रास्ते को प्रशस्त करने वाला होगा। लेकिन **अन्य के जन्म और मृत्यु में जो हर्ष-विषाद होता है वह मोक्षमार्ग को प्रशस्त नहीं करता बल्कि बाधक होता है।** अतः हमें इस बात को ध्यान में रखते हुए आत्मा को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। **इसी भावना के साथ**

शान्तिनाथ भगवान की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—10.12.09
वार—गुरुवार

उपकार को भूलने वाला पापी

अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्योपदेशकम्।
दातारं विस्मरन्पापी किं पुनधर्मदेशिनम्।। *सु.स.853।।*

अर्थ- जो एक ही अक्षर के उपदेशक अथवा एक ही पदार्थ के दाता को भूल जाता है वह पापी है फिर धार्मोपदेशक को भूलने वाले की क्या बात है।

मानव जीवन की दुर्लभता

ऐसे मनुष्य पर्याय की प्राप्ति से क्या फायदा कि जिसमें धर्म की प्राप्ति नहीं हो पायी ? फिर यदि आयुष्य की अधिकता में वह धर्म प्राप्त हो जाता है तो उसके विषय में उत्कृष्ट प्रयत्न करना चाहिए।

ज्ञानी जानता है शोक करने से दुःख होता है और धर्म करने से सुख होता है इसलिए वह शोक से विरक्त होता है, शोक को छोड़ता है और विनय से धर्म को करने के लिए तत्पर हो जाता है।

बन्धुओ! परम हितैषी, परमोपकारी पूज्य आचार्य भगवन् ने पहले कहा था कि जिस प्रकार पक्षीगण वृक्ष के ऊपर आकर रात्रि विश्राम करते हैं और प्रातःकाल होते ही अपनी-अपनी दिशाओं की ओर गमन कर जाते हैं। ठीक उसी प्रकार से संसार रूपी वृक्षों में विभिन्न-विभिन्न दिशा रूपी पर्यायों से पक्षी रूपी प्राणीगण आते हैं और अपनी-अपनी आयु प्रमाण बसेरा करके आयु के अवसान होते ही नवीन पर्याय की प्राप्ति के लिए प्रयाण कर जाते हैं। इस प्रकार संसार की स्थिति को देखकर कभी भी उसमें विस्मय नहीं करना चाहिए ऐसा पूज्य आचार्य महाराज ने संकेत दिया था। आगे इसी बात को पूज्य आचार्य महाराज कह रहे हैं।

भ्राम्यन् कालमनन्तमत्र जनने प्राप्नोति जीवो न वा,
मानुष्यं यदि दुष्कुले तदघतः प्राप्तं पुनर्नश्यति।
सज्जातावथ तत्र याति विलयं गर्भेऽपि जन्मन्यपि,
द्राग्बाल्येऽपि ततोऽपि नो वृष इति प्राप्ते प्रयत्नो वरः॥20॥

अर्थ—इस जन्म-मरण रूप संसार में अनंतकाल से परिभ्रमण करने वाला जीव मनुष्य पर्याय को प्राप्त करता है अथवा नहीं भी, अर्थात् उसे वह मनुष्य पर्याय बड़ी कठिनता से प्राप्त होती है। यदि कदाचित् वह मनुष्य भव को प्राप्त भी कर लेता है तो भी नीच कुल में उत्पन्न होने से उसका वह मनुष्य भव पापाचरण पूर्वक ही नष्ट हो जाता है। यदि किसी प्रकार से उत्तम कुल में भी उत्पन्न हुआ तो भी वहाँ वह या तो गर्भ में ही मर जाता है या जन्म लेते समय मर जाता है। इसलिए भी धर्म की प्राप्ति नहीं हो पाती। फिर यदि आयुष्क की अधिकता में वह धर्म प्राप्त हो जाता है तो उसके विषय में उत्कृष्ट प्रयत्न करना चाहिए।

हे आत्मकल्याणेच्छुक! पूज्य आचार्य महाराज लिखते हैं कि इस जन्म-मरण रूप संसार में अनंत काल से परिभ्रमण करने वाला जीव मनुष्य पर्याय को प्राप्त करता है अथवा नहीं भी। एक बार किसी व्यक्ति ने पूछा—इस संसार में जीव कब से हैं? मैंने कहा—यह उसी प्रकार से कथन हुआ कि जैसे कोई कहे यह आकाश कब से है? पृथ्वी कब से है? तो अनंतकाल से है। इसी प्रकार से यह जीव अनंत काल से है और इसका कभी अंत नहीं होगा। लेकिन विज्ञान की मान्यता है कि हजारों वर्ष पूर्व मनुष्य का विकास किसी जल-जन्तु से हुआ है और वह अनेक स्टेजों से गुजर कर यह मनुष्य बना। यह बात सिद्धान्त से घटित नहीं होती क्योंकि सभी जीवों के अपने-अपने गुण हैं, उनके शरीर के अवयव भिन्न-भिन्न है, शरीर की संरचनाएँ भिन्न-भिन्न हैं जिसे हमारे शास्त्रों ने नामकर्म कहा है और नामकर्म के अनुसार व्यक्ति के शरीर की रचनाएँ होती हैं। नामकर्म किसी के द्वारा बनाया नहीं जाता है। नामकर्म के विषय में पहले विभिन्न प्रकार की मान्यतायें थी लेकिन आचार्य महाराज कहते हैं कि शरीर की रचना कोई दूसरा व्यक्ति नहीं करता बल्कि शरीर की रचना अपने-अपने परिणामों के द्वारा उपार्जित किए गए नामकर्म के अनुसार होती है और यह शाश्वत परम्परा है कि जिस-जिस योनि में प्राणी जन्म लेते हैं उसके अनुसार उसकी रचना होती है। इस प्रकार अनंत काल से यह जीव अनंत पर्यायों में परिभ्रमण करता हुआ चला आ रहा है तब बड़ी दुर्लभता से इसने मनुष्य पर्याय को प्राप्त किया।

बंधुओ! आचार्य महाराज ने देव पर्याय को दुर्लभ नहीं मनुष्य पर्याय को दुर्लभ कहा है। इसका अर्थ है यदि कदाचित् वह मनुष्य भव को भी प्राप्त कर लेता है तो भी नीच कुल में उत्पन्न होने से उसका वह मनुष्य भव पापाचरण पूर्वक ही नष्ट हो जाता है क्योंकि नीचकुलों में धर्म के संस्कार नहीं होते हैं और उन्हें धर्म से कोई प्रयोजन भी नहीं होता है निरन्तर अन्याय और हिंसा में, व्यसनों में जिनका समय व्यतीत होता है ऐसे मनुष्य जन्म से भी क्या लाभ? एक पशु भी इस प्रकार से अपनी जिन्दगी व्यतीत कर लेता है जहाँ न खाने, न पीने, न बैठने, न सोने की पद्धति और न कोई शिष्टाचार-सदाचार मात्र निरन्तर पापास्रव चल रहा है और अंत में पाप करते-करते मृत्यु हो गई तो जीवन पाने से क्या फायदा? आगे आचार्य महाराज कह रहे हैं यदि किसी प्रकार से उत्तम कुल में भी उत्पन्न हुआ तो भी वहाँ वह या तो गर्भ में ही मर गया।

बन्धुओ! गर्भ में ही खत्म होना अथवा गर्भ में ही खत्म कर दिया गया ये दो प्रकार की स्थितियाँ होती हैं। जिसमें पहली स्थिति गर्भ में ही खत्म हो जाना तो उसका मनुष्य अवस्था को पाने से कोई फायदा नहीं। लेकिन आज अत्याचार अपनी सीमा को तोड़ चुका है कि इस समय महिलायें सोनोग्राफी के द्वारा पता लगा लेती थी कि गर्भ में लड़का है या लड़की और यदि लड़की है तो उसे मार देते हैं। इस कार्य में लोगों ने एक दूसरे का अनुसरण तो किया लेकिन अपने ज्ञान व विवेक से काम नहीं किया। तथा इस प्रकार जो गर्भ में ही जीव को खत्म करवा देते हैं वे आहार नहीं दे सकते। यहाँ पूज्य आचार्य महाराज कह रहे हैं कि जब एक व्यक्ति किसी को मार देता है तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। कलंकी/महापापी/अत्याचारी/अन्यायी माना जाता है ऐसे व्यक्ति पंचकल्याणों, बड़े-बड़े विधानों में भाग नहीं ले सकते हैं तो फिर जो गर्भस्थ शिशु

को मार रहा है वह भी पंचेन्द्रिय है और पंचेन्द्रिय के कारण उसे वैसा ही पाप लगता है हिंसा का फल बराबर मिलता है। आगे आचार्य महाराज कहते हैं कि फिर जो बालक जन्म लेने वाला है उसकी माँ ही ऐसा काम करें तो उससे बड़ा पाप क्या होगा? लोक व्यवहार में कुत्ती शब्द गाली के रूप में प्रचलित है और यदि कोई कुत्ती बोलें तो बुरा लगता है। क्या कारण है कि कुत्ती से बुरा लगता है? कारण यह है कि कुतिया बच्चों को जन्म देती है और कभी-कभी भूख लगने के कारण से अपने बच्चों को खा जाती है। इसी प्रकार नागिन और सूकरी भी होती हैं। सोचिए जो माँ अपने बच्चों की रक्षा नहीं कर सकी वह किसकी रक्षा कर सकेगी? वह कितनी क्रूर और कठोर हृदय वाली होगी। शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि जब कंस का जन्म हुआ तो जन्म के पूर्व के लक्षणों से पुरोहितों ने बता दिया था यह राज्य व राजा के प्रति अपशकुन के रूप में है, अर्थात् बालक का जन्म शुभ नहीं है लेकिन गर्भ में या जन्म होने के बाद उसके पिता ने उसे मारा नहीं बल्कि एक सन्दूक में रखकर पानी में बहा दिया। एक बार मान सकते हैं कि पशु के पास विवेक, बुद्धि, संस्कार नहीं लेकिन मनुष्य के पास तो सब कुछ है इसलिए कभी भी ऐसा काम नहीं करना चाहिए। अतः आचार्य महाराज यहाँ कह रहे हैं कि आप मनुष्य भी हुए और इस प्रकार गर्भ में ही मर गए या मारे गए अथवा जन्म लेते समय ही मृत्यु को प्राप्त हो गए अथवा बाल्यावस्था में किसी रोग आदि के कारण मृत्यु हो गई तो **ऐसे मनुष्य पर्याय की प्राप्ति से क्या फायदा कि जिसमें धर्म की प्राप्ति नहीं हो पायी। फिर यदि आयुष्य की अधिकता में वह धर्म प्राप्त हो जाता है तो उसके विषय में उत्कृष्ट प्रयत्न करना चाहिए।** और धर्म को धारण कर लेना चाहिए, अच्छे काम कर लेना चाहिए इसी में मनुष्य जीवन की सार्थकता है। इसीलिए मनुष्य जीवन को दुर्लभ माना गया है। आगे आचार्य महाराज कह रहे हैं–

स्थिरं सदपि सर्वदा भृशमुदेत्यवस्थान्तरैः, प्रतिक्षणमिदं जगज्जलदकूटवन्नश्यति।
तदत्र भवमाश्रिते मृतिमुपागते वा जने, प्रियेऽपि किमहो मुदा किमु शुचा प्रबुद्धात्मनः॥21॥

लङ्घ्यन्ते जलराशयः शिखरिणो देशास्तटिन्यो जनैः,
सा वेला तु मृतेर्नृपक्ष्मचलनस्तोकापि देवैरपि।
तत्कस्मिन्नपि संस्थिते सुखकरं श्रेयो विहाय ध्रुवं,
कः सर्वत्र दुरन्तदुःखजनकं शोकं विदध्यात् सुधीः॥22॥

अर्थ–यह जगत् द्रव्य की अपेक्षा स्थिर (ध्रुव) होकर भी पर्याय की अपेक्षा प्रत्येक क्षण में मेघपटल के समान अन्यान्य अवस्थाओं से उत्पन्न भी होता है और नष्ट भी अवश्य होता है। इस कारण यहाँ ज्ञानी जन को किसी प्रिय जन के उत्पन्न होने पर हर्ष और उसके मरण को प्राप्त होने पर शोक क्यों होना चाहिए? अर्थात् नहीं होना चाहिए।

अर्थ–मनुष्य समुद्रों, पर्वतों, देशों और नदियों को लांघ सकते हैं; किन्तु मृत्यु के निश्चित समय को देव भी निमेष (पलक की टिमकार) के बराबर थोड़ा-सा भी नहीं लांघ सकते। इस कारण किसी भी इष्ट जन के मरण को प्राप्त होने पर कौन-सा बुद्धिमान मनुष्य सुखदायक

कल्याण मार्ग को छोड़कर सर्वत्र अपार दुख को उत्पन्न करने वाले शोक को करता है? अर्थात् कोई भी बुद्धिमान शोक को नहीं करता।

बन्धुओ! आचार्य महाराज बता रहे हैं कि यह जगत् द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से ध्रुव (स्थिर) होकर भी पर्याय की अपेक्षा मेघपटल के समान अन्यान्य अवस्थाओं से उत्पन्न भी होता है और नष्ट भी अवश्य होता है। अर्थात् संसार में हर पदार्थ स्थिर है, शाश्वत है उसका का कभी नाश नहीं होता, अन्तर यदि आता है तो मात्र पर्याय में अन्तर आता है। जैसे एक वृक्ष की लकड़ी सूख जाती है उसे जलाने से वह राख बन जाती है राख वृक्ष की खाद बनकर पुनः वृक्ष का अंग बन जाती है इस प्रकार का रूपान्तर प्रायः सभी पदार्थों की पर्यायों में होता है लेकिन पदार्थ में अन्तर नहीं आता। ठीक इसी प्रकार जीव का कभी सर्वथा अभाव नहीं होता। उसमें उत्पाद-व्यय एक मात्र पर्यायों में होता है। बौद्ध मत के अनुसार प्रत्येक पदार्थ/द्रव्य क्षणिक है अर्थात् प्रत्येक क्षण में द्रव्य बदलता रहता है एक जैसा नहीं रहता है। जब उनसे इस विषय में प्रश्न किया जाता है कि यदि ऐसा है तो फिर जिस मकान को छोड़कर गए वह मकान नष्ट हो गया फिर काफी दिनों के बाद आप उस मकान में लौटकर कैसे आए तथा उसे अपना कैसे कहते हो? उन्होंने उत्तर दिया—संस्कार वशात् यानि अपने संस्कारों को वह छोड़कर जाता है।

बन्धुओ! एक बार की घटना है कि एक दुकानदार से एक सेठ जी सामान ले आए। दुकानदार ने सामान दे दिया और सेठ जी ने दुकानदार से कहा कि पैसे बाद में भेज देंगे। काफी दिन व्यतीत हो गए सेठ जी ने पैसे नहीं भेजे तो वह दुकानदार सेठ जी के घर पहुँच गया और सेठ जी से बोला—आप उस दिन दुकान से अमुक-अमुक सामान ले गए थे उसके पैसे दे दीजिए। सेठजी बौद्ध मताबलम्बी थे सेठ जी ने कहा—कौन से पैसे? दुकानदार—आपने जो सामान लिया था उसके। सेठ जी—मैंने कहाँ लिया था। दुकानदार ने जिन-जिन व्यक्तियों के सामने जो-जो सामान लिया था सब कुछ बता दिया। तब सेठ जी ने कहा—जिसने लिया था वो रहा नहीं, जिससे लिया था वो रहा नहीं, और जो सामान लिया वह सामान रहा नहीं, जिस समय लिया था वो समय नहीं रहा, और जिस स्थान से लिया था वह स्थान नहीं रहा, अब पैसे किसके ? दुकानदार सोच में पड़ गया कि यह सेठजी जो बोल रहा है मेरी समझ में नहीं आ रहा है। दुकानदार चतुर था उसने कहा—ठीक है अब ऐसा ही होगा। मैं उपाय निकाल लूँगा। सेठ जी भी प्रसन्न थे। दूसरे दिन दुकानदार सेठ जी के पास आया और बोला—सेठ जी मुझे दूसरे गाँव जाना है इसलिये आपकी साइकिल की आवश्यकता है। सेठ जी ने कहा—हाँ, आपकी ही है ले जाइए और दुकानदार ने साइकिल लाकर घर में रख दी। अब 1 घंटा हो गया, 1 दिन, 2 दिन, 3 दिन हो गए लेकिन उसने साइकिल वापिस नहीं की। सेठ जी विचारने लगे कि दुकानदार 1 घंटा का कहकर के गया था लेकिन आज तीन हो गए साइकिल वापिस नहीं लाया और सेठ जी उसकी दुकान पर पहुँच गए बोले—तुम साइकिल ले गए थे वापिस नहीं की। उसने कहा—सेठ जी जो ले गया था वह मैं नहीं कोई दूसरा था, जिससे ले गया था वह आप नहीं कोई दूसरे थे, तथा जो साइकिल थी वो नहीं रही फिर आप कैसे माँगते हैं? सेठ जी समझ गए। इस प्रकार द्रव्य क्षणिक नहीं पर्यायें क्षणिक हैं वे प्रतिक्षण उत्पन्न होती हैं और नष्ट हो जाती हैं। अर्थात् जिसका व्यय हुआ है उसका उत्पाद होगा और जिसका उत्पाद

हुआ है उसका व्यय होगा क्योंकि पर्यायें नियम से द्रव्य के साथ ही साथ रहती हैं। तत्वार्थ सूत्र में भी कहा है गुण और पर्यायों के साथ द्रव्य रहता है ऐसा नहीं है कि पर्याय हो और द्रव्य न हो और ऐसा भी नहीं हो सकता है द्रव्य हो और पर्याय न हो। अतः द्रव्य तो शाश्वत रहता है और पर्यायें बदलती रहती हैं। इस कारण यहाँ ज्ञानी जन को किसी प्रियजन के उत्पन्न होने पर हर्ष और उसके मरण को प्राप्त होने पर शोक क्यों होना चाहिए? अर्थात् नहीं होना चाहिए।

साथ ही आचार्य महाराज यह कह रहे हैं कि उत्पाद व्यय-ध्रौव्य, सत् का लक्षण है। जैसे किसी की मृत्यु हुई यानि उस पर्याय का व्यय होना और वह उसके द्वारा किसी न किसी नवीन पर्याय को प्राप्त करना यानि नवीन पर्याय का उत्पाद होना यह नियम है। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता है कि 100 वर्ष की आयु वाले का यदि 50 वर्ष की आयु में एक्सीडेंट हो जाए तो वह शेष बचे 50 वर्ष तक संसार में भूत बनकर भटकेगा। नहीं, ऐसा नहीं है उसके 50 वर्ष के जो निषेक हैं वे मृत्यु होने के अन्तर्मुहूर्त पहले एक साथ खिर जाएँगे। जैसे शिव पिण्डी के ऊपर पानी से भरी मटकी में छोटा सा छेद करके टाँग दिया जाता हैं और वह मटकी लगभग 24 घंटे में खाली हो जाती है यदि किसी कारणवशात् वह मटकी 12 घंटे में फूट जाए तो उसका सारा पानी एक साथ गिर जाता है। ठीक इसी प्रकार आयुकर्म के शेष बचे 50 वर्ष के निषेक हैं वे तत्क्षण उदय में आकर खिर जाते हैं और उसी क्षण यह जीव दूसरी पर्याय में जन्म ले लेता है। इस प्रकार ज्ञानियों के लिए कभी भी इस विषय में विलाप करके शोक नहीं करना चाहिए, दुखी नहीं होना चाहिए।

हे आत्म पिपासु! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि मनुष्य जो है वह समुद्रों को, पर्वतों को, देशों और नदियों को लांघ सकता है किन्तु मृत्यु के निश्चय समय को देव भी निमेष (पलक की टिमकार) के बराबर थोड़ा सा भी नहीं लांघ सकता। अर्थात् उसकी मृत्यु की बेला आने पर उसकी आयु को एक क्षण भी नहीं बदल सकता। जब ऐसी बात है तो आचार्य महाराज कहते हैं हे जीव! इस कारण किसी के लिए भी सुख को उत्पन्न करने वाला स्थाई, शान्ति को देने वाला, कल्याण का जो मार्ग है उस मार्ग को छोड़कर किसी भी इष्ट जन के मरण को प्राप्त होने पर कौन सा बुद्धिमान मनुष्य सर्वत्र अपार दुख को उत्पन्न करने वाले शोक को करता है। अर्थात् कोई भी बुद्धिमान शोक को नहीं करता। क्योंकि **ज्ञानी जानता है शोक करने से दुःख होता है और धर्म करने से सुख होता है इसलिए वह शोक से विरक्त होता है, शोक को छोड़ता है और विनय से धर्म को करने के लिए तत्पर हो जाता है।** इस प्रकार हम सभी को हर परिस्थिति में शोक को छोड़कर धर्म को करना चाहिए। **इसी भावना के साथ–**

भगवान महावीर स्वामी की जय

स्थान–हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक–11.12.09
वार–शुक्रवार

जन्म-मरण एक शाश्वत परम्परा

जन्म-मरण की परम्परा शाश्वत है ऐसा आज तक नहीं हुआ कि संसार में जीव हो और उसका जन्म-मरण न हो क्योंकि जन्म-मरण का सम्बन्ध संसार से है और संसार का सम्बन्ध जन्म-मरण से है और वास्तविकता में जन्म-मरण का नाम ही संसार है और जिनका जन्म-मरण नहीं होता ऐसे मुक्त जीवों का संसार नहीं होता है।

कभी भी किसी के जीवन में संकट आए तो घबराना नहीं चाहिए बल्कि तत्त्व चिन्तन, धर्मोपदेश तथा गुरुओं के माध्यम से अपने परिणामों को सन्तुलित करना चाहिए और प्रशस्त राग को पराश्रय देना चाहिए।

बन्धुओ! पूज्य आचार्य पद्मनंदि महाराज आगे कहते हैं—

आक्रन्दं कुरुते यदत्र जनता नष्टे निजे मानुषे,
जाते यच्च मुदं तदुन्नतधियो जल्पन्ति वातूलताम्।
यज्जाडयात्कृतदुष्टचेष्टित भवत्कर्म प्रबन्धोदयात्,
मृत्युत्पत्ति परम्परामयमिदं सर्वं जगत्सर्वदा॥23॥

अर्थ—संसार में जनसमुदाय अपने किसी सम्बन्धी मनुष्य के मरण को प्राप्त होने पर जो विलाप पूर्वक चिल्लाकर रुदन करता है तथा उसके उत्पन्न होने पर जो हर्ष करता है उसे उन्नत बुद्धि के धारक गणधर आदि पागलपन बतलाते हैं। कारण कि मूर्खतावश जो दुष्टवृत्तियाँ की गई हैं उनसे होने वाले कर्म के प्रकृष्ट बन्ध व उसके उदय से सदा यह सब जगत् मृत्यु और उत्पत्ति की परम्परा स्वरूप है।

हे मोक्षेच्छुक! यहाँ पूज्य आचार्य महाराज कह रहे हैं कि संसार में जनसमुदाय अपने किसी सम्बन्धी, कुटुम्बियों के नष्ट होने पर या मृत्यु हो जाने पर जो विलापपूर्वक चिल्लाकर रुदन करता है तथा उसके उत्पन्न होने पर जो हर्ष करता है उसे उन्नत बुद्धि के धारक गणधर आदि पागलपन कहते हैं। अर्थात् जिस प्रकार पागल पुरुष की चेष्टाएँ होती हैं वैसे ही हर्ष और विषाद करने वाले की चेष्टाएँ होती हैं। इसलिये आचार्य महाराज कहते हैं कि संसार में जब तक जीव हैं तब तक **जन्म-मरण की परम्परा शाश्वत है ऐसा आज तक नहीं हुआ कि संसार में जीव हो और उसका जन्म-मरण न हो क्योंकि जन्म-मरण का सम्बन्ध संसार से है और संसार का सम्बन्ध जन्म-मरण**

से है और वास्तविकता में जन्म-मरण का नाम ही संसार है और जिनका जन्म-मरण नहीं होता ऐसे मुक्त जीवों का संसार नहीं होता है।

बन्धुओ। जन्म-मरण संसार का शाश्वत स्वरूप है उसमें व्यक्ति अज्ञानता के कारण से हर्ष-विषाद करता है तो क्या आपके हर्ष-विषाद से जन्म-मरण की परम्परा बदल जाएगी? नहीं बदलेगी, तो फिर शोक क्यों? क्योंकि शोक में व्यक्ति माथा पटकता, छाती कूटता, हाथ-पैर पटकता और तो क्या कुछ लोग मरने के लिए भी तैयार हो जाते हैं कि हमारे प्रिय व्यक्ति चले गए तो हम जिन्दा रहकर क्या करेंगे। एक समय था जब सती प्रथा की परम्पराएँ थी जिसमें जलती हुई चिता में पत्नि को कभी जला दिया जाता था। आज वैसी परम्परा नहीं तो लोग दूसरे प्रकार से अपनी जान को दाव पर लगा देते हैं।

एक बार एक घटना सुनने में आई कि एक पति ने किसी कारण से पत्नि को जान से मार दिया। जान से मारने के बाद जब उसकी कषाय कम हुई तो उसे बहुत वेदना हुई और अंत में जाकर वह भी खत्म हो गया। इसी प्रकार एक ओर घटना सुनने में आई थी कि थोड़ी सी जमीन के झगड़े के कारण से बड़े भाई ने छोटे भाई को रात्रि में सोते समय मार दिया। मारने के बाद जब उसका चेहरा उसे दिखा तो वह घबरा गया और इतना दुखी हुआ कि स्वयं मरने को तैयार हो गया। लोगों ने देखा तो उसे पकड़ा और वह शस्त्र उसके हाथ से छुड़ाया। पश्चात् वह पुलिस थाने गया और अपना जुर्म स्वीकार कर आत्म समर्पण कर दिया। इसी प्रकार एक गरीब परिवार था उसका पति दूसरे के यहाँ नौकरी करता था जब वह अपना वेतन लेकर घर आया तो उसने रुपयों की गड्डी अपनी पत्नी को दे दी। पत्नि काम कर रही थी इसलिए उसने रुपयों की गड्डी वहीं पास में रख दी। उसका 3-4 साल का छोटा बच्चा खेलता-खेलता नोटों की गड्डी के पास पहुँचा और उसे खेलने की वस्तु समझकर उठा लिया और जलते हुए चूल्हे में फेंक दिया। पत्नि ने आकर देखा तो क्रोध में आकर उसने बच्चे को उठा कर चूल्हे में पटक दिया। बच्चा खत्म हो गया। जब उसे होश आया कि यह उसने क्या किया? मेरा पति आएगा तो मुझे मारेगा और उसने भी आत्महत्या कर ली। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार में व्यक्ति जानकर के इस प्रकार के कर्म बाँधता है कि जिससे संसार में घूमना पड़ता है और फिर अंत में जाकर वियोग की भूमिका में आकर आत्महत्या जैसे महापाप को करना पड़ता है। बंधुओ! आत्महत्या संसार में सबसे बड़ी हत्या है। दूसरों की हत्या करने वाले के लिए एक बार गुंजाइश है कि उसको माफ किया जा सकता है लेकिन जो स्वयं आत्म हत्या के लिए तैयार होता है। उसका परिणाम अच्छा नहीं होता तथा उसको 6 माह का सूतक लगता है प्राचीन समय में 6 माह के सूतक के उपरान्त पंचायत बैठती थी तथा कठोर प्रायश्चित देकर कन्ट्रोल किया जाता था कि ताकि भविष्य में कोई अन्य व्यक्ति ऐसा न करें।

और यदि किसी परिवार में कन्ट्रोल करने के बाद भी ऐसी क्रिया पुनः देखी जाती है तो उसे समाज से बाहर कर दिया जाता था। मुनिराज तो आज भी ऐसे लोगों से आहार नहीं लेते हैं तथा ऐसा व्यक्ति पंचकल्याणक आदि क्रियाओं में प्रमुख पात्र नहीं बन सकते हैं।

एक बार मैं अखबार में पढ़ रहा था कि पहले कोई ऐसा कार्य कर लेता था तो उसे राजा सभी के सामने दण्डित करता था, सभी के सामने उसे सजा दी जाती थी, फाँसी पर चढ़ाया जाता था ताकि एक बार यदि किसी को ऐसा दण्ड दे दिया जाएगा तो दुबारा कभी कोई व्यक्ति ऐसा कार्य करने का साहस नहीं करेगा। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि कभी भी ऐसी गल्तियाँ नहीं करना चाहिए। तथा संयोग-वियोग में किया गया हर्ष-विषाद पागल पुरुष की चेष्टाओं की तरह है। कारण कि मूर्खतावश जो दुष्प्रवृत्तियाँ की गई हैं उनसे होने वाले कार्य के प्रकृष्ट बंध व उसके उदय से सदा यह सब जगत् मृत्यु और उत्पत्ति की परम्परा स्वरूप है अर्थात् यह परम्परा शाश्वत है और इस परम्परा को कोई टाल नहीं सकता है। अतः पूज्य आचार्य महाराज इस सत्य के साथ यहाँ यह कहना चाहते हैं कि यदि तुम्हें किसी की मृत्यु से शोक होता है तो आगे ऐसा काम करो कि ऐसी मृत्यु का दर्शन ही तुम्हें नहीं करना पड़े, शोक की अवस्था को कभी तुम्हें न देखना पड़े। उसका रास्ता एक ही है रत्नत्रय को धारण कर मोक्ष को प्राप्त करना। जब हम अपने शास्त्रों को पढ़ते हैं तो देखते हैं कि ऐसे-ऐसे महापुरुष हुए जिनके ऊपर ऐसे-ऐसे संकट आए लेकिन उन्होंने धर्म का आश्रय लिया। परन्तु जो अज्ञानी जन है, जिनके धर्म के संस्कार नहीं हैं वे अधर्म आदि का आश्रय ले जीवन लीला समाप्त कर लेते हैं। लेकिन यह भारतीय संस्कृति नहीं पाश्चात्य संस्कृति है हमें अपनी भारतीय संस्कृति से प्रभावित रहना चाहिए और **कभी भी किसी के जीवन में संकट आए तो घबराना नहीं चाहिए बल्कि तत्त्व चिन्तन, धर्मोपदेश तथा गुरुओं के माध्यम से अपने परिणामों को सन्तुलित करना चाहिए और प्रशस्त राग को पराश्रय देना चाहिए। इसी भावना के साथ**

भगवान महावीर की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—12.12.09
वार—शनिवार

आत्म तत्त्व की श्रेष्ठता

महाव्रती सहस्रेभ्यो वरमेको जिनागमी।
जिनागमिसहस्रेभ्यो वरमेकः स्वतत्त्ववित्।। *सु.स.937।।*

अर्थ- हजारों महाव्रतियों की अपेक्षा एक जिनागम का ज्ञाता अच्छा है और हजारों जिनागम के ज्ञाताओं की अपेक्षा एक आत्मतत्त्व को जानने वाला अच्छा है।

आपत्ति-सम्पत्ति की सूचक है

जब विपत्ति अपनी पूरी शक्ति से अपना ताण्डव दिखा लेती है तो फिर अन्त में उपलब्धि देकर जाती है और जो इन विपत्तियों में आसक्त हो जाता है उसे वह दुःख देकर जाती है।

किसी की मृत्यु हो जाने पर शोक से व्याकुलित क्यों होते हो? अपने मन में विभिन्न प्रकार से भय क्यों उत्पन्न करते हो? क्योंकि संसारी प्राणियों की मृत्यु तो नियामक है फिर उनके वियोग होने पर शोक क्यों करना? अर्थात् शोक नहीं करना चाहिए।

बन्धुओ! यहाँ पर हमारे परमोपकारी, सर्व हितैषी परम पूज्य आचार्य महाराज श्रावकों के लिए इष्ट वियोग से होने वाले शोक का विस्तृत वर्णन करते रहे हैं क्योंकि घटनाएँ इस प्रकार की संसार में अधिकतर सभी प्राणियों के जीवन में घटित होती हैं इसलिए कभी भी शोक नहीं करना चाहिए। वे लिखते हैं—

गुर्वी भ्रान्तिरियं जडत्वमथ वा लोकस्य यस्माद्वसन्,
संसारे बहुदुःख जालजटिले शोकीभवत्यापदि।
भूतप्रेतपिशाच फेरवचितापूर्णे श्मशाने गृहं,
कः कृत्वा भयदादमङ्गलकृते भावाद्भवेच्छङ्कितः॥24॥

अर्थ—बहुत दुःखों के समूह से परिपूर्ण ऐसे संसार में रहने वाला मनुष्य आपत्ति के आने पर जो शोकाकुल होता है यह उसकी बड़ी भारी भ्रान्ति अथवा अज्ञानता है। ठीक है—जो व्यक्ति भूत, प्रेत, पिशाच, श्रृगाल और चिन्ताओं से भरे हुए ऐसे अमंगलकारक श्मशान में मकान को बनाकर रहता है वह क्या भय को उत्पन्न करने वाले पदार्थ से कभी शंकित होगा? अर्थात् नहीं होगा।

हे आत्महितैषी! यहाँ पर आचार्य महाराज कह रहे हैं कि ऐसे संसार में जो बहुत प्रकार के दुखों के समूह से परिपूर्ण रहने वाला मनुष्य आपत्ति के आने पर शोकाकुलित होता है, दुखी होता है यह उसकी बहुत बड़ी अज्ञानता/भ्रान्ति है। तथा इस लोक में रहते हुए जो इस प्रकार के शोक की भूमिका है वह उसकी जड़ बुद्धि का ही परिणाम है कि वह व्यक्ति अपने ज्ञान का सदुपयोग नहीं कर रहा है, ज्ञान का आश्रय नहीं ले रहा है जिससे उसके मन में अनेक प्रकार के शोक उत्पन्न हो रहे हैं। आगे आचार्य महाराज कह रहे हैं ठीक है जो व्यक्ति भूत, प्रेत, पिशाच, श्रृगाल और

चिन्ताओं से भरे हुए ऐसे अमंगकारक श्मशान में गृह (मकान) को बना कर रहता है वह क्या भय को उत्पन्न करने वाले पदार्थ से कभी शंकित होगा? नहीं होगा।

बन्धुओ! लोक में श्मशान घाट को अमंगल माना गया है लेकिन यह बात अलग है कि साधक, त्यागी-वैरागी, तपस्वी होते हैं वे श्मशान घाट को मंगल मानते हैं क्योंकि ऐसे भयानक स्थानों में जाकर वे निर्भीक साधना करते हैं। शास्त्रों में भगवान महावीर स्वामी के विषय में उल्लेख मिलता है कि वे श्मशान घाट में जाकर के तपस्या करते थे और वहाँ पर सात्यकी पुत्र महादेव (रुद्र) ने आकर उन पर उपसर्ग किया था। और वह देव (रुद्र) विशिष्ट प्रकार से देवांगनाओं के रुप में उपस्थित हुआ था और उसने उन्हें शील से चलायमान करने का प्रयास किया था। श्वेताम्बर परम्परा में भी लिखा है कि उनके कानों में तथा लिंग में कील ठोक दी थी लेकिन दिगम्बर परम्परा में ऐसा उल्लेख नहीं है तथा शरीर में अनेक प्रकार से कष्ट दिया था। फिर भी महामुनि वर्द्धमान स्वामी अपनी साधना में निमग्न रहे। पूज्य आचार्य महाराज भी, यही कह रहे हैं कि हमारे जीवन में जो कष्ट/तकलीफ/आपत्ति-विपत्ति आती है वे हमारी अंतरंग की परीक्षा लेने के लिए आती हैं कि आपने अभी तक कितना शास्त्र स्वाध्याय किया, या स्वाध्याय सुना, कितनी सामायिक की, कितना आत्म चिन्तन किया, कितना तत्त्व चिन्तन किया। इसलिए जो साधक होते हैं वे ऐसी परिस्थिति में और मजबूत हो जाते हैं और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार उपसर्ग के आने पर महामुनि वर्द्धमान स्वामी इतने मजबूत हो गए कि रुद्र उपद्रव करता रहा, विभिन्न प्रकार के भयानक रूप को दिखाकर के, भयानक एवं भयभीत करने वाली आवाजों को निकालकर लेकिन महामुनि वर्द्धमान स्वामी अपनी साधना से चलायमान नहीं हुए। अंत में जाकर के वह रुद्र उनके चरणों में नतमस्तक हो गया और महावीर इस नाम से स्तुति कर वापिस चला गया। इसी प्रकार बालक वर्द्धमान जब बाल क्रीड़ा कर रहे थे तब संगम नामका देव जो सर्प के रूप में बालक वर्द्धमान की परीक्षा के लिए आया था उस वक्त वृक्ष पर क्रीड़ा करते हुए बालक वर्द्धमान ने उस सर्प को उठा करके फेंक दिया था। तब उस देव ने बालक वर्द्धमान के साहस को देखकर कहा—आप धन्य हैं और उन्हें वीर इस नाम से संबोधन किया। एक बार महाराज सिद्धार्थ के राज्य का हाथी मदोन्मत्त हो गया और सारे नगर में उत्पाद मचाने लगा तभी राजकुमार वर्द्धमान उस हाथी के सम्मुख आकर खड़े हो गए और उनके दर्शन मात्र से उस हाथी का मद समाप्त हो गया और वह शान्त भाव को प्राप्त हो गया। तभी वर्द्धमान ने उस हाथी पर आसीन होकर राजमहल में प्रवेश किया। तब नगरवासियों ने उन्हें अतिवीर इस नाम से पुकारा।

बन्धुओ! कहने का तात्पर्य यह है कि **जब विपत्ति अपनी पूरी शक्ति से अपना ताण्डव दिखा लेती है तो फिर अन्त में उपलब्धि देकर जाती है और जो इन विपत्तियों में आसक्त हो जाता है उसे वह दुःख देकर जाती है।** एक बार महात्मा गाँधी के लिए किसी शरारती बच्चे ने एक तमाचा (चाटा) लगा दिया। गाँधी जी ने उसकी प्रशंसा करते हुए अपना दूसरा गाल आगे कर दिया उसने फिर से दूसरा तमाचा (चाटा) दूसरे गाल पर लगा दिया उन्होंने फिर से अपना गाल उसके सामने कर दिया, उसने तीसरा तमाचा (चाटा) लगा दिया अबकी बार गाँधी जी ने जैसे ही गाल

उसके सामने किया उसने हाथ जोड़ लिये और बोला—अरे! मैं मारता ही जा रहा हूँ और आप अपना गाल मेरे सामने कर देते हैं लेकिन कोई प्रक्रिया नहीं कर रहे हो।

बन्धुओ! इसी प्रकार आचार्य महावीर कीर्ति जी महाराज के ऊपर सम्मेद शिखर में एक ऐसा उपसर्ग आया कि रात्रि में वे गणधर टोंक पर खड़े होकर तपस्या कर रहे थे उस रात्रि में एक भील शिकार करने के लिए निकला। वह भील चारों ओर घूमता रहा लेकिन जब उसे कोई शिकार नहीं मिला। तब उसको लगा कि इस बाबा ने ही कुछ मन्त्र, जाप कर दिया होगा इसलिए कोई शिकार नहीं मिल रहा है और उसने सन्त को मारने के लिए वही नुकीला भाला उठा लिया। तभी उसके परिणाम चेंज हो गए कि यह मैं क्या कर रहा हूँ? वह सोचने लगा कि अरे! मैं एक सन्त की हत्या करने जा रहा हूँ, इन सन्त की हत्या से मेरा इस लोक में और परलोक में क्या होगा? ऐसा विचार कर उसने भाला फेंक दिया और सन्त के चरणों में गिर गया।

कहने का तात्पर्य यह है कि लोग जिसे अमंगल कार्य कहते हैं सन्त उसे मंगल कार्य कहते हैं, लोग जिसे अमंगल स्थान कहते हैं सन्त उसे मंगल स्थान कहते हैं। आज के समय में लोग कहते हैं कि हे भगवान! किसी को श्मशान का मुख न देखना पड़े यानि वहाँ किसी को न जाना पड़े किसी की मृत्यु न हो। कारण कोई मृत्यु को देखना नहीं चाहता क्योंकि मृत्यु अमंगल कार्य है जबकि उस श्मशान में शव का संस्कार करने वाले लोग मकान बना कर रहते हैं उसे भय कब तक रहेगा? अर्थात् 1 दिन, 2 दिन, 3 दिन, 4 दिन रहेगा और अन्त में जाकर उसका भय समाप्त हो जाएगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि **किसी की मृत्यु हो जाने पर शोक से व्याकुलित क्यों होते हो? अपने मन में विभिन्न प्रकार से भय क्यों उत्पन्न करते हो? क्योंकि संसारी प्राणियों की मृत्यु तो नियामक है फिर उनके वियोग होने पर शोक क्यों करना? अर्थात् शोक नहीं करना चाहिए।**

इसी भावना के साथ—

भगवान महावीर स्वामी की जय!

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—13.12.09
वार—रविवार

विपत्ति में विषाद क्यों?

ज्ञानी वही जिसका ज्ञान ऐसी शोक आदि परिस्थिति खड़ी होने पर वह तत्त्व चिन्तन की गहराई में खड़ा करें।

जिस प्रकार से सूर्य की अवस्था उदय और अस्त की रहती है ठीक इसी प्रकार जन्ममरणादि स्वरूप भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के होने पर किन मनुष्यों के हृदय में विषाद रहता है अर्थात् ऐसी अवस्था में किसी को भी विषाद नहीं करना चाहिए।

बन्धुओ! परम पूज्य आचार्य पद्मनंदि महाराज ने पूर्व गाथा में कहा था कि संसार में संयोग और वियोग नियम से चलता रहता है जिसके कारण लोगों में हर्ष और विषाद होता है और वह पूर्व जन्म के कर्मों के कारण से होता है यह संसार की दशा है। इसी बात के लिए आचार्य महाराज यहाँ बतला रहे हैं कि—

भ्रमति नभसि चन्द्रः संसृतौ शश्वदङ्गी लभत उदयमस्तं पूर्णतां हीनतां च।
कलुषितहृदयः सन् याति राशिं च राशेस्तनुमिह तनुतस्तत्कात्र मुत्कश्च शोकः॥25॥

तडिदिव चलमेतत्पुत्रदारादि सर्वं किमिति तदभिघाते खिद्यते बुद्धिमद्भिः।
स्थितिजननविनाशं नोष्णतेवानलस्य व्यभिचरति कदाचित्सर्वभावेषु नूनम्॥26॥

अर्थ—जिस प्रकार चन्द्रमा आकाश में निरन्तर चक्कर लगाता है उसी प्रकार यह प्राणी सदा संसार में परिभ्रमण करता रहता है, जिस प्रकार चन्द्रमा उदय, अस्त एवं कलाओं की हानि-वृद्धि को प्राप्त हुआ करता है उसी प्रकार संसारी प्राणी भी जन्म-मरण एवं सम्पत्ति की हानि-वृद्धि को प्राप्त हुआ करता है, जिस प्रकार चन्द्रमा मध्य में कलुषित (काला) रहता है उसी प्रकार संसारी प्राणी का हृदय भी पाप से कलुषित रहता है तथा जिस प्रकार चन्द्रमा एक राशि (मीन-मेष आदि) से दूसरी राशि को प्राप्त होता है उसी प्रकार संसारी प्राणी भी एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को ग्रहण किया करता है। ऐसी अवस्था के होने पर सम्पत्ति और विपत्ति की प्राप्ति में प्राणी को हर्ष और विषाद क्यों होना चाहिए? अर्थात् नहीं होना चाहिए।

अर्थ—ये सब पुत्र एवं स्त्री आदि पदार्थ जब बिजली के समान चंचल अर्थात् क्षणिक हैं तब फिर उनका विनाश होने पर बुद्धिमान मनुष्य खेद खिन्न क्यों होते हैं? अर्थात् उनके नश्वर

स्वभाव को जानकर उन्हें खेदखिन्न नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार उष्णता अग्नि का व्यभिचार नहीं करती अर्थात् कभी भी नहीं रहती है, ठीक उसी प्रकार से स्थिति (ध्रौव्य), उत्पाद और व्यय भी निश्चय से पदार्थों के होने पर अवश्य होते हैं और उनके अभाव में कभी भी नहीं होते हैं।

हे परमआत्मेच्छुक! यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं कि जिस प्रकार चन्द्रमा आकाश में निरन्तर चक्कर लगाता रहता है उसी प्रकार से संसारी प्राणी सदा संसार में परिभ्रमण करता रहता है तथा जिस प्रकार चन्द्रमा उदय को, अस्त को तथा कलाओं की हानि-वृद्धि को प्राप्त होता है। उसी प्रकार संसारी प्राणी भी जन्म, मरण एवं सम्पत्ति की हानि वृद्धि को प्राप्त होता है और कहते हैं कि जिस प्रकार चन्द्रमा मध्य में कलुषित रहता है वैसे ही संसारी प्राणी का हृदय भी पाप से कलुषित रहता है, तथा जिस प्रकार चन्द्रमा एक राशि से दूसरी राशि को प्राप्त होता है या दूसरी राशि में प्रवेश करता है। उसी प्रकार संसारी प्राणी भी एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को ग्रहण करता है प्राप्त होता है। तथा ऐसी परिस्थिति के प्राप्त होने पर सम्पत्ति और विपत्ति की प्राप्ति में प्राणी को हर्ष और विषाद क्यों होना चाहिए? अर्थात् नहीं होना चाहिए।

क्योंकि जैसे बरसात में मेघ जब आकाश में आच्छादित हो बरसने के लिए तत्पर होते हैं उस समय आकाश में बिजली भी रुक-रुक कर चमकती है ठीक इसी प्रकार पुत्र, स्त्री आदि पदार्थ जब बिजली के समान चंचल अर्थात् क्षणिक है तब फिर उनका विनाश होने पर बुद्धिमान मनुष्य खेदखिन्न क्यों होते हैं? अर्थात् इन पदार्थों की क्षणभंगुरता या नश्वर स्वभाव को जानकर खेदखिन्न नहीं होना चाहिए क्योंकि खेदखिन्नता, अज्ञानता है फिर भी यदि कोई खेदखिन्न होता है तो आचार्य महाराज आश्चर्य प्रकट करते हैं कि संसार की बड़ी विचित्र स्थिति है क्योंकि संसार में ऐसा कोई परिवार या व्यक्ति नहीं है जिसके जीवन में ऐसी घटनायें न घटती हो।

तथा जिस प्रकार उष्णता, अग्नि का व्यभिचार नहीं करती अर्थात् उष्णता, अग्नि को छोड़कर नहीं रहती है और अग्नि, उष्णता को छोड़कर नहीं रहती है। अर्थात् जहाँ उष्णता होती है वहाँ अग्नि होती है और जहाँ अग्नि होती है वहाँ उष्णता होती है। इस प्रकार दोनों के बीच अविनाभाव सम्बन्ध होता है। यदि अविनाभाव सम्बन्ध तादाम्य सम्बन्ध न हो तो फिर अग्नि नियम से गर्म होती है यह सिद्धान्त गलत हो जाएगा। ठीक उसी प्रकार से स्थिति (ध्रौव्य), उत्पाद और व्यय भी निश्चय से पदार्थों के होने पर अवश्य होते हैं और उनके अभाव में कभी भी नहीं होते हैं। क्योंकि ये सभी पदार्थ/द्रव्य हैं तथा द्रव्य का लक्षण है **उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तं सत्॥30त.सू.अ.5॥** और **सत्द्रव्य लक्षणम्॥29त.सू.अ.5॥** ऐसा कभी नहीं हो सकता कि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य के बिना कोई द्रव्य हो। अर्थात् जहाँ द्रव्य है वहाँ उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य होगा और यह उत्पाद-व्यय नियम से पर्यायों में होता है तथा एक साथ दो पर्यायें भी नहीं होती अर्थात् पूर्व पर्याय के व्यय बिना नवीन पर्याय का उत्पाद नहीं और नवीन पर्याय के उत्पाद बिना पूर्व पर्याय का व्यय नहीं हो सकता है। इसमें समय भेद नहीं रहता है यदि अन्तर है तो मात्र कारण और कार्य का अन्तर है। जैसे अंधकार का दूर होना और प्रकाश का आना ये दोनों काम एक साथ होते हैं। इस प्रकार

पर्याय में उत्पाद और व्यय होता है लेकिन जो द्रव्य या गुण है वह ध्रौव्य रूप ही होते हैं यह शाश्वत सिद्धान्त है और इस सिद्धान्त का कभी अभाव नहीं हो सकता इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि हे भव्य! किसी के वियोग होने पर ऐसा तत्व चिन्तन करना चाहिए और जो ऐसा तत्व चिन्तन करता है वह सम्यग्दृष्टि है क्योंकि उसे भगवान की वाणी पर श्रद्धा है विश्वास है और इस प्रकार के चिन्तन से उसका शोक दूर हो जाता है। इसलिए हमें समय-समय पर ऐसे तत्त्व चिन्तन करते रहना चाहिए। आगे कहते हैं—

प्रियजनमृतिशोकः सेव्यमानोऽतिमात्रं जनयति तदसातं कर्म यच्चाग्रतोऽपि।
प्रसरति शतशाखं देहिनि क्षेत्र उप्तं वट इव तनुबीजं त्यज्यतां स प्रयत्नात्॥27॥

आयुः क्षतिः प्रतिक्षणमेतन्मुखमन्तकस्य तत्र गताः।
सर्वे जनाः किमेकः शोचयत्यन्यं मृतं मूढः॥28॥

अर्थ—प्रियजन के मरने पर जो शोक किया जाता है वह तीव्र असातावेदनीय कर्म को उत्पन्न करता है जो आगे (भविष्य में) भी विस्तार को प्राप्त होकर प्राणी के लिए सैकड़ों प्रकार से दुःख देता है। जैसे—योग्य भूमि में बोया गया छोटा-सा भी वट का बीज सैकड़ों शाखाओं से संयुक्त वटवृक्ष के रूप में विस्तार को प्राप्त होता है। अतएव ऐसे अहितकर उस शोक को प्रयत्न पूर्वक छोड़ देना चाहिए।

अर्थ—प्रत्येक क्षण में जो आयु की हानि हो रही है, यह यमराज का मुख है। उसमें (यमराज के मुख में) सब ही प्राणी पहुँचते हैं अर्थात् सभी प्राणियों का मरण अनिवार्य है। फिर एक प्राणी दूसरे प्राणी के मरने पर शोक क्यों करता है? अर्थात् जब सभी संसारी प्राणियों का मरण अवश्यंभावी है तब एक दूसरे के मरने पर शोक करना उचित नहीं है।

हे मोक्ष पिपासु आत्मन्! यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं कि शोक अपने विनाश होने पर नहीं प्रियजन के वियोग पर किया जाता है इसलिए उनकी मृत्यु हो जाने पर जो शोक किया जाता है। शोक का सेवन किया जाता है वह तीव्र असातावेदनीय कर्म को उत्पन्न करता है। तत्त्वार्थ सूत्र में भी आचार्य उमास्वामी महाराज ने असातावेदनीय कर्म के आस्रव में 'शोक' को कहा है। जो आगे (भविष्य में) भी विस्तार को प्राप्त होकर प्राणी के लिए सैकड़ों प्रकार से दुःख देता है। जैसे योग्य भूमि में बोया गया छोटा सा भी वट का बीज सैकड़ों शाखाओं से संयुक्त वटवृक्ष के रूप में विस्तार को प्राप्त होता है। इस प्रकार शोक करने से ही नहीं अन्य अनेक प्रकार से भी कर्म का बंध होता है वह प्रारम्भिकता में तो बहुत छोटा होता है लेकिन कालान्तर में उसका फल विशाल रूप में भोगना पड़ता है। इसलिए आचार्य महाराज कह रहे हैं कि हे भव्य! जो तू शोक करता है और शोक करने से जिस कर्म का बंध करता है उससे तुम जानकर के विपत्ति मोल ले रहे हो, यह तुम्हारी सबसे बड़ी अज्ञानता है, मूर्खता है। इसलिए ऐसे अहितकर उस शोक को प्रयत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिए। क्योंकि आज हम प्रमाद, अज्ञानता, राग-द्वेष आदि कषायों के कारण कर्म बाँधते हैं, हँसते-हँसते बेहोशी में कर्म बाँधते हैं लेकिन जब उदय में आता है तब आँसुओं की धाराएँ

बहती है इसलिए सदैव तत्त्व चिन्तन करते रहना चाहिए इसी का नाम तत्त्वज्ञानी है। क्योंकि आचार्य महाराज कहते हैं कि शास्त्र पढ़ने का, शास्त्र की बातें करने का, गाथाओं को याद करने का, प्रवचन करने का, प्रवचन सुनने का नाम ज्ञानी नहीं है यदि उस मौके पर ज्ञान काम में न आए। **ज्ञानी वही जिसका ज्ञान ऐसी शोक आदि परिस्थिति खड़ी होने पर वह तत्त्व चिन्तन की गहराई में खड़ा करें।** अन्यथा आज जो छोटी सी चिनगारी दिख रही है वह कालान्तर में आग का रूप धारण कर लेगी और वह सावधान हो जाता है और नियम से ऐसा जीव ही निकट भव्य कहलाता है तथा वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। इसलिए जिनवाणी का, अर्हन्त देव का, गुरुओं का आश्रय लेकर के अपने परिणामों को निर्मल बनाने का प्रयत्न करना चाहिए और शोक को दूर करना चाहिए।

क्योंकि संसार में प्रत्येक प्राणी की प्रत्येक क्षण में जो आयु की हानि हो रही है, अर्थात् हर व्यक्ति की आयु प्रतिक्षण क्षीण होती जाती है। भगवती आराधना में 17 प्रकार के मरण कह गए हैं जिसमें एक आविचिका नाम का मरण होता है जिसका अर्थ है प्रतिसमय मरण होना। आज हम दूसरे की मृत्यु को देखते हैं कि अमुक व्यक्ति चला गया, अमुक व्यक्ति चला गया...। तब आचार्य महाराज कहते हैं कि आप दूसरों की गिनती गिन रहे हो लेकिन अपने आप को भूले हुए हो। इसी बात के लिए आचार्य पूज्यपाद महाराज इष्टोपदेश में कह रहे हैं।

विपत्ति मात्मनो-मूढ़ः, परेषामिव नेक्षते।
दह्मान मृगाकीर्ण, वनान्तर तरुस्थवत् ॥14॥

अर्थात् एक जंगल में एक वृक्ष के ऊपर एक व्यक्ति बैठा हुआ है और उस जंगल में आग लग गई। वह व्यक्ति उस वृक्ष पर बैठकर देख रहा है कि अमुक जल गया, अमुक मर गया, अमुक भाग रहा है लेकिन अपने आप को नहीं देख रहा है कि वह अग्नि धीरे-धीरे इस वृक्ष को भी जला देगी और जैसी उसकी अवस्था हो रही है वैसी हमारी भी अवस्था होगी। हमें भी ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ेगा। इसलिए मृत्यु यमराज का मुख है। उसमें सब ही प्राणी पहुँचते हैं। फिर एक प्राणी दूसरे प्राणी की मृत्यु पर शोक क्यों करता है? अर्थात् नहीं करना चाहिए।

बंधुओ! आज संसार में हर व्यक्ति जिंदगी भर दुनियाँ के समाचार सुनता है दुनियाँ की बातें करता है लेकिन अपने विषय में नहीं सोच पाता, दुनियाँ की चिन्ता करता है लेकिन अपनी चिन्ता नहीं करता, जैसे सभी चले गए वैसे ही हमको भी एक दिन जाना पड़ेगा। और जब जाना ही पड़ेगा तो अच्छा है कि समय रहते हुए कुछ न कुछ करके जाये। क्योंकि पता नहीं किसकी जिन्दगी की शाम किस घड़ी में हो जाए, किसकी मृत्यु कब आ जाए, इस बात को हम जान नहीं सकते। क्योंकि वर्तमान में हमारे पास न अवधिज्ञानी है, न केवलज्ञानी है, न मनःपर्ययज्ञानी है कि जिससे हम पूछ सके। इसलिए हमें एक-एक क्षण की, एक-एक पल की कीमत करना चाहिए और अच्छे कार्यों में जरा भी विलम्ब नहीं करना चाहिए लेकिन व्यर्थ के अनावश्यक रूप संक्लेशता में नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि किसी की मृत्यु के पश्चात् शोक करना ठीक नहीं। आगे कहते हैं–

यो नोत्र गोचरं मृत्योर्गतो याति न यास्यति।
स हि शोकं मृते कुर्वन्, शोभते नेतरः पुमान्॥29॥

प्रथममुदयमुच्चैर्दूरमारोहलक्ष्मी मनुभवति च पातं सोऽपि देवो दिनेशः।
यदि किल दिनमध्ये तत्रकेषां नराणां वसति हृदि विषादः सत्स्ववस्थान्तरेषु॥30॥

अर्थ–जो मनुष्य यहाँ मृत्यु की विषमता को न तो भूतकाल में प्राप्त हुआ है, न वर्तमान में प्राप्त होता है और न भविष्य में भी प्राप्त होगा, अर्थात् जिसका मरण तीनों ही कालों में संभव नहीं है वह यदि किसी प्रिय जन के मरने का शोक करता है तो इसमें उसकी शोभा है। किन्तु जो मनुष्य समयानुसार स्वयं ही मरण को प्राप्त होता है उसका दूसरा किसी प्राणी के मरने पर शोकाकुल होना अशोभनीय है। अभिप्राय यह कि जब संसारी प्राणी समयानुसार मृत्यु को प्राप्त होने वाले हैं तब एक को दूसरे के मरने पर शोक करना उचित नहीं है।

अर्थ–जो सूर्यदेव एक ही दिन के भीतर प्रातःकाल में उदय का अनुभव करता है और तत्पश्चात् मध्याह्न में अतिशय ऊपर चढ़कर लक्ष्मी का अनुभव करता है वह भी जब सांयकाल में निश्चय से अस्त को प्राप्त होता है तब जन्ममरणादि स्वरूप भिन्न अवस्थाओं के होने पर किन मनुष्यों के हृदय में विषाद रहता है? अर्थात् ऐसी अवस्था में किसी को भी विषाद नहीं करना चाहिए।

हे परमश्रद्धालु आत्मन्! यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं कि जिसका मरण तीनों ही कालों में सम्भव नहीं है अर्थात् जो कभी मृत्यु देखी न हो या जो मृत्यु की विषमता को न तो भूतकाल में प्राप्त हुआ है, न वर्तमान में प्राप्त होता है, और न भविष्य में प्राप्त होगा वह यदि किसी प्रियजन के मरने पर शोक करता है तो इसमें उसकी शोभा है किन्तु जो मनुष्य समयानुसार स्वयं ही मरण को प्राप्त होता है उसका किसी दूसरे प्राणी के मरने पर शोकाकुलित होना शोभनीय नहीं है। अभिप्राय यह है कि जब सभी संसारी प्राणी समयानुसार मृत्यु को प्राप्त होने वाले हैं तो हमारे लिए दूसरे की मृत्यु पर शोक करना कदाचित् उचित नहीं है।

आगे पुनः इसी बात को कहते हैं–

क्यो जिस प्रकार सूर्य प्रथम अवस्था में यानि एक ही दिन के भीतर प्रातःकाल में उदय का अनुभव करता है। उदय को प्राप्त होता है और उदित होते हुए सूर्य को यानि बाल सूर्य को अपनी खुली आँखों से आसानी से देखा जा सकता है क्योंकि उसकी किरणों में इतनी ज्यादा गर्मी नहीं होती और मध्याह्न में अतिशय ऊपर चढ़कर लक्ष्मी का अनुभव करता है यानि तपन का युवावस्था का अनुभव करता है क्योंकि मध्याह्न का सूर्य युवासूर्य कहलाता है और जब वही सूर्य सांयकाल में निश्चय से अस्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है यानि सांयकाल आते-आते उसकी वृद्धावस्था आ जाती है सूर्य ढल जाता है। यहाँ आचार्य महाराज का तात्पर्य यह है कि जैसी लाली प्रातः काल में थी वैसी ही लाली सांयकाल में थी लेकिन दोनों में काफी अन्तर है। कहा भी है–

प्रातः सांय नभ में देखो दिखती एक ही लाली है।
एक सुलाती एक जगाती इतनी अन्तर वाली है॥

अतः प्रातःकाल में भी आकाश में लालिमा दिखती है और शाम को देखो तो भी लालिमा

दिखती है लेकिन दोनों एक जैसी नहीं है दोनों में काफी अन्तर है बचपन और पचपन की तरह लेकिन लालिमा की दृष्टि से दोनों समान हैं जैसे बालक और वृद्ध एक समान होते हैं। बालक जब छोटी उम्र में रहता है तो उसको अंगुली पकड़ कर चलाना पड़ता है उसी प्रकार वृद्ध अवस्था आने पर व्यक्ति को हाथ का सहारा देना पड़ता है। बालक को जहाँ बैठा दिया तो बैठ गए, भोजन दे दिया तो ठीक, औषधि दे दी तो ठीक अन्यथा बैठे हैं इसी प्रकार वृद्ध की अवस्था होती हैं वे भी इंतजारी में बैठे रहते हैं। यहाँ आचार्य महाराज यह कहना चाहते हैं बाल्यावस्था और वृद्धावस्था दोनों की लगभग एक जैसी अवस्थायें होती हैं लेकिन बाल्यावस्था उगता हुआ सूर्य और वृद्धावस्था डूबता हुआ सूर्य है। अर्थात् **जिस प्रकार से सूर्य की अवस्था उदय और अस्त की रहती है ठीक इसी प्रकार जन्ममरणादि स्वरूप भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के होने पर किन मनुष्यों के हृदय में विषाद रहता है अर्थात् ऐसी अवस्था में किसी को भी विषाद नहीं करना चाहिए।**

बन्धुओ! जिस प्रकार सूर्य की तीन अवस्थायें होती हैं उसी प्रकार हर व्यक्ति के जीवन रूपी सूर्य की तीन अवस्थायें होती हैं पहला जन्म, दूसरा बुढ़ापा और तीसरा मृत्यु। जब हम पूजन के समय जल चढ़ाते हैं तो भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन्! ये जो मैं जल चढ़ा रहा हूँ वह इसलिए चढ़ा रहा हूँ कि मेरा जन्म-जरा-मृत्यु जैसा महारोग नष्ट हो जाए। इस प्रकार की पवित्र भावना करता हूँ। लेकिन कुछ लोग तो इस बात से घबराते हैं कि मेरा बुढ़ापा न आ जाए। तो बहुत प्रकार की दवाईयाँ खाते हैं। लेकिन आचार्य महाराज कहते हैं कि संसार में सभी रोगों का इलाज हुआ पर इन तीन रोगों का इलाज नहीं हो पाया।

बात उस समय की है जब सनत कुमार चक्रवर्ती निर्ग्रन्थ दीक्षा ले आत्म साधना में संलग्न हो गए। लेकिन कर्म का विचित्र उदय महामुनि सनत कुमार के शरीर में गलित कुष्ठ व्याधि हो गई। रोग के होने पर भयंकर पीड़ा होती थी लेकिन वे शान्त भाव से, समता भाव से कर्म के उदय का चिन्तन करते थे कि पूर्व में मैंने ऐसे कोई कर्म किए थे वह ही उदय में आ रहे हैं। जिन्हें भोगना तो पड़ेगा ही चाहे रोकर भोगे या हंस कर भोगे और जब भोगना ही है तो फिर हँसकर क्यों न भोगे? यदि रो-रोकर भोगेंगे तो नवीन कर्म और बंधेगे इसलिये वे कभी भी हाय-हाय नहीं करते थे। पुराने कर्म के उदय से तो आज हमारी यह हालत हो रही है फिर भविष्य में क्या होगी? और वह अपने लिए तत्त्व ज्ञान की कसौटी पर कसते हैं और अपने परिणामों को सन्तुलित करने के लिए सारी ताकत लगा देते हैं। क्योंकि परिणामों को सन्तुलित करना सच्ची तपस्या है बहुत बड़ी साधना है। एक बार उपवास करना आसान है पर परिणामों को सन्तुलित करना कठिन है।

बन्धुओ। जब देश के ऊपर संकट आए तब बड़े-बड़े महापुरुषों ने हँसते-हँसते कष्टों को सहन किया। सरदार भगत सिंह को लगभग 1 माह पूर्व फाँसी की सजा की घोषणा की गई तब उनका वजन लिया गया और सजा के कुछ दिन पूर्व भी उनका वजन लिया गया। प्रायः व्यक्ति को फाँसी की सजा सुनने के बाद उनका समय के पूर्व ही हार्ट फैल हो जाता है या शोक के कारण उनका वजन कम हो जाता है, नींद नहीं आती है और चिन्ताओं में घुल जाता है लेकिन भगतसिंह का वजन घटा नहीं बल्कि बढ़ गया। लोगों को आश्चर्य हुआ और पूछा—कि आपका वजन बढ़ा है

घटा क्यों नहीं? उन्होंने कहा—मुझे इस बात की खुशी है कि देश रक्षा के लिए बड़ी शान के साथ मृत्यु को वरण करने जा रहा हूँ। मुझे इसमें कोई दुख नहीं है। इसी प्रकार एक तत्त्वज्ञानी के ऊपर कोई आपत्ति आती है तो वह ऐसा चिन्तन करके अपने परिणामों को उज्ज्वल कर लेता है।

बन्धुओ! सनत कुमार महामुनि की समता को देखकर सौधर्म इन्द्र ने बहुत प्रशंसा की और स्वर्ग से दो देव परीक्षा करने आ गए कि देखता हूँ आखिर उनमें क्या है? उन देवों ने वैद्य का रूप धारण कर लिया और महामुनि के चारों ओर चक्कर लगाने लगे कि हर रोग का शर्तियान इलाज, यहाँ दवा वहाँ रोग हवा। वह वैद्य बोलता रहा लेकिन महाराज तो वीतरागी थे उन्होंने आँख खोल कर भी नहीं देखा और अन्त में वह महाराज के समीप ही बैठ गया। महाराज का जब ध्यान विसर्जन हुआ तो उन्होंने सामने वैद्य को देखा। वैद्य ने कहा—कोई आज्ञा-आदेश? महाराज ने कहा—कोई आज्ञा-आदेश नहीं। तब वैद्य ने अपनी बात कही—कि मैं वैद्य हूँ मेरे पास हर रोग का इलाज है आप बताइये कि आपको कौन-कौन से रोग हैं मैं सभी रोगों का इलाज कर सकता हूँ। महाराज ने कुछ नहीं कहा। पुनः वैद्य ने कहा—आपके लिए कुष्ठ रोग है यदि आप की आज्ञा हो तो मैं आपको दवा दे सकता हूँ। महाराज ने कहा—शरीर तो **व्याधि मन्दिरम्** व्याधियों का मन्दिर है इसके एक-एक अंगुल में 96-96 रोग हैं हम किस-किस का इलाज करायेंगे। क्योंकि हम एक रोग का इलाज कराते हैं तो दूसरा रोग उत्पन्न हो जाता है यदि आपको दवाई देना ही हैं तो मुझे मात्र तीन रोगों की दवाई दे दीजिए वे महारोग है जन्म-जरा-मृत्यु। महाराज की बात को सुनकर उस वैद्य ने अपना रूप बदल लिया और हाथ जोड़कर उनके चरणों में नतमस्तक हो गया कि हे गुरुदेव! इसकी दवा तो आपके ही पास है आप ही इस रोग की दवा दे सकते हैं। अतः हम अपने जीवन में एक ऐसी चिन्तन की धारा बनाएँ, एक ऐसे परिणाम बनाए जिससे जीवन का सदुपयोग हो सके, हमारा जीवन सार्थक व सफल हो सके। **इसी भावना के साथ—**

भगवान महावीर स्वामी की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—14.12.09
वार—सोमवार

सज्जन स्वभाव

दुर्जन वचनाङ्गारैर्दग्धोऽपि न विप्रियं वदत्यार्यः।
अगुरुर्न दहयमानः स्वभवगन्धं परित्यजति।। *सु.स.946।।*

अर्थ- सज्जन पुरुष, दुर्जनों के वचनरूपी अङ्गारों से दग्ध होता हुआ भी विरुद्ध नहीं बोलता है क्योंकि अगुरुचंदन जलता हुआ भी अपनी स्वाभाविक गंध रहीं छोड़ता है।

मृत्यु अटल सत्य है

सत्य, सत्य ही है इस अवसर पर जो सत्ता का आश्रय लेता है और सत्ता जब सत्य का आश्रय लेती है तो सम्यक् हो जाती है और जब असत्य का आश्रय लेती है तो असम्यक् हो जाती है। साथ ही कोई भी मंत्र, आश्रय भूत भवन, किला, भाई, मित्र भी मृत्यु से नहीं बचा सकते।

कर्म क्षय का सच्चा रास्ता सम्यक्त्व सहित तप, रत्नत्रय के साथ किया गया तप है जो कर्मों की रस्सी जला देता है और जब कर्म रूपी रस्सी जल जाती है तो वह आत्मा को पुनः बाँधने में समर्थ नहीं होती है।

हे भव्य मुमुक्षु! परम पूज्य आचार्य श्री पद्मनंदि महाराज 'अनित्यपञ्चाशत्' अधिकार में बता रहे हैं कि कभी इष्ट के वियोग में शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि शोक करने का परिणाम अच्छा नहीं होता। और यदि शोक करना ही है तो अपनी अज्ञानता पर शोक करना चाहिए जिसके कारण हम अपनी वास्तविक। शाश्वत अवस्था को प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। पूज्य आचार्य महाराज इसी बात को कह रहे हैं–

आकाश एव शशिसूर्यमरुत्खगाद्याः भूपृष्ठ एव शकटप्रमुखाश्चरन्ति।
मीनादयश्च जल एव यमस्तु याति सर्वत्र कुत्र भविनां भवति प्रयत्नः॥31॥

अर्थ–चन्द्र, सूर्य, वायु और पक्षी आदि आकाश में ही गमन करते हैं, गाड़ी आदिकों का आवागमन पृथ्वी के ऊपर ही होता है तथा मत्स्यादि जल में ही संचार करते हैं। परन्तु यम (मृत्यु) आकाश, पृथिवी और जल में सभी स्थानों पर पहुँचता है। इसीलिए संसारी प्राणियों का प्रयत्न कहाँ पर हो सकता है? अर्थात् काल जब सभी संसारी प्राणियों को कवलित करता है तब उससे बचने के लिए किया जाने वाला किसी भी प्राणी का प्रयत्न सफल नहीं हो सकता है।

हे आत्मन्वेषी भव्य! आकाश में सूर्य, चन्द्रमा, वायु तथा पक्षी आदि विचरण करते हैं, पृथ्वी तल पर बैलगाड़ी (शकट), साइकिल, रथ आदि एक चक्री द्विचक्री, त्रिचक्री, चतु चक्री वाहन चलते हैं और जल में मछली आदि जलजन्तु गतिमान रहते हैं इस प्रकार चाहे आकाश, पाताल और पृथ्वी क्यों न हो सभी जगह यम (मृत्यु) पहुँच जाती है मृत्यु आकर के प्राणों का वरण कर लेती है जब यह मृत्यु सब जगह पहुँच सकती है तो फिर मृत्यु से बचने का आपका प्रयत्न व्यर्थ है।

बंधुओ! आज संसार में प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु से बचने के लिए नाना प्रकार के मंत्र, तंत्र, यंत्र, जाप आदि के तरीके अपनाता है कि मृत्यु न हो लेकिन आज तक संसार में कोई शाश्वत नहीं रहा सभी को मरना पड़ा है। ईरान-ईराक जैसे देश के लोगों ने भी मृत्यु से बचने के लिए बंपर बनाए कि इनमें छिपने से मृत्यु से बच जाएँगे लेकिन कोई भी बच नहीं सका, वहाँ भी यमराज ने अपना तांडव मचाया। इसलिए मृत्यु से बचने का प्रयास हमारी अज्ञानता ही है। कुछ लोग मरने से बचने के लिए अनेक प्रकार की दवाओं का सेवन करते हैं रोग-बीमारी के होने पर उसे दूर करने के लिए कि इससे हमारी मृत्यु न हो जाए तो चिल्लाते, चीखते हैं अरे-रे, मर गये, बचाओ-बचाओ लेकिन आचार्य भगवन् कहते हैं कि अगर आपकी आयु का अंत आ गया है तो डॉ., हकीम, वैद्य आदि की दवा भी आपकी आयु को बढ़ा नहीं सकती और न मृत्यु से बचा सकती है।

परिवार के सदस्य भी कहते हैं कि हम आपको मुहमाँगा धन देंगे, मरीज के वजन के बराबर सोना देंगे लेकिन आप इसे बचा लीजिए। लेकिन उस वक्त डॉ. भी मना कर देते हैं कि हम बचा नहीं सकते अतः आयु का अंत आने पर हमारे सारे प्रयत्न बेकाम और निस्सार हो जाते हैं क्योंकि असाध्य से असाध्य रोगों का इलाज हो सकता है लेकिन मृत्यु का इलाज आज तक नहीं हो सकता है। प्राचीन समय में जो रोग असाध्य होते थे वे आज साध्य हो गए लेकिन मृत्यु आज तक साध्य नहीं हो सकी। यानि मृत्यु पर कोई भी विजय नहीं पा सका।

बन्धुओ! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि यह एक शाश्वत सिद्धान्त है कि जो संसार में आया है उसे मरना पड़ेगा इसलिए जितने समय तक तू मरने-मरने की बात करता है, मृत्यु से बचने का प्रयास करता है उतने समय तक भगवान का नाम लेता तो तुम्हारा जीवन सुधर जाता। क्योंकि भगवान का नाम लेने से परिणामों में निर्मलता आती है और यदि भगवान का नाम लेते-लेते ध्यान आत्मा में चला गया तो आत्मा का कल्याण हो सकता है। अन्यथा पीड़ा चिन्तन नामक आर्त्त ध्यान होगा, परिणामों में संक्लेशता होगी और फिर वह चीखता-चिल्लाता हुआ मरेगा। जिससे वह नरक गति को प्राप्त होगा और यदि ऐसे समय में आयु बंधापकर्ष का काल आ गया तो नरक आयु का बंध होगा जिससे वहाँ भी निरन्तर आर्त्त-रौद्र परिणाम बने रहते हैं धर्म ध्यान नहीं हो सकता है। इसलिए कहा जाता है कि एक-एक समय को, एक-एक श्वास को संभालना चाहिए। कहा भी है—

श्वास-श्वास में जिन भजो, श्वास वृथा मत खोय।
न जाने इस श्वास का, आना होय या न होय॥

इस प्रकार हमें निरन्तर तत्त्व का चिन्तन, धर्म ध्यान में लगे रहना चाहिए और संक्लेशिता से मुक्त रहना चाहिए और यही हमारा पुरुषार्थ काम कर सकता है क्योंकि खोटी आयु खोटे परिणामों से कोई दूसरा नहीं बचा सकता है बल्कि इनसे बचने का पुरुषार्थ स्वयं को करना पड़ेगा। यह सर्वज्ञ प्रभु की देशना है अतः हम दुर्ध्यान से कैसे बचे और धर्म ध्यान में कैसे लगे? ऐसा पुरुषार्थ सदेव करते रहना चाहिए।

इसलिये पूज्य आचार्य महाराज कहते हैं कि जिसने अपने जीवन में जो शुभ-अशुभ कर्म किए हैं उसका उदय होने पर नियम से उसे उसका फल भोगना पड़ता है। हम प्रयास करते हैं कि अशुभ टल जाए लेकिन वह टलता नहीं है। जैसे जो रेखा हाथ पर आ चुकी है वह मिटती नहीं है हम उसके विषय में भावना और प्रयास कर सकते हैं लेकिन सत्य को नहीं बदल सकते हैं यही बात पूज्य आचार्य महाराज आगे कह रहे हैं।

किं देवः किमु देवता किमगदो विद्यास्ति किं किं मणिः,
किं मन्त्रं किमुताश्रयः किमु सुहृत् किं वा स गन्धोऽस्ति सः।
अन्ये वा किमु भूपतिप्रभृतयः सन्त्यत्र लोकत्रये,
यैः सर्वैरपि देहिनः स्वसमये कर्मोदितं वार्यते॥32॥

अर्थ—यहाँ तीनों लोकों में क्या देव, क्या देवता, क्या औषधि, क्या विद्या, क्या मणि, क्या मंत्र, क्या आश्रय, क्या मित्र, क्या वह सुगन्ध अथवा क्या अन्य राजा आदि भी ऐसे शक्तिशाली हैं जो सब ही अपने समय में उदय को प्राप्त हुए कर्म को रोक सकें? अर्थात् उदय में आए हुए कर्म का निवारण करने के लिए उपर्युक्त देवादिकों में से कोई भी समर्थ नहीं है।

हे परम पुरुषार्थी आत्मन्! तीनों लोकों में देव क्या, देवता भी क्या, औषधि भी क्या, विभिन्न प्रकार की सिद्ध की हुई विद्याएँ भी मृत्यु से नहीं बचा सकती है। विद्याएँ भी दो प्रकार की होती हैं साधित सिद्ध यानि जिन्हें सिद्ध किया जाता है दूसरी सहज सिद्ध जो सहजता से वंश परम्परा से प्राप्त होती है। जब कंस, रावण आदि की मृत्यु का अन्तिम समय आया तो उन्होंने विद्याओं को बुलाया और आदेश दिया कि तुम मेरी रक्षा करो लेकिन विद्याएँ कहती हैं हम आपकी रक्षा करने में असमर्थ हैं क्योंकि आपकी आयु का अंत आ गया है अतः हम आपकी रक्षा नहीं कर सकते हैं।

बन्धुओ! कोई भी मणि के पहनने से मृत्यु से नहीं बच सकते हैं अन्यथा मणि, रत्नों को पहनने वाले की अपेक्षा उन्हें देने वाले या जिनके पास रत्नों एवं मणियों के भण्डार हैं उनकी मृत्यु नहीं होती लेकिन उनकी भी मृत्यु होती है उन्हें भी मृत्यु के मुख में जाना पड़ता है यह एक अकाट्य सिद्धान्त है। छहढ़ाला की पाँचवीं ढ़ाल में पं. दौलतराम जी कहते हैं

मणी मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावे कोई॥4॥

बंधुओ! **सत्य, सत्य ही है इस अवसर पर जो सत्ता का आश्रय लेता है और सत्ता जब सत्य का आश्रय लेती है तो सम्यक् हो जाती है और जब असत्य का आश्रय लेती है तो असम्यक् हो जाती है। साथ ही कोई भी मंत्र, आश्रय भूत भवन, किला, भाई, मित्र भी मृत्यु से नहीं बचा सकते।** बलराम भी श्री कृष्ण को, राम, लक्ष्मण को काल द्वारा कवलित होने से नहीं बचा सके। तथा ऑक्सीजन (प्राणवायु) भी मृत्यु बेला आने पर बन्द हो जाती है यदि किसी मरणासन्न व्यक्ति को ऑक्सीजन लगा दी जाए तो आयु होने तक चलती है अंत में आयु समाप्त होने पर

वह बन्द हो जाती है। बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी मृत्यु से नहीं बचा सकते हैं क्योंकि वे स्वयं मृत्यु को प्राप्त होते देखे गए। बारह भावना में भी कहा गया है

राजा राणा छत्रपति हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन अपनी-अपनी बार॥1॥

अर्थात् तीनों लोकों में कोई किसी को नहीं बचा सकता। अतः तीनों लोकों के सभी पदार्थ, सभी व्यक्ति प्राणियों के उदय में आते हुए कर्मों को नहीं बदल सकते, सभी देखते रहते हैं प्रयत्न और प्रयास कर सकते हैं लेकिन कर्म उदय को नहीं बदल पाते। व्यक्ति उसे बदलने का प्रयास भी कर रहा है लेकिन आचार्य भगवन् कहते हैं उस पर आपका पुरुषार्थ नहीं चलेगा क्योंकि पुरुषार्थ भविष्य में बंधने वाले नवीन कर्म पर चल सकता है भूत में बाँधे हुए कर्मों के उदय पर नहीं और वर्तमान में आपके भूत के कर्म का उदय चल रहा है तो कैसे बदला जा सकता है? अर्थात् नहीं बदला जा सकता है। उदय भी दो प्रकार का होता है मंद और तीव्र। मंद उदय में तो कर्मों का संक्रमण किया जा सकता है शुभ को अशुभ में, अशुभ को शुभ में। लेकिन तीव्र उदय में कोई संक्रमण नहीं किया जा सकता है।

बन्धुओ! श्रीपाल को जब कुष्ठ रोग हुआ तो मैनासुन्दरी ने महाराज से उसका उपाय पूछा। महाराज ने कहा—सिद्धचक्र का पाठ कीजिए और रोग ठीक हो गया। वादिराज मुनिराज के शरीर में भी कुष्ठ रोग हो गया तो एकीभाव स्तोत्र की रचना की जिससे उनका कुष्ठ रोग ठीक हो गया। क्योंकि उस समय उनके कर्मों का मंद उदय था और मंद उदय में किए गए अच्छे कार्य नियम से सफलता प्रदान करते हैं। लेकिन तीव्र उदय होने पर कुछ भी काम नहीं करते हैं और तो क्या ज्ञान, विवेक, बुद्धि, हितैषी भी विपरीत हो जाते हैं।

मृगसेन धीवर ने धीवर की पर्याय में मछली की पाँच बार रक्षा की थी वही धीवर एक श्रेष्ठी पुत्र हुआ लेकिन दूसरा श्रेष्ठी जो उसके पिता का मित्र था तथा उसका पिता उसके जन्म के पूर्व अपनी पत्नि को अपने मित्र के यहाँ रखकर स्वयं अपनी पुत्री को लेकर दूसरे देश चला गया था। जब दूसरे श्रेष्ठी को पता चला कि मेरे मित्र का पुत्र बड़ा होने पर बहुत यश को पायेगा तो वह ईर्ष्या से जल गया और उस पुत्र को मारने का प्रयास करने लगा लेकिन पुण्य योग से वह मृत्यु को नहीं प्राप्त हुआ बल्कि उपलब्धि को प्राप्त होता रहा।

एक बार किसी ट्रेन से एक व्यक्ति, उतरा और दूसरी ट्रेन में चढ़ गया, रास्ते में उसकी ट्रेन पलट गई। जबकि उसकी टिकिट किसी ओर ट्रेन की थी लेकिन जब कर्म का तीव्र उदय होता है तो उसे कोई टाल नहीं सकता। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि कर्म के उदय को टालने की अपेक्षा कर्म का आस्रव-बंध ही न हो ऐसा कार्य करे। इसलिए जो साधु/ज्ञानी पुरुष होते हैं वे सावधान रहते हैं कि ऐसा कर्म नहीं बाँधना, ऐसा नहीं सोचना, ऐसा नहीं बोलना आदि-आदि और जिसे इतना ज्ञान होता है वह नवीन कर्मों के आस्रव से बचता रहता है। तथा संवर-निर्जरा के मार्ग को अपना लेता है। और उन नवीन कर्मों का संवर, गुप्ति-समिति के पालन करने से, धर्म

के धारण करने से, अनुप्रेक्षाओं के चिन्तन से और परिषहों को समता-शान्ति से सहन कर उन पर विजय पाने से हो सकता है।

कदाचित् आस्रव-बंध हो भी गया तो तीव्रता तक नहीं पहुँचने देना। उसके लिए कषायों का मंद रखना और कषायों को मंद रखने के लिए धार्मिक कार्य करना, स्वाध्याय, धर्मोपदेश सुनना चाहिए जिससे वह तीव्र रूप में उदय में नहीं आएगा और यदि तीव्र रूप में उदय में आएगा भी तो ज्यादा समय तक नहीं टिक सकेगा।

बंधुओ! महामुनि आदिनाथ 6 माह तक आहार के लिए घूमते रहें, महामुनि पार्श्वनाथ पर 8 दिन तक उपसर्ग चलता रहा जबकि जिनके गर्भ के 6 माह पूर्व से रत्नों की वर्षा, गर्भ में आते ही 56 देवियाँ, 8 महत्तर देवियाँ सेवा में रही, बाल्यकाल में चारों निकाय के देव बाल क्रीड़ा करते, दीक्षा के समय लौकांतिक देव आए लेकिन उन 6 माह में किसी को याद नहीं आया, महामुनि पार्श्वनाथ के उपसर्ग का ध्यान भी 8 दिन पश्चात् धरणेन्द्र को आया। कैसे कर्म का तीव्र उदय कि कोई भी इन कर्मों का निवारण करने में समर्थ नहीं है?

आगे इसी बात को आचार्य महाराज कहते हैं—

गीर्वाणा अणिमादिस्वस्थमनसः शक्ताः किमत्रोच्यते,
ध्वस्तास्तेऽपि परम्परेण स परस्तेभ्यः कियान् राक्षसः।
रामाख्येन च मानुषेण निहतः प्रोल्लङ्घ्य सोऽप्यम्बुधिं,
रामोऽप्यन्तकगोचरः समभवत् कोऽन्यो बलीयान् विधेः॥33॥

अर्थ—यहाँ अधिक क्या कहा जाए? अणिमा-महिमा आदि ऋद्धियों से स्वस्थ मन वाले जो शक्तिशाली इन्द्रादि देव थे वे भी केवल एक शत्रु के द्वारा नाश को प्राप्त हुए हैं। वह शत्रु भी रावण राक्षस था जो उन इन्द्रादि की अपेक्षा कुछ भी नहीं था। फिर वह रावण राक्षस भी राम नामक मनुष्य के द्वारा समुद्र को लांघकर मारा गया। अंत में वह राम भी यमराज का विषय हो गया अर्थात् उसे भी नहीं है। ठीक है—दैव से अधिक बलशाली और कौन है? अर्थात् कोई भी नहीं है।

हे आत्महितैषी भव्य! यहाँ आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि अधिक कहने से क्या प्रयोजन? क्योंकि अणिमा आदि ऋद्धियों को धारण करने वाले, जो सदैव स्वस्थ रहते हैं शक्तिशाली होते हैं जिनका दूसरा नाम शक्र है अर्थात् इनमें जम्बूद्वीप को भी पलटने की सामर्थ्य होती है तो भी इन्हें मृत्यु रूपी शत्रु के द्वारा मरना पड़ता है। एक रावण जो राक्षस नहीं मनुष्य था लेकिन उसकी हुइ दुष्प्रवृत्ति को देखकर या उसके वंश के कारण उसे राक्षस कहा जाने लगा क्योंकि मनुष्यों में बहुत सारे गण होते हैं उसमें एक राक्षण गण होता है तथा राक्षस, व्यन्तर वासी देवों का एक भेद है लेकिन वह व्यन्तरवासी देव भी नहीं था। वर्तमान में भी ऐसी दुष्प्रवृत्ति वाला नहीं था उसके किसी पूर्व पाप कर्म का उदय आया जिससे उसने ऐसा कार्य किया। रावण त्रिखण्डी राजा था सदाचारी एवं शान्तिनाथ भगवान का अनन्य भक्त था उसके गृहचैत्यालय में भी भगवान शान्तिनाथ की विशाल

प्रतिमा थी उसकी भक्ति भी विशेष थी एक बार वह भगवान शान्तिनाथ की संगीत के साथ भक्ति में तल्लीन था कि उसी समय वीणा का तार टूट गया तो उसने तुरन्त अपने हाथ की नस निकाल कर उसमें लगा दी और अपनी भक्ति को जारी रखा तभी उसे बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो गई। एक बार वह कनकगिरि के पर्वत पर अनंतवीर्य केवली के चरणों में पहुँचा तो व्रत लिया कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी उसके साथ मैं बलात्कार नहीं करूँगा। इसलिए उसने सीता के प्रति प्रयास तो किया लेकिन गलत व्यवहार नहीं कर सका तथा सीता के शील का भी प्रभाव था कि रावण उसके सामने टिक नहीं सका। ऐसा वह रावण जो विद्याधर था एक भूमि गोचरी राम के द्वारा समुद्र पार करके मारा गया। जैन पुराण कहते हैं कि प्रतिनारायण की मृत्यु नारायण के द्वारा होती है ऐसा नियम है इसलिए रावण को राम ने नहीं लक्ष्मण ने मारा। चूंकि राम ज्येष्ठ थे इसलिए लक्ष्मण ने कहा मैंने नहीं राम ने मारा है। और लोक व्यवहार में यह कहना ठीक ही है तथा राम के प्रति बहुमानता का प्रतीक है। अतः वह रावण भी मृत्यु से नहीं बचा। अंत में राम जैसे महापुरुष ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की, उसका क्षय/अंत कर दिया इससे वे सदैव-सदैव के लिए अजर-अमर हो गए। अब उनका बुढ़ापा नहीं आएगा, मृत्यु नहीं होगी परन्तु जिन्होंने मृत्यु पर विजय नहीं पाई है उनकी इस विधि (कर्म) को कौन टाल सकता है? अर्थात्–कोई नहीं टाल सकता है। क्योंकि कर्म से शक्तिशाली कोई नहीं है। लेकिन जो महापुरुष रत्नत्रय को धारण कर मृत्यु को समाप्त कर निर्वाण को प्राप्त करते हैं वे फिर कभी संसार में वापिस नहीं आते।

बन्धुओ! इस विधि को जानकर कर्म के उदय में समता तथा कर्म क्षय का पुरुषार्थ निरन्तर करना चाहिए। **और कर्म क्षय का सच्चा रास्ता सम्यक्त्व सहित तप, रत्नत्रय के साथ किया गया तप है जो कर्मों की रस्सी जला देता है और जब कर्म रूपी रस्सी जल जाती है तो वह आत्मा को पुनः बाँधने में समर्थ नहीं होती है।** तथा ऐसा भी नहीं सोचे कि कर्म बलवान हैं हम क्या कर सकते हैं? तो हमारे महापुरुषों ने इन्हीं कर्मों को नष्ट करके निर्वाण को प्राप्त किया है अतः हम, कर्म से अधिक बलवान है और इस प्रकार के विचारों द्वारा हम कर्म क्षय का पुरुषार्थ करते रहें।

इसी भावना के साथ–

महावीर भगवान की जय

स्थान–हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक–15.12.09
वार–मंगलवार

मरते न बचाबे कोई

मनुष्य रूपी हिरण को मृत्यु रूपी शिकारी मार देता है फिर वह नहीं देखता कि राजा है या रंक, गरीब है या अमीर, रोगी या निरोगी, कुरूप है या सुरूप, बालक है या वृद्ध आयु का अवसान होने पर उसे मार ही देता है कोई भी जीवित नहीं बचता है।

मृत्यु सत्य है असत्य नहीं, मृत्यु की सत्ता है इसलिए वह सत्य है और जब मृत्यु की सत्ता है तो मृत्यु अवश्य ही होगी।

हे आत्महितेच्छु! परम पूज्य आचार्य भगवन् पद्मनंदि महाराज अपने इस तृतीय अधिकार में बता रहे हैं कि मृत्यु किसी को नहीं छोड़ती चाहे वह रंक हो या राजा, चाहे कोई विद्वान हो या मूर्ख, कोई भी कितना भी बड़ा व्यक्ति क्यों न हो मृत्यु किसी को नहीं छोड़ती। समय आने पर उन्हें भी मृत्यु के घाट उतरना पड़ता है। इसी बात को आचार्य भगवन् कह रहे हैं–

सर्वत्रोद्गतशोकदावदहनव्याप्तं जगत्काननं,
मुग्धास्तत्र वधूमृगीगतधियस्तिष्ठन्ति लोकैणकाः।
कालव्याध इमान् निहन्ति पुरतः प्राप्तान् सदा निर्दयः,
तस्माज्जीवति नो शिशुर्न च युवा वृद्धोऽपि नो कश्चन॥34॥

अर्थ–यह संसार रूपी वन सर्वत्र उत्पन्न हुए शोक रूपी दावानल (जंगल की आग) से व्याप्त है उसमें मूढ़ जनरूपी हिरण स्त्रीरूपी हिरणी में आसक्त होकर रहते हैं। निर्दय काल (मृत्यु) रूपी व्याघ्र (शिकारी) सामने आए हुए इन जनरूपी हिरणों को सदा ही नष्ट किया करता है। उससे न कोई बालक बचता है, न कोई युवक बचता है और न कोई वृद्ध भी जीवित रहता है।

हे भव्य! परमोपकारी आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि यह संसार रूपी वन सर्वत्र उत्पन्न हुई शोक रूपी दावानल (दावाग्नि) से व्याप्त है। आग (अग्नि) दो प्रकार की होती है। 1. दावानल, 2. बड़वानल (बड़वाग्नि)। बड़वानल यानि समुद्र की आग इसे ज्वाला मुखी भी कहते हैं जिसमें एक ऐसी आग निकलती है जिसे लावा कहते हैं–जिसमें अनेक धातुएँ पिघल-पिघल कर बाहर निकलती हैं तथा जिसमें पत्थर, रेत आदि बहने लगता है यदि यह किसी पर गिर जाए तो वह

खत्म भी हो जाता है इस बड़वानल को आसानी से नहीं बुझाया जा सकता है। दूसरी अग्नि दावानल जो घनघोर भीषण जंगल जहाँ मात्र सूखे हुए वृक्ष पत्ते हो जिसमें हवा चलने से बाँसों में आपस में घर्षण होने से चिंगारियाँ निकलती हैं और वह सूखे पत्तों पर गिर जाती है जिससे आग प्रारम्भ हो जाती है और हवा के लगातार चलते रहने से वह आग चारों तरफ फैल जाती है ऐसी अग्नि को फायर बिग्रेड भी नहीं बुझा पाती। उसी प्रकार इस संसार रूपी वन में शोक रूपी दावाग्नि लगी हुई है वह बुझाई नहीं जा सकती है और उसमें भी मूढ़ पुरुष रूपी हिरण स्त्री रूपी हिरणी के पीछे विषयांध हो दौड़ रहा है, जल जाएगा उसे इसका ख्याल ही नहीं है।

बन्धुओ! संसार में चार प्रकार के अंधे होते हैं एक जन्मजात या परिस्थितिवशात् आँखों से अंधे, दूसरे धन से अंधे, तीसरे क्रोध से अंधे और चौथे काम से अंधे। जब व्यक्ति के अन्दर कामवासना का नशा चढ़ता है तो परिणाम खराब होते है जिससे विवेक नहीं रहता है कि मैं क्या कर रहा हूँ इस प्रकार ज्ञान का कन्ट्रोल न होने से, समझदारी न होने से, इन्द्रियों पर संयम न होने से स्त्रियों के अभिमुख हो जाता है। आचार्यों ने शास्त्रों के अन्दर स्त्री को आग तथा पुरुष को घी की संज्ञा दी है और यदि घी, अग्नि के पास जाएगा तो पिघलेगा ही। इसी प्रकार जो पुरुष, स्त्री के सम्मुख जाएगा तो वह उससे प्रभावित होगा। लेकिन जो ज्ञानी, विद्वान, साधु स्त्री से बचकर रहता है वह अपने शील की रक्षा कर सकता है। इसलिए स्त्री को पुरुषों से तथा पुरुष को स्त्री से सदैव दूर (सावधान) रहना चाहिए। क्योंकि पुरुष की अपेक्षा स्त्री में, स्त्री की अपेक्षा नपुंसकों में मैथुन संज्ञा अधिक रहती है।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड में तीन प्रकार के वेद कहे हैं—जिसमें पुरुषवेद या पुरुषों की विषय वासनारूप परिणतियाँ तृणाग्नि (घास की अग्नि) की तरह होती है जो थोड़े समय तक जलती है और समाप्त हो जाती है। स्त्रीवेद या स्त्रियों की वासना कंडे की अग्नि की तरह होती है जो आग लग जाने पर जल्दी नहीं बुझती बल्कि धीरे-धीरे शान्त होती है। नपुंसक वेद या नपुंसकों की वासना अवा (ईंट को पकाने या मिट्टी के बर्तनों को पकाने वाले) की तरह होती है जो जल्दी नहीं बल्कि 2-3 महीने में शान्त होती है इस प्रकार तीनों की वासना एक-दूसरे से बढ़ती हुई है इसलिए शील व्रतों को जिसने धारण किया है उन्हें अपने व्रतों की रक्षा के लिए स्त्री से बच करके रहना चाहिए। इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि स्त्री को देखकर आँख बन्द कर ले या देखे ही नहीं, बल्कि अपनी मर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए, परिणामों का सन्तुलन बनाते हुए देखें, दृष्टि को पवित्र रखें।

एक बार एक प्रकरण कोर्ट में जज के सामने आया कि एक लड़के ने एक लड़की के साथ छेड़खानी की। लड़के को कोर्ट में पेश किया गया और पूछा गया—तुम इसे देख कर हँस रहे थे। बोला—हाँ। पुनः पूछा गया—तुम इसका पीछा कर रहे थे। बोला—हाँ। क्यों? बोला—अच्छी पोशाक (ड्रेस) को पहने हुए थी! जज ने उस लड़की से कहा—अगर आप ऐसी पोशाक नहीं पहनते तो वह तुम्हें देखकर हँसता नहीं, ना ही तुम्हारा पीछा करता।

बन्धुओ! आज वस्त्र पहनने की मर्यादा भी नहीं रही है कारण कि परिणाम विकृत हैं दूसरों

को आकर्षित करने, लुभाने के परिणाम रहते हैं। वर्तमान में इस भौतिक वातावरण में अन्तर्जातीय विवाह होते हैं कारण कि माता-पिता बच्चों पर कन्ट्रोल नहीं रखते हैं जिससे सीमाएँ टूटती हैं और फिर समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। पुराने समय में लड़के-लड़कियों के स्कूल अलग-अलग होते थे तो मर्यादाएँ रहती थी जिससे बातचीत नहीं हो पाती थी और कभी बातचीत करने का अवसर भी आए तो दो लड़कियाँ बैठकर चर्चा करती थी। आज बड़ी-बड़ी उम्र हो जाने पर भी शादी नहीं होती है जिसके कारण भी वे गलत कदम उठा लेती हैं। प्राचीन समय में छोटी उम्र में शादी हो जाती थी क्योंकि माँ-बाप जानते हैं कि एक उम्र आने पर परिणाम खराब होते हैं तथा बच्चे भी इस बात का ध्यान रखते थे। क्योंकि अन्तर्जातीय विवाह के सम्बन्ध ज्यादा दिन नहीं चलते कारण कि दोनों अपरिचित होते हैं तथा कोई दूसरा भी उन्हें समझा नहीं पाता और परिणाम निकलता है कि जैसे कोर्ट मैरिज की थी वैसे ही कोर्ट में तलाक हो जाती है। ऐसे व्यक्ति आहार नहीं दे सकते, पंचकल्याणक आदि विशेष अनुष्ठान में विशेष पदों को प्राप्त नहीं कर पाते तथा समाज में भी अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर पाते क्योंकि अपराध किया है जिससे दबकर के रहना पड़ता है अतः संयम की रक्षा के लिए मर्यादाओं का ध्यान रखना चाहिए। इस प्रकार संसार परिभ्रमण का कारण कि व्यक्ति स्त्री के पीछे घूमता रहता है फिर उसे धर्म तथा धर्म ध्यान से कोई मतलब नहीं रहता है।

आज संसार में कुछ ऐसे परिवार हैं जिन्होंने मन्दिर के दर्शन ही नहीं किए, गुरुओं को आहार दान नहीं दिया, स्वाध्याय को सुना नहीं बल्कि संसार वृद्धि के कारणों में तन्मय हो अन्त में दोनों मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।

बन्धुओ! आज अपना सौभाग्य है कि अपने लिए पावन-पुनीत संयम का मार्ग मिला और इसकी गरिमा-मर्यादा को कैसे कायम रखा जाए तो शास्त्रों में शील की रक्षा के लिए नौ बाड़ कही गई है जिसमें कठोर रहने पर शील की रक्षा संभव हो जाती है अन्यथा नहीं। इसलिए त्यागी-व्रतियों को चाहिए कि यदि वह संसार से बचना चाहता है, संसार से भयभीत है, संसार में परिभ्रमण नहीं करना चाहता है तो दूसरों को आकर्षित करने से बचें। क्योंकि जब एक मृग (हिरण) मृगी (हिरणी) में आसक्त हो जाता है और वह उसके पीछे-पीछे भागता रहता है ऐसा मृग भागते हुए जब आगे भयानक आग को देखता है तो पीछे लौटता है लेकिन पीछे देखता है कि वहाँ धनुष बाण लिए शिकारी खड़ा है जिसे देख वह घबड़ा जाता है और वहाँ से भी घबड़ा कर भागता है। लेकिन उस भागते मृग पर शिकारी निर्दयता से बाण छोड़ देता है और उसे मार देता है। उसी प्रकार **मनुष्य रूपी हिरण को मृत्यु रूपी शिकारी मार देता है फिर वह नहीं देखता कि राजा है या रंक, गरीब है या अमीर, रोगी या निरोगी, कुरूप है या सुरूप, बालक है या वृद्ध आयु का अवसान होने पर उसे मार ही देता है कोई भी जीवित नहीं बचता है।**

आगे पूज्य आचार्य महाराज इसी बात को बताते हुए खेद प्रकट कर रहे हैं।

संपच्चारुलतः प्रियापरिलसद्वल्लीभिरालिङ्गितः,
पुत्रादि प्रिय पल्लवो रति सुख प्रायैः फलैराश्रितः।

जातः संसृतिकानने जनतरुः कालोग्र दावानल,
व्याप्तश्चेन्न भवेत्तदा बत बुधैरन्यत्किमालोक्यते॥35॥

अर्थ–संसार रूपी वन में उत्पन्न हुआ जो मनुष्य रूपी वृक्ष सम्पत्ति रूपी सुन्दर-लता से सहित स्त्री रूपी शोभायमान बेलों से वेष्टित, पुत्र-पौत्रादि रूपी मनोहर पत्तों से रमणीय तथा विषय भोग जनित सुख जैसे फलों से परिपूर्ण होता है, वह यदि मृत्यु रूपी तीव्र दावानल से व्याप्त न होता तो विद्वान जन और अन्य क्या देखें? अर्थात् वह मनुष्य रूप वृक्ष उस कालरूप दावानल से नष्ट होता ही है। यह देखते हुए भी विद्वज्जन आत्महित में प्रवृत्त नहीं होते, यह खेद की बात है।

हे आत्महितैषी! आत्मान्वेषी आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि इस संसार रूपी वन में उत्पन्न हुए जो मनुष्य रूपी वृक्ष है जिसमें सम्पदा (सम्पत्ति) रूपी लताएँ फैल रही है तथा स्त्री रूपी बेलों से जो शोभायमान है, पुत्र-पुत्री आदि रूप जिसमें मनोहर पत्ते हैं साथ ही जो रति रूपी फलों से व्याप्त है उस मनुष्य रूपी वृक्ष को मृत्यु रूपी तीव्र दावानल न जलाए ऐसा हो नहीं सकता अर्थात् उसे जलाता ही है। और इस दृश्य को देखकर विद्वज्जन यदि आत्महित में प्रवृत्त नहीं होते तो बड़े खेद की बात है। क्योंकि संसार में बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो तत्त्वों का विवेचन करते हैं, ऊँची-ऊँची बातें करते, सूक्ष्म व्याख्यान करते हैं, शंका-समाधान करते हैं लेकिन संयम के नाम पर कुछ नहीं करते, व्रती तथा प्रतिमाधारी भी नहीं बन पाते हैं जबकि परिवार में कोई परेशानी नहीं है व्रती बनकर साधना कर सकते हैं।

एक बार एक विद्वान् ने आचार्य धर्म सागर जी महाराज के पास एक मुनिराज के विषय में आकर शिकायत की और कहा कि उन्हें कपड़े पहना देना चाहिए, वह मुनि बनने के लायक नहीं है इसलिए आपके पास आए हैं अगर आपकी आज्ञा हो तो। आचार्य महाराज ने पूछा–वह नग्न है, खड़े होकर आहार करता है, एक बार आहार करता है, केशलोंच करता है, पैदल विहार करता है, उसके पास पिच्छी-कमण्डल है। लोगों ने कहा–हाँ, महाराज उसके पास पिच्छी-कमण्डल है तथा वह सभी कुछ करते हैं। महाराज ने कहा–आपका रात्रि भोजन का त्याग है या नहीं। उन्होंने कहा–नहीं, महाराज यदि आप कहे तो एक महीने का त्याग कर सकते हैं। महाराज ने कहा–जब आपके रात्रि भोजन का त्याग नहीं है, ब्रह्मचार्य व्रत तथा प्रतिमा भी नहीं है तो तुमको वस्त्र पहनाने का क्या अधिकार है? तथा तुम्हारे ऐसे ज्ञान से क्या फायदा? इस प्रकार यदि कोई विद्वान् संसार की हालत को देखकर आत्महित में प्रवृत्ति नहीं करते तो बड़े आश्चर्य की बात है इससे तो कम ज्ञान अच्छा है कम से कम आत्म हित के पथ पर तो जाते हैं और आत्म कल्याण में प्रवृत्ति करते हैं।

इसी प्रकार एक बार आचार्य शान्ति सागर जी महाराज के पास एक विद्वान् आए और बोले–महाराज, आपने समयसार पढ़ा है। महाराज ने कहा–दर्शन किए हैं, नाम पढ़ा तथा सुना है। विद्वान ने कहा–जिसने साधु होकर समयसार नहीं पढ़ा तो साधु बनना बेकार है। मैंने तो 108 बार पढ़ा है। उसकी बात को सुनकर महाराज ने उसे सिर से पैर तक देखा कि इन्होंने 108 बार

समयसार पढ़ा है लेकिन जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आया। महाराज ने कहा—मैंने एक शब्द पढ़ा लेकिन मुझे समय का सार समझ में आ गया और आपको 108 बार पढ़कर भी गृहस्थ का सार समझ में आया, इससे तो भोले-भाले साधु अच्छे हैं जो आत्महित में प्रवृत्त हो गए। यदि जीवन में थोड़ा भी ज्ञान आचरण के साथ हो तो अच्छा लेकिन आचरण से रहित बहुत ज्ञान भी गधे के बोझ की तरह है। अतः हमारे जीवन में ज्ञान आचरण के साथ होना चाहिए जिससे हमारा आत्म कल्याण हो सके।

पूज्य आचार्य परमेष्ठी आगे बता रहे हैं कि संसार में प्राणियों की कितनी-कितनी अभिलाषाएँ, इच्छाएँ रहती हैं लेकिन उनकी पूर्ति नहीं होती है इसी बात को कह रहे हैं।

वाञ्छन्त्येव सुखं तदत्र विधिना दत्तं परं प्राप्यते,
नूनं मृत्यु मुपाश्रयन्ति मनुजास्तत्राप्यतो बिभ्यति।
इत्थं कामभयप्रसक्तहृदया मोहान्मुधैव ध्रुवं,
दुःखोर्मिप्रचुरे पतन्ति कुधियः संसार घोरार्णवे॥36॥

अर्थ—संसार में मनुष्य सुख की इच्छा करते ही हैं, परन्तु वह उन्हें केवल कर्म के द्वारा दिया गया प्राप्त होता है। वे मनुष्य निश्चय से मृत्यु को तो प्राप्त होते हैं परन्तु उससे डरते हैं। इस प्रकार वे दुर्बुद्धि मनुष्य हृदय में इच्छा (सुखाभिलाषा) और भय (मृत्युभय) को धारण करते हुए अज्ञानता से अनेक दुखों रूप लहरों वाले संसार रूपी भयानक समुद्र में व्यर्थ ही गिरते हैं।

हे भव्य आत्मन्! संसार में जीव निरन्तर सुख की इच्छा करता है कि हे भगवन्! मैं सुखी रहूँ, मेरी झोली सुख से भर दो। छहढ़ाला की पहली ढ़ाल में पं. दौलतराम जी ने भी कहा है—

जे त्रिभुवन में जीव अनंत, सुख चाहे दुख ते भयवंत॥1॥

अर्थात् तीनों लोकों में अनंतानंत प्राणी हैं और उन सबकी एक ही इच्छा है कि मुझे सुख चाहिए, मुझे सुख चाहिए, लेकिन सभी प्राणियों की अलग-अलग सुख की परिभाषाएँ होती है जैसे कोई भूखे व्यक्ति से सुख की परिभाषा पूछे तो पेट भर भोजन मिल जाना ही सुख की परिभाषा है इसी प्रकार प्यासे के लिए पानी, बीमार के लिए औषधि, अपंग के लिए हाथ-पैर की प्राप्ति, अंधे के लिए आँख की प्राप्ति ही सुख की परिभाषा है। इस प्रकार संसार में अनंत लोगों की अनंत धारणा होती है परन्तु उनके लिए जो वास्तविक सुख को नहीं जानते हैं। यह इन्द्रिय सुख एक सुखाभास है इसके प्राप्त होने पर सुख नहीं होता वरन् इनके प्राप्त होने पर मात्र राग की सन्तुष्टि होती है, इच्छा की पूर्ति होती है यदि इन जड़ पदार्थों में सुख मिल जाए तो फिर आत्मा का सुख जड़ हो जाना चाहिए और यदि आत्मा का सुख जड़ हो जाए तो सिद्धों का सुख भी जड़ हो जाएगा फिर आत्मिक सुख का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। जबकि सिद्धों को अनंत सुख होता है फिर उनको अनंत सुख नहीं बल्कि अनंत दुख होगा क्योंकि उनके पास पौद्गलिक पदार्थों का अभाव

है लेकिन सिद्ध भगवान तो अनंत सुखी है। तात्पर्य यह है कि जो लौकिक पदार्थों में सुख मान रहे हैं वे भ्रांति में है, अज्ञानता में है लेकिन आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि ठीक है अगर आप लौकिक पदार्थों में ही सुख मानते हो, उनको ही चाहते हो तो वह भी पुण्य होगा तो मिलेगा, पुण्य नहीं होगा तो फिर हाथ की वस्तु भी चली जाएगी, सोना भी मिट्टी हो जाएगा, अनुकूल सामग्री प्रतिकूल हो जाएगी और पुण्य होगा तो आप आँख बन्द करके भी काम करोगे तब भी आपको सफलता मिल जाएगी। इस प्रकार संसार में तुम जिस सामग्री को चाहते हो वह तुम्हारे लिये प्राप्त हो रही है लेकिन जिन्हें प्राप्त हो रही है ऐसे मनुष्य भी मृत्यु को प्राप्त होते हैं परन्तु मृत्यु से डरते हैं।

बन्धुओ! जबकि **मृत्यु सत्य है असत्य नहीं, मृत्यु की सत्ता है इसलिए वह सत्य है। और जब मृत्यु की सत्ता है तो मृत्यु अवश्य ही होगी।**

किसी की देरी से तो किसी की जल्दी लेकिन होगी जरूर होगी यह शाश्वत सिद्धान्त है। इसलिए वे दुर्बुद्धि मनुष्य हृदय में वासनाओं को, इच्छाओं को और मृत्यु रूपी भय को धारण करते हुए अज्ञानता से अनेक दुख रूपी उर्मियाँ जिसमें उठ रही हैं ऐसे संसार रूपी भयानक समुद्र में गिर जाते हैं।

इसलिए हे मानव! तत्त्व को अच्छी तरह से न समझने के कारण हम आज तक संसार में घूमते आ रहे हैं अब हम जिनवाणी को गुरु मुख से समझ रत्नत्रय को प्राप्त कर अपनी आत्मा का कल्याण करें। जिससे संसार परिभ्रमण को समाप्त कर सके। **इसी भावना के साथ—**

महावीर भगवान की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—16.12.09
वार—बुधवार

जीवन दान

यो दद्यात् काञ्चनं मेरु कृत्स्नां चापि वसुन्धराम्।
एकस्य जीवितं दद्यात् फलेन न समं भवेत्।। *सु.स.928।।*

अर्थ- जो मेरु पर्वत के बराबर सुवर्ण अथवा सम्पूर्ण पृथिवी देता है और एक प्राणी को जीवनदान देता है, उसको उन दोनों में फल की समानता नहीं होती है।

मृत्यु की सखी-जरा

जब तक आयु का अंत नहीं आया है तब तक आत्म कल्याण कर लेना चाहिए अन्यथा मुझे भी मृत्यु रूपी धीवर के वृद्धत्व रूपी जाल में फँस कर मरना पड़ेगा।

किसी दार्शनिक ने लिखा—मन्दिर मूर्ति कुछ दे या न दे लेकिन उपलब्धि यह है कि भगवान की शांत, प्रशांत मुद्रा को देखते हैं तो मन का बोझ हल्का होता है मन पवित्र तथा प्रसन्न होता है।

मोक्षमार्ग बाह्य साधना का नाम नहीं अंतरंग साधना का नाम है।

संसार में व्यक्ति अपने भाग्य से आता है और भाग्य से जीता है तो फिर मन के सारे विकल्पों को छोड़कर खुश और प्रसन्न रहना चाहिए।

हे भव्य मनीषियो! पूज्य आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि संसार में सुख नहीं है लेकिन संसारी प्राणी निरन्तर सुखों को ही चाहता है और पौद्गलिक पदार्थों में भौतिक पदार्थों में सुख की कल्पना करता है यह उसका भ्रम है तो जिसकी ऐसी धारणा होती है कि पौद्गलिक पदार्थों में सुख है वह कभी वास्तविक सुख को प्राप्त नहीं कर सकता। जिस प्रकार कोई व्यक्ति काँच के टुकड़े को ही रत्न मानकर बैठा हो तो वह असली रत्न कभी प्राप्त नहीं कर सकता और यदि उसके हाथ में असली रत्न आ भी जाए, तो वह उसकी कीमत नहीं कर सकता। इसी प्रकार जो ऐसी मान्यता को लेकर बैठा है कि भौतिक पदार्थों में सुख है यह उसकी अज्ञानता है। इसी बात को आचार्य महाराज कह रहे हैं—

स्वसुखपयसि दीव्यन्मृत्युकैवर्तहस्तप्रसृतघनजरोरुप्रोल्लसज्जालमध्ये।
निकट मपि न पश्यत्यापदां चक्रमुग्रं भव सरसि वराको लोकमीनौघ एषः॥37॥

शृण्वन्नन्तकगोचरं गतवतः पश्यन्बहून् गच्छतो,
मोहादेव जनस्तथापि मनुते स्थैर्य परं ह्यात्मनः।
संप्राप्तेऽपि च वार्धके स्पृहयति प्रायो न धर्माय यत्,
तद्बध्नात्यधिकाधिकं स्वमसकृत्पुत्रादिभिर्बन्धनैः॥38॥

अर्थ—यह विचारा जनरूपी मछलियों का समुदाय संसार रूपी सरोवर के भीतर अपने सुखरूप जल में क्रीड़ा करता हुआ मृत्यु रूपी धीवर के हाथ से फैलाए गए घने वृद्धत्वरूपी विस्तृत जाल के मध्य में फँसकर निकटवर्ती भी तीव्र आपत्तियों के समूह को नहीं देखता है।

अर्थ—मनुष्य मरण को प्राप्त हुए जीवों के सम्बन्ध में सुनता है तथा वर्तमान में उक्त मरण को प्राप्त होने वाले बहुत से जीवों को स्वयं देखता भी है, तो भी वह केवल मोह के कारण अपने को अतिशय स्थिर मानता है। इसीलिए वृद्धत्व के प्राप्त हो जाने पर भी चूँकि वह प्रायः धर्म की अभिलाषा नहीं करता, अतएव अपने को निरन्तर पुत्रादि रूप बंधनों से अत्यधिक बांध लेता है।

हे भव्य! जिस प्रकार तालाब के अन्दर जल में विभिन्न प्रकार की मछलियाँ कलोल करती हुई उसमें इतनी आसक्त हो जाती हैं कि जिन्हें देख कर धीवर उन्हें पकड़ने के लिए जाल फैला देता है लेकिन जाल की और ध्यान न होने से धीवर उन्हें अपने जाल में फँसा लेता है और जाल में फँस कर फिर उन्हें मरण का कष्ट सहना पड़ता है। मछलियों की इसी दीन अवस्था को देखकर आचार्य महाराज प्राणियों के समुदाय को मछलियों की, संसार को समुद्र की, मृत्यु को धीवर की तथा वृद्धावस्था को जाल की संज्ञा दी और कहा कि इस संसार रूपी सरोवर के अन्दर प्राणी रूपी मछलियों का समुदाय अपने सुख रूपी जल में कीड़ा कर रहा है और उस संसार रूपी सरोवर के मध्य वृद्ध रूपीजाल फैला रखा है लेकिन प्राणी रूपी मछलियों का समुदाय उस सुख रूपी जल में कीड़ा करता हुआ इतना आसक्त हो गया है कि उसे अपने सामने खड़ी हुई विपत्तियाँ दिखाई नहीं दे रही है और तो क्या वह उस वृद्धत्व रूपी जाल के मध्य में फँसकर भी निकटवर्ती तीव्र आपत्ति (मृत्यु) को नहीं देख पाता लेकिन दूसरों की आपत्ति (मृत्यु) को देखता है कि देखो-देखो वह फँस गया लेकिन वह यह नहीं सोचता कि मुझे भी एक दिन ऐसे ही फँसना होगा। इसलिए अच्छा है **जब तक आयु का अंत नहीं आया है तब तक आत्म कल्याण कर लेना चाहिए अन्यथा मुझे भी मृत्यु रूपी धीवर के वृद्धत्व रूपी जाल में फँस कर मरना पड़ेगा।**

बंधुओ! संसार में प्रायः व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हुए प्राणियों के विषय में प्रतिदिन सुनता है कि आज अमुक स्थान पर आग लग गई, अमुक स्थान पर बाड़ आ गई, तो किसी स्थान पर भूकम्प आ गया, ऐक्सीडेन्ट हो गया और अमुक-अमुक घटना में इतने-इतने व्यक्ति खत्म हो गए। और आज व्यक्ति प्रातः होते ही आँख को पूर्ण रूप से खोल भी नहीं पाता और आँखों को मलते-मलते हाथ में अखबार लेकर या T.V. खोलकर समाचार पढ़ने या सुनने हेतु बैठ जाता है। आचार्य महाराज तो कहते हैं कि जिन हाथों में प्रातः होते ही शास्त्र होना चाहिए था आज उनमें अखबार होता है व्यक्ति को प्रातः होते ही शुभ समाचार सुनना चाहिए था लेकिन अशुभ समाचार सुनता और पढ़ता है क्योंकि मृत्यु का समाचार अशुभ समाचार है। प्राचीन समय में मन्दिर के घंटों की नाद से सारा वातावरण गुंजायमान होता था हर जगह भगवान की आराधना एवं भक्ति के गीत गाए जाते थे जिसको सुनने से सारा दिन मंगलमय व्यतीत होता था। आज जब व्यक्ति का अधिकांश समय अखबार या T.V. में जाता है तो भगवान् कहते हैं कि जितना समय तू अखबार के पढ़ने में या T.V. के देखने में लगा रहा है उतना समय तू स्तोत्र-स्तुति पढ़ने में, पूजा-भक्ति करने में

लगा ले तो तेरा जीवन मंगलमय हो जाएगा क्योंकि अखबार कभी किसी का मंगल नहीं करते तथा समाचार सुनने से भी क्या लाभ मिला, हाँ, मन सन्तुष्ट हो जाता है। और आज इस जीवन की भागमभाग में व्यक्ति इतना व्यस्त हो गया कि उसे अखबार पढ़ने का समय नहीं तो वह शौच स्थान में अखबार ले जाकर पढ़ता है और मस्तिष्क को अशुभ समाचार से भर लेता है फिर मन को उसी में लगाए रहता है यदि यही मस्तिष्क-मन भगवान की स्तुति से भरे तो मन पवित्र ही होगा। **किसी दार्शनिक ने लिखा—मन्दिर मूर्ति कुछ दे या न दे लेकिन उपलब्धि यह है कि भगवान की शांत, प्रशांत मुद्रा को देखते हैं तो मन का बोझ हल्का होता है मन पवित्र तथा प्रसन्न होता है।**

बन्धुओ! इस प्रकार जब भी हम स्तोत्र बोले तो जोर से बोले मन में नहीं क्योंकि जो मन में किया जाता है वह स्तोत्र नहीं ध्यान है। स्तोत्र का स्पष्ट उच्चारण, सुंदर लय, सुन्दर स्वर के साथ एक साथ सामूहिक रूप से बोलना चाहिए इस प्रकार बोलने से अन्दर की गर्मी या प्रदूषण बाहर निकलता है और मन पवित्र होता है शरीर स्वस्थ रहता है। इस प्रकार एक स्वर में जब सामूहिक रूप से पढ़ा जाता है तो मन प्रभावित होता है जिससे स्तोत्र नहीं पढ़ने वाले पढ़ने लगते, सुनने वाले ध्यान से सुनते, और मंत्र मुग्ध हो जाते हैं क्योंकि शब्द एक ब्रह्म शक्ति है जो सभी को प्रभावित करती है सुप्रभात स्तोत्र में कहा भी है—

संगीत स्तुति मंगलैः प्रसरतां, मे सुप्रभातोत्सवः॥1॥

स्तोत्र पाठ गलत सोच को बदल देता है अगर कोई व्यक्ति टेंसन में बैठा हो और वह उच्चारण न करे तो उसका टेंसन काफी समय तक चलता रहेगा और अगर वह उच्चारण करेगा तो स्तुति, मन में समाविष्ट हो जाएगी और अन्य विचार अलग हो जाएँगे। आचार्य पूज्यपाद महाराज भी समाधि भक्ति में लिखते हैं—

त्वन्नामप्रतिबद्ध वर्ण पठने, कण्ठोऽस्त्व कुण्ठो मम्॥6॥

अर्थात् यदि मेरी मृत्यु का समय निकट आ जाए या कण्ठ अवरुद्ध हो जाए तो भी हे भगवन्! आपके नाम से ही मेरा कण्ठ अवरुद्ध हो अन्य शब्दों की उच्चारण से नहीं क्योंकि यदि भगवान् के नाम के साथ मृत्यु होगी तो सद्गति होगी। तथा भगवान का नाम भी मृत्यु की बेला में उनको ही याद आएगा जिन्होंने पूर्व से अभ्यास किया है। एक बार किसी ने पूछा—आपने छोटी उम्र में दीक्षा क्यों ली वृद्ध में लेना चाहिए थी? मैंने कहा—मृत्यु का भरोसा नहीं वह कब आ जाए। यदि कोई कहे कि हम मृत्यु की बेला में ही साधना कर लेंगे तो आचार्य भगवन् कहते हैं कि मृत्यु की बेला में साधना करना आसान नहीं है क्योंकि मृत्यु की बेला में सब भूल जाते हैं लेकिन वे संस्कार याद रहते हैं जो पहले से मेहनत करके बनाए हैं इसलिए साधना के संस्कारों के लिए पहले से मेहनत करके अभ्यास करके रखना चाहिए। अर्थात् जिस योद्धा ने पूर्वाभ्यास नहीं किया तो वह परास्त होकर लौटेगा इसलिए मिलिट्री में युद्ध हो या न हो लेकिन रोज परेड करना अनिवार्य है इसी प्रकार जो स्तोत्र-स्तुति कर रहे हैं वे वर्तमान समय का सदुपयोग तो कर ही रहे हैं साथ ही मृत्यु बेला के लिए अभ्यास कर रहे हैं।

बन्धुओ! जब स्कूल में राष्ट्रगीत या प्रार्थना होती है और हजारों बच्चे एक साथ गुन गुनाते हैं तो वातावरण भी शान्त हो जाता है। गिरजाघरों में मंत्रों के एक साथ उच्चारण के साथ सारी क्रियाएँ होती हैं, ईद के दिन जब नमाज पढ़ी जाती है तो नमाज की उच्चारणा के साथ शरीर की क्रियाएँ भी एक साथ होती हैं, हिन्दुओं में भी जब यज्ञ आदि में मंत्रों की आहूतियाँ दी जाती हैं या पाठ की उच्चारणा होती है तो एक साथ एक स्वर में उच्चारणा होती है जिससे चारों तरफ का परिवेश चेंज हो जाता है। इसी प्रकार हम भी प्रभु परमात्मा का स्मरण खुले मन से करें जो नई तरंग को वातावरण में उपस्थित करते हैं लेकिन जब मन समस्याओं से भरा रहता है तो चाहते हुए मन खुल नहीं पाता हैं। शब्द उच्चारण से योगा शुरू होता है जिससे स्वास्थ्य ठीक रहता है क्योंकि प्रदूषित वायु बाहर निकल जाती है और जब तक प्रदूषित वायु बाहर नहीं निकलेगी तो वह अस्वस्थता का कारण बनेगी। प्राचीन समय में योगीजन जंगल में रह कर पाठों का उच्चारण किया करते थे। उल्लेख मिलता है कि सुकुमाल राजकुमार को वैराग्य हुआ तो उसका कारण उनके पिता जो मुनि थे महल के पास के उद्यान में वृक्ष के नीचे योग पूरा होने पर अंत में लोक प्रज्ञप्ति ग्रन्थ का पाठ कर रहे थे और इतनी जोर से उनकी आवाज महल तक पहुँच रही थी।

जिसके सुनते ही उन्हें वे आकर्षित हुए और उस दिशा की ओर बढ़ चले अंत में उन्होंने दीक्षा ले आत्मकल्याण के पथ को प्राप्त किया।

बन्धुओ! आज स्तोत्र पाठ में हमारी आवाज नहीं निकलती क्योंकि ताकत नहीं लेकिन चर्चा-वार्ता में बैठ जाए तो ताकत आ जाती, किसी से लड़ाई हो जाए तो दूनी ताकत आ जाती है लेकिन स्तुति-स्तोत्र में प्रमाद करते हैं जिससे अशुभ आस्रव होता है। आज हमें जिसे सुनना चाहिए उसे नहीं सुन पाते और जो नहीं सुनना चाहिए था उसे सुनते हैं। हमें शास्त्र स्वाध्याय तथा पूजा की आवाज सुनाई नहीं देती है लेकिन रोज के लड़ाई-झगड़े तथा फिल्मी गाने जरूर सुन लेते हैं। (आश्चर्य है कि कान इसलिए नहीं हैं कि जो कुछ भी सुनते रहे बल्कि 'इसलिए हैं कि अच्छा सुने) पूज्य आचार्य सन्मति सागर जी महाराज कहते थे कि अशुभ समाचार सुबह से नहीं सुनाना चाहिए आहार के बाद सुनाना चाहिए। एक बार भावनगर के चातुर्मास में एक अम्मा जिसका मकान मन्दिर की दीवार से लगा हुआ था 6-7 बजे प्रातः खत्म हो गई लेकिन समझदारी की कि कोई रोया नहीं मुझे मात्र उनके स्वास्थ्य खराब होने की जानकारी थी। तभी पूनमचन्दजी आए और बोले—महाराज, अम्मा जी का स्वास्थ्य ठीक नहीं है आप आहार को जल्दी उठ जाइए। और हम लोग 8 बजे आहार को उठ गए पश्चात् आहार से लौटकर के आए तो रोना शुरू हो गया। पूछा—क्या बात है? तो बताया—कि अम्मा जी की मृत्यु हो गई है। तब मैंने कहा—मुझे बताते तो मैं उनकी सल्लेखना-समाधि कराता तब बताया—कि उनकी मृत्यु तो प्रातः 6 बजे ही हो गई थी। चूंकि इस प्रकार के समाचार प्रातः देने के लायक नहीं होते हैं प्रातः तो शुभ समाचार ही देना चाहिए तथा आपस में भी अशुभ चर्चा नहीं करना चाहिए। लेकिन संसारी प्राणी प्रातः होते ही मृत्यु की चर्चायें सुनता है। तथा वर्तमान में अनेक प्राणियों की मृत्यु स्वयं अपनी आँख से देखी जाती है कि अमुक की मृत्यु हो गई। मेरी नहीं हुई वह सोचता है कि दुनियाँ मर सकती है लेकिन मैं मरण को प्राप्त नहीं हो सकता ऐसा वह मोह के कारण अपने आपको अतिशय स्थिर मानता है और अपनी सामने आती हुई मृत्यु को नहीं देखता।

बन्धुओ! जयपुर में भगवती आराधना का स्वाध्याय पूज्य आचार्य श्री विमल सागर जी महाराज के सानिध्य में चल रहा था सारा संघ बैठा था तभी सल्लेखना का प्रकरण निकला। तब मैंने पूज्य आचार्य श्री से कहा—आचार्य श्री संघ में जितने भी वृद्ध साधु हैं सभी को सल्लेखना व्रत लेना चाहिए और इसी चर्चा-चर्चा में 11 साधुओं ने सल्लेखना व्रत ले लिया उसमें एक सूर्यमती माता जी थी जो भद्र परिणामी एवं व्रत पालन करने में कठोर थी जिनका शरीर उपवास के कारण क्षीण हो गया था उनसे कहा—माता जी सावधान रहना और सल्लेखना के विषय में कहा तो बोली—अभी 10 साल जीना और 4-6 दिन बाद ही उनकी समाधि हो गई जबकि वो सावधान हो गई थी व्रत-नियम भी ले लिए थे। इसी प्रकार मोही व्यक्ति दुनियाँ की सुनता, देखता है और निरन्तर मुझे ये करना. ..2 ऐसा सोचता रहता है। लेकिन अपने विषय में नहीं विचार करता पाता कि मेरी भी मृत्यु की बेला आएगी। कहा भी है—

करिष्यामि करिष्यामि, करिष्यामि इति स्मरेत्।
मरिष्यामि मरिष्यामि, मरिष्यामि इति विस्मरेत्॥

अर्थात् मैं करूँगा, मैं करूँगा, मैं करूँगा इसे याद रखता है मैं मरूँगा, मैं मरूँगा, मैं मरूँगा इसे भूल जाता है। जबकि होना यह चाहिए था कि

करिष्यामि करिष्यामि, करिष्यामि इति विस्मरेत्।
मरिष्यामि मरिष्यामि, मरिष्यामि इति स्मरेत्॥

अर्थात् मैं करूँगा, मैं करूँगा, मैं करूँगा इसे भूल कर मैं मरूँगा, मैं मरूँगा, मैं मरूँगा इसे याद रखे क्योंकि जिसे अपनी मृत्यु का ध्यान है वह सावधान रहता है और जिसे मृत्यु का ध्यान नहीं है वह करिष्यामि को स्मरण करता है तथा मरिष्यामि को भूल जाता है।

बन्धुओ! इस प्रकार करते-करते वृद्ध अवस्था को प्राप्त होने पर वह धर्म की अभिलाषा नहीं करता क्योंकि सबसे अधिक तृष्णा वृद्धावस्था में रहती है और जब तृष्णा या मोह जगता है तो कल क्या होगा इसके विषय में नहीं सोचता जो होगा सो होगा। आज तो जो करना सो कर लो। वह विषयाभिलाषा के कारण सोचता है कि कौन सुबह से उठेगा, दर्शन करने जाएगा, पूजा करेगा, हमसे व्रत-नियम का पालन नहीं होता। गुरुजन सलाह भी देते हैं लेकिन उसकी धर्म के प्रति अभिलाषा नहीं होती। बल्कि उसका ध्यान पुत्र-पौत्रादिक के प्रति अधिक जाता है धर्म के प्रति नहीं जाता। वह धर्म में प्रमाद करता है और परिवार के विषय में कैसे भी किसी से भी जानकारी ले लेता, फोन करवाता है तो आचार्य भगवन् कहते हैं आपने घर-परिवार का त्याग किया है न, तो फिर याद क्यों? उनकी स्मृतियाँ क्यों? और यदि स्मृतियाँ हैं तो आपके अन्दर उनके प्रति मोह ज्यों का त्यों है फिर आपने यह बाहर का प्रदर्शन क्यों किया, बाहर से दूसरा रूप क्यों दिखा रहे हो क्योंकि शेर की खाल पहनने वाला गधा कभी शेर नहीं होता। इस प्रकार मात्र बाहर के प्रदर्शन या साधना से कोई फायदा नहीं जब तक अन्दर का मोह नहीं छूटा। मोह न छूटने के कारण आपका जीवन किनारे से बंधी नाव की तरह है जिसे रात-भर क्या जिन्दगी भर भी खेते रहोगे तो भी नाव किनारे

को प्राप्त नहीं हो सकती। क्योंकि **मोक्षमार्ग बाह्य साधना का नाम नहीं अंतरंग साधना का नाम है,** मोक्षमार्ग आन्तरिक परिणति पर टिका है और गुणस्थान भी परिणामों का नाम है।

(बन्धुओ! आचार्य भगवन् अपने क्षपक के परिणामों को बिगड़ते देख उसे समझाते हैं कि हे साधक! देख तेरे कैसे परिणाम हैं और ऐसे परिणामों से तुम्हारा कौन सा गुणस्थान होगा? फिर तुम द्रव्यलिंगी नहीं कहलाओगे क्या? ऐसे शब्दों को सुनते ही उसकी मोह रूपी नींद खुल जाती है कि ओहो मैं क्या सोच रहा था? क्या विचार कर रहा था? यह सब तो बाह्य दिखावा है और वह अपने परिणामों को बदलता है और ऐसा बदलता है कि फिर मुड़ कर के नहीं देखता फिर उसे सगे-सम्बन्धी तथा परिवार के लोग आए हैं नजर नहीं आता है उनके प्रति अन्य लोगों की तरह ही दृष्टिकोण हो जाता है और तो क्या अनजानता का दृष्टिकोण हो जाता है। कारण कि उनके सम्पर्क में रहने से मोह जागृत हो सकता है। क्योंकि जीवन का अधिकांश समय उनके साथ ही व्यतीत हुआ है और मोह के अनादि के संस्कार हैं इसलिए जल्दी से जग जाते हैं। अतः गुरुजन जानकारी देते हैं कि ऐसे कुटुम्ब परिवार से मोह को छोड़ो और आत्मकल्याण में प्रवृत्ति करो।)

आगे पूज्य आचार्य महाराज शरीर की अवस्था का दिग्दर्शन कराते हुए लिख रहे हैं—

दुश्चेष्टा कृतकर्म शिल्पिरचितं दुःसन्धि दुर्बन्धनं,
सापायस्थिति दोष धातुमलवत्सर्वत्र यन्नश्वरम्।
आधि व्याधिजरामृतिप्रभृतयो यच्चात्र चित्रं न तत्।
तच्चित्रं स्थिरता बुधैरपि वपुष्यत्रापि यन्मृग्यते॥39॥

अर्थ—जो शरीर दुष्ट आचरण से उपार्जित कर्म रूपी कारीगर के द्वारा रचा गया है, जिसकी सन्धियाँ व बन्धन निन्द्य हैं, जिसकी स्थिति विनाश से सहित है अर्थात् जो विनश्वर है; जो रोगादि दोषों, सात धातुओं व मल से परिपूर्ण है तथा जो नष्ट होने वाला है, उसके साथ यदि आधि (मानसिक चिन्ता), रोग, बुढ़ापा और मरण आदि रहते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु आश्चर्य तो केवल इसमें है कि विद्वान मनुष्य भी उस शरीर में स्थिरता को खोजते हैं।

बन्धुओ! इस शरीर का निर्माण कोई ब्रह्मा या भगवान् नहीं करते और न ही शरीर को प्रदान करते हैं बल्कि हमारे खोटे आचरण से उपार्जित कर्म रूपी शिल्पीकार करते हैं। इस प्रकार शरीर की रचना नामकर्म के आधार से होती है अर्थात् जैसे कर्म करता है वैसे शरीर का निर्माण होता हैं इसकी सन्धियाँ तथा बन्धन भी अच्छे नहीं है क्योंकि शुभ संहनन नहीं अशुभ संहनन है तथा ऐसे शरीर की स्थिति विनाश रूप है जिसमें अनेकों दोष हैं दोषों का घर है क्योंकि आज तक जितने भी पाप होते हैं शरीर के कारण, शरीर से और शरीर के लिए होते हैं इस प्रकार शरीर को दोषों का घर जानकर योगी शरीर में रहते हुए भी शरीर को नहीं आत्मा को देखते हैं और अपनी आत्मा को परमात्मा बना लेते हैं लेकिन जो शरीर को देखते हैं वे परमात्मा नहीं बन पाते। यह शरीर 7 धातुमय एवं नवमल द्वारों से सहित है जिनसे निरन्तर मल बहता रहता है इसलिए यह शरीर मल का पिण्ड है। शरीर विनश्वर है नष्ट होने वाला है जिसे हम अच्छा-अच्छा खूब खिलाते-पिलाते

हैं फिर भी अन्त में नष्ट हो जाता है। साथ ही इस शरीर में आधि, व्याधि, जरा और मरण आदि रहते हैं। आधि यानि मानसिक पीड़ा जिसके पास सब कुछ है लेकिन सन्तोष नहीं, मन की पवित्रता, विशालता, उच्चता, गहराई नहीं है जिससे मानसिक रूप से परेशान है। देवों में भी मानसिक दुख होता है जबकि उनके पास सुन्दर एवं स्वस्थ्य शरीर और धन-वैभव सब कुछ है फिर भी दुखी है।

बन्धुओ! आज व्यक्ति प्रायः धन के अभाव में दुखी नहीं बल्कि दूसरों के सुखों को देखकर दुखी है कि यह धनवान कैसे हो गया? इतना सुखी कैसे हो गया? कुछ व्यक्ति धन की चिन्ता में दुखी है कि धन कैसे मिले और पीढ़ियों की चिन्ता करता है? लेकिन **संसार में व्यक्ति अपने भाग्य से आता है और भाग्य से जीता है तो फिर मन के सारे विकल्पों को छोड़कर खुश और प्रसन्न रहना चाहिए।** व्याधि यानि शारीरिक रोग। आज के व्यक्ति पुराने लोगों की अपेक्षा अधिक बीमार हैं जबकि वे कितना मेहनत करते थे फिर भी स्वस्थ्य रहते थे और आज कितने नौकर लगे हैं फिर भी बीमार हैं। आज घर-घर में प्रातः होते ही सबसे पहले दवाईयों का नास्ता होता है और यदि नहीं लेते तो काम नहीं चलता। इसलिए कहा है—**देहं व्याधि मंदिरम्।** यानि शरीर रोगों का घर है। ऐसे शरीर को देख योगीजन विचार करते हैं कि शरीर के 1-1 अंगुल में 96-96 रोग हैं इस प्रकार पूरे शरीर में 98451548 रोग हैं किस-किस का इलाज करेंगे? इसलिए साधु जन सबसे बड़ा पुरुषार्थ करते हैं कि रोगों का घर शरीर ही प्राप्त न हो। और अंत में बुढ़ापा आता है। छहढ़ाला की पहली ढ़ाल में बुढ़ापे की दशा के विषय में पं. दौलतराम जी ने कहा है—**अर्धमृतक सम बूढ़ापनो कैसे रूप लखै आपनो॥14॥**

न जीने में न मरने में ऐसी अवस्था बुढ़ापे की होती है बुढ़ापे के बाद अंत में मृत्यु हो जाती है इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। बल्कि सत्य है कि शरीर है तो बीमारियाँ तथा बुढ़ापा आएगा, धातु-उपधातु का निर्माण होगा, मल बहेगा इसलिए कोई भी आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य तो इस बात का है कि कोई व्यक्ति विद्वान होकर के भी इस विनश्वर शरीर में स्थिरता खोजता है कि यह शरीर समाप्त न हो, इसमें बुढ़ापा न आए लेकिन मोह के कारण ही ऐसी धारणा बनाता है परन्तु ऐसा सोचने पर भी यह शरीर शाश्वत नहीं रहने वाला है। अतः हे साधक! ऐसी धारणा बना कर इस शरीर से विरक्त होना चाहिए तो हमें शाश्वत अवस्था प्राप्त हो सकती है। **इसी भावना के साथ—**

महावीर भगवान की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—17.12.09
वार—गुरुवार

मृत्यु वरण के पूर्व मुक्ति वरण हो

मृत्यु आने के पूर्व आत्मकल्याण में प्रयत्न कर लो जिससे जीवन सार्थक-सफल हो जाएगा। क्योंकि आत्मकल्याण एक प्रशंसनीय कार्य है इसलिए साधकों को दीक्षा के पश्चात् जो साधना मुक्ति में सहायक बन जाए। इस दिशा में सच्चा पुरुषार्थ करना चाहिए। क्योंकि वह सम्यक् साधना, तप कहलाती है

आज व्यक्ति को थोड़ा सा भी सम्मान, पूजा, ऐश्वर्य, ख्याति, लाभ प्राप्त हो जाता है तो आसमान से बात करता है, दूसरों को तुच्छ दृष्टि से देखता है; वह सब कुछ भूल जाता है जबकि ये सारी उपलब्धियाँ चार क्षण की हैं फिर छूट जाएगी।

हे भव्य आत्मन्! यहाँ पूज्य आचार्य भगवन् अपनी अमृतमयी देशना में बता रहे हैं कि यह शरीर कितना अपवित्र है जिसमें जीव निवास करता है। प्रायः व्यक्ति अपवित्रता में नहीं रहना चाहता है फिर भी यह जीव अपवित्रता में रह रहा है यह सबसे बड़ा आश्चर्य है यदि तू इस अपवित्र शरीर में नहीं रहना चाहता है तो फिर शरीर से मुक्त होने का, देह से अदेह होने का, अशरीरी की यात्रा का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए शरीर से विरक्त होना पड़ेगा क्योंकि मोह की पकड़ इस शरीर के प्रति है और जब शरीर के प्रति मोह छूटेगा तब तू शरीर से मुक्त ज्ञान शरीर को प्राप्त कर सकता है अशरीर को प्राप्त कर सकता है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए 40वीं गाथा में आचार्य महाराज मुक्ति की खोज के विषय में कह रहे हैं–

लब्धा श्रीरिह वाञ्छिता वसुमती भुक्ता समुद्रावधिः,
प्राप्तास्ते विषया मनोहरतराः स्वर्गेऽपि ये दुर्लभाः।
पश्चाच्चेन्मृतिरागमिष्यति ततस्तत्सर्वमेतद्विषा,
श्लिष्टं भोज्यमिवाति रम्यमपि धिग्मुक्तिः परं मृग्यताम्॥40॥

अर्थ–हे आत्मन्! तूने इच्छित लक्ष्मी को पा लिया है, समुद्र पर्यन्त पृथिवी को भी भोग लिया है तथा जो विषय स्वर्ग में भी दुर्लभ है उन अतिशय मनोहर विषयों को भी प्राप्त कर लिया है। फिर भी यदि पीछे मृत्यु आने वाली है तो यह सब विष से संयुक्त आहार के समान अत्यन्त रमणीय होकर भी धिक्कार के योग्य है। इसलिए तू एक मात्र मुक्ति की खोज कर।

हे भव्य! यहाँ आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि हे प्राणी! हे जीव!! तू आज तक मनोवांछित

इच्छा के अनुसार लक्ष्मी को, सम्पत्ति को प्राप्त कर चुका है तूने चक्रवर्ती जैसे महान वैभव के भी स्वप्न देख लिए लेकिन क्या तेरी इच्छा पूरी हो सकी? तुझे वास्तविक सुख मिल सका? और इसे पाकर के भी क्या तुम मृत्यु से बच सके? नहीं बच सके अर्थात् असीम सम्पत्ति को पाकर के भी इस संसार से जाना पड़ा। सम्राट सिकंदर जिसने विश्व प्रसिद्धि को प्राप्त किया। उसे भी संसार से बिदाई लेनी पड़ी। समुद्र पर्यन्त सीमा वाली भूमि को प्राप्त करके उसे भी भोगा। चक्रवर्ती जो 6 खण्ड का अधिपति होता है और वह समुद्र पर्यन्त भूमि का ही नहीं समुद्र के अन्दर की भूमि का भी राजा होता है फिर भी उसे मृत्यु का वरण करना पड़ा, वहाँ भी मृत्यु ने उसे नहीं छोड़ा। तथा देवताओं को जो स्वर्ग में भी दुर्लभ है ऐसे पंचेन्द्रिय विषयों को जो अतिशय मनोहर है उनको अनंतों बार प्राप्त कर लिया फिर भी—**तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही पर रिक्त रही।**

अर्थात् तृष्णा समाप्त नहीं हुई, अनंतों बार विषय भोंगे और उन्हें भोग कर छोड़ दिया, फिर भोंगे फिर छोड़ा। आचार्य पूज्यपाद महाराज भी इष्टोपदेश में कह रहे हैं—

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान् मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा॥30॥

फिर भी उनकी चाहना बनी रहती है और यह चाहना अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव के अन्दर बनी रहती है। सो ठीक है सम्यग्दृष्टि के अन्दर भी बनी रहती है और तो क्या साधु के अन्दर भी बनी रहती है कि अमुक जगह देख लूँ, अमुक जगह घूम लूँ। तो आचार्य महाराज कहते हैं कि यह भी चक्षुइन्द्रिय का विषय है या अमुक वस्तु का स्वाद ले लूँ तो यह भी रसनाइन्द्रिय का विषय है। हे आत्मन्! तूने अनंतों बार संसार के पदार्थों की इच्छा की और उन्हें अनंतों बार भोगा लेकिन आत्मा की इच्छा नहीं की, आज जैसी इच्छा हमारी भोगों के प्रति होती है वैसी आत्मा के प्रति नहीं हो पाती और यदि ऐसी इच्छा, आतुरता, आसक्ति आत्मा के प्रति होती तो तेरा कल्याण हो जाता, उद्धार हो जाता। लेकिन तू आत्मा के विषय में उदास रहता है भावना भी नहीं भाता और यदि भावना भाता भी है तो अरुचि से, अनुत्सुकता से तो फिर आत्मा का स्वभाव कैसे मिलेगा? और यदि उत्सुकता होगी तो आत्मा का रस आने लगेगा और जिसे एक बार आत्मा का रस आने लगता है उसे संसार के सारे रस नीरस हो जाते हैं।

बन्धुओ! पूज्य आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि साधकों ने कैसे छोड़ा, क्यों छोड़ा? तो जिन्हें आत्मा का रस आता है फिर वे कहते हैं कि मुझे नहीं चाहिए यह संसार का रस। मुझे इस दुर्लभ पर्याय को पाकर आत्मा को पाना है और उनका पुरुषार्थ शुरू हो जाता है लेकिन जिसकी ज्ञान विवेक शक्तिजाग्रत है उनका ही पुरुषार्थ सफल हो पाता है और जिनकी ज्ञान विवेक शक्ति जाग्रत नहीं है वे आत्म रस से रिक्त रहते हैं। जैसे मछली पानी में भी रहकर प्यासी रहती है। (हमें संयम की साधना को पाकर के इतना समय हो गया हमने इतने लम्बे समय में क्या पाया आकर के देखना चाहिए,) विचार करना चाहिए जो ऐसा प्रयास करता है वह यदि अपने आप में खालीपन भी देखेगा तो वह भर जाएगा क्योंकि उसने देखने का पुरुषार्थ किया है और वह एक दिन आत्म

स्वभाव को पा जाएगा और जिसने देखने का पुरुषार्थ नहीं किया था सोचना ही छोड़ दिया वह गहरी नींद में सोएगा और खाली का खाली बना रहेगा। इस प्रकार ऐसे चिन्तन में उतरना चाहिए, चिन्तन बनाना चाहिए, सोचना चाहिए कि बाह्य पदार्थों का, सम्बन्धों का हमारा त्याग है। आज हमने जिसको पाने के लिए बाह्य पदार्थों, सम्बन्धों आदि को छोड़ा है यदि उसी में हमारा मन रहा तो हम दोनों ही जगह से गए अर्थात् न संसार को भोग पाए और न आत्मा का आनन्द ले पाए। इस प्रकार जो इन्द्रियों के विषय स्वर्ग में भी दुर्लभ है ऐसे अतिशय मनोहर विषयों को भी प्राप्त कर लिया इसके बाद में भी यदि मृत्यु आने वाली है तो यह सब विष से संयुक्त आहार के समान सामग्री का प्राप्त करना है जो अत्यन्त रमणीय होकर भी धिक्कार के योग्य है। जैसे विषयुक्त भोजन के खाने पर मृत्यु आएगी वैसे इन विषयों की सामग्री के प्राप्त होने पर भी मृत्यु होगी। इसलिए ये विषय धिक्कार के योग्य है फिर उसकी चाह बनी रहे, उसमें तल्लीन रहे एक बहिरात्मा की तरह, अतः ऐसे दुर्लभ जीवन को पाकर हम उसमें अपने अमूल्य समय को खोते रहे, ऐसे विचार जिसके अन्दर होंगे वह अपने ज्ञान को धिक्कार कर सकता है अन्यथा समीचीन चिन्तन से रहित व्यक्ति के अन्दर धिक्कार के विचार ही उत्पन्न नहीं होते। अतः जिन विषयों में हम लीन रहे उसके विषय में धिक्कार के भाव हो, पश्चाताप के भाव हो क्योंकि पश्चाताप विरक्ति को बढ़ाता है और विरक्ति से मोक्षमार्ग बढ़ता है अतः हमारे जीवन में कम से कम पश्चाताप के भाव रहे।

बन्धुओ। ऐसे तो हम प्रतिक्रमण सुबह-शाम रोज पढ़ते हैं और जिन्दगी भर तक पढ़ते। लेकिन अन्तर नहीं आता। इसलिए अपनी कषायों आदि गलत क्रियाओं के प्रति पश्चाताप होना चाहिए कि हे आत्मन्! तुझे धिक्कार हो। इस प्रकार हे भव्य! ऐसा विचार करते हुए जो श्रेष्ठ मोक्ष है उसकी खोज करते हुए उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

आगे बुद्धिमान को क्या करना इसी बात को पूज्य आचार्य महाराज आगे कह रहे हैं कि—

युद्धे तावदलं रथेभतुरगा वीराश्च दृप्टा भृशं,
मन्त्रः शौर्य मसिश्च तावदतुलाः कार्यस्य संसाधका।
राज्ञोऽपि क्षुधितोऽपि निर्दयमना यावज्जिघत्सुर्यमः
कुद्धो धावति नैव सन्मुखमितो यत्नो विधैयो बुधैः॥41॥

अर्थ—युद्ध में राजा के रथ, हाथी, घोड़े, अभिमानी सुभट, मन्त्र, शौर्य और तलवार; यह सब अनुपम सामग्री तभी तक कार्य को सिद्ध कर सकती है जब तक कि दुष्ट भूखा यमराज (मृत्यु) क्रोधित होकर मारने की इच्छा से सामने नहीं दौड़ता है। इसलिए विद्वान पुरुषों को उस यम से अपनी रक्षा करने के लिए अर्थात् मोक्षप्राप्ति के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए।

हे भव्य बंधुओ! जैसे युद्ध स्थल या संग्राम भूमि में बहुत ऊँचे-ऊँचे विशाल एवं मजबूत रथ, हाथी, शक्तिशाली घोड़े, अभिमानी सुभट होते हैं और उनके अंदर ऐसी भावना होती है कि मैं शत्रु को परास्त कर दूँगा। उसे जीतकर दिखाऊँगा लेकिन पीठ नहीं दिखाऊँगा, वीर मरण करूँगा। जिसके अन्दर ऐसा साहस होता है उसे ही युद्ध व्यवस्था में रखा जाता है।

जब हम प्राचीन इतिहास के पन्नों को उठाकर देखें कि एक पत्नि युद्ध स्थल में जाते हुए अपने पति में वीरत्व उत्पन्न करती है कि आप जा रहे हो तो जाओ लेकिन जीत कर लौटना पीठ दिखाकर नहीं लौटना। इस प्रकार उसे प्रोत्साहन दिया जाता है। जब कोई बटालियन (सैनिकों का समुदाय) युद्ध के लिए जाता है तो उसके पूर्व एक सभा होती है जिसमें उनको प्रोत्साहित करने के लिए वीरत्व भाषा का प्रयोग किया जाता है जिसे सुन उनके अन्दर उत्साह होता है। ऐसे बड़े-बड़े योद्धा, मंत्र शक्ति जिसे विभिन्न जापों के अनुष्ठान द्‌वारा सिद्ध किया गया है, पराक्रम (शौर्य), और तलवार यह सब अनुपम सामग्री तभी तक कार्य को सिद्ध कर सकती है जब तक कि दुष्ट भूखा यमराज क्रोधित होकर मारने की इच्छा से सामने नहीं आ जाता। तब तक ज्ञानी के लिए आत्मरक्षा, आत्मकल्याण के लिए यत्न करना चाहिए अर्थात् यम से अपनी रक्षा करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

बन्धुओ! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि आपके पास सब कुछ है लेकिन ये सभी सामग्री तभी तक महत्त्व रखती है जब तक की मृत्यु सामने नहीं आई। लेकिन मृत्यु के सामने आते ही सारी सामग्री रखी रह जाती है, परिवार-कुटुम्ब के लोग खड़े रह जाते हैं लेकिन कोई सहायक नहीं होते। इसलिए हे भव्य! **मृत्यु आने के पूर्व आत्मकल्याण में प्रयत्न कर लो जिससे जीवन सार्थक-सफल हो जाएगा। क्योंकि आत्मकल्याण एक प्रशंसनीय कार्य है इसलिए साधकों को दीक्षा के पश्चात् जो साधना मुक्ति में सहायक बन जाए। इस दिशा में सच्चा पुरुषार्थ करना चाहिए। (क्योंकि वह सम्यक् साधना तप कहलाती है)**

भव्य बन्धुओं! संसार में व्यक्ति को किसी का अभिमान नहीं करना चाहिए क्योंकि अभिमान से कभी भी किसी का भला नहीं हुआ। इसी बात को परमोपकारी पूज्य आचार्य महाराज कह रहे हैं कि–

राजापि क्षणमात्रतो विधिवशाद्रङ्कायते निश्चितं,
सर्वव्याधिविवर्जितोऽपि तरुणोऽप्याशु क्षयं गच्छति।
अन्यैः किं किल सारतामुपगते श्रीजीविते द्वे तयोः,
संसारे स्थिति रीदृशीति विदुषा क्वान्यत्र कार्यो मदः॥42॥

अर्थ–भाग्यवश राजा भी क्षणभर में निश्चय से रंक के समान हो जाता है, तथा समस्त रोगों से रहित युवा पुरुष भी शीघ्र ही मरण को प्राप्त होता है। इस प्रकार अन्य पदार्थों के विषय में तो क्या कहा जाए, किन्तु जो लक्ष्मी और जीवित दोनों ही संसार में श्रेष्ठ समझे जाते हैं उनकी भी जब ऐसी (उपर्युक्त) स्थिति है तब विद्वान मनुष्य को अन्य किसके विषय में अभिमान करना चाहिए? अर्थात् अभिमान करने के योग्य कोई भी पदार्थ यहाँ स्थायी नहीं है।

हे भव्यआत्मन्! भाग्यवश एक राजा जो विशाल राज्य का अधिपति था जिसके राज्य में स्वर्ण व रत्नों के भण्डार थे, सेनायें थी वे क्षणभर में रंक हो गया, उनका परिवार, धन-सम्पति आदि सब कुछ समाप्त हो गया। और शरीर में किसी भी प्रकार की व्याधि नहीं थी जो युवा अवस्था को

प्राप्त था उनकी उस युवा अवस्था में ही मृत्यु हो गई तो आश्चर्य होता है क्योंकि फिर अन्य पदार्थों के विषय में क्या कहा जाए? किन्तु जो लक्ष्मी और जीवित ये दोनों ही संसार में श्रेष्ठ समझे जाते हैं उनकी भी जब यही दशा हो जाती है तो आचार्य भगवान् कहते हैं कि फिर संसार में मनुष्य को किसके विषय में अभिमान करना चाहिए? अर्थात् अभिमान करने के लिए कोई भी पदार्थ या विषय शेष नहीं है।

बन्धुओ! आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि ऐसा राजा जिसे लक्ष्मी और परिवार का विछोह हो जाता है वह क्षणमात्र में रंक हो जाता है तो वह किसका अभिमान करे? क्योंकि **आज व्यक्ति को थोड़ा सा भी सम्मान, पूजा, ऐश्वर्य, ख्याति, लाभ प्राप्त हो जाता है तो आसमान से बात करता है, दूसरों को तुच्छ दृष्टि से देखता है; वह सब कुछ भूल जाता है जबकि ये सारी उपलब्धियाँ चार क्षण की हैं फिर छूट जाएगी।** इसलिए हमें छोटे-छोटे लाभ होने पर अभिमान नहीं करना चाहिए। पूज्य आचार्य समन्तभद्र महाराज ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में मद के 8 भेद गिनाए हैं।

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपोवपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयः॥25॥

इस प्रकार अभिमान, स्वाभिमान को समाप्त करता है, आत्मा का पतन करता है। जब हमारा बाहर में उपयोग होता है तो अभिमान जागृत होता है और आत्मा सुप्त हो जाती है। अभिमान वास्तविकता में कुछ नहीं हमारी तुच्छता है। जब व्यक्ति को ज्ञान का अभिमान होता है तो एक-दूसरे को कुछ भी बताना नहीं, सिखाना नहीं, समझाना नहीं क्योंकि एक-दूसरे को दिखाएँगे तो उसके ज्ञान में वृद्धि हो जाएगी, उसकी डिग्री अच्छी आएगी हमारी नहीं, उसकी पूछ अधिक होगी हमारी नहीं और कभी-कभी दूसरा हमसे आगे न निकल जाए इसके लिए एक दूसरे की किताब छुपा देते, लाइट बन्द कर देते, उसको अन्य कार्य में लगा देते जिससे वह आगे न बढ़ पाए। जबकि ज्ञान तो क्षायोपशमिक होता है वह सदैव एक सा नहीं रहता, घटता-बढ़ता रहता है और फिर अभिमान, ज्ञान के क्षयोपशम को क्षीण करता है इसलिए ज्ञान, कला, कुल आदि पर अभिमान नहीं करना चाहिए बल्कि सहज, सरल, नम्र होना चाहिए। क्योंकि सरल परिणामी का ही कल्याण होता है।

बन्धुओ! आचार्य महाराज कह रहे हैं जिसका जितना गहरा अभिमान होगा उसे छोटी-छोटी चोटे उतने गहरे घाव करती हैं। परम पूज्य आचार्य श्री सन्मति सागर जी महाराज भी कहते है—कि हमेशा-हमेशा सिंहासन पर नहीं बैठना चाहिए, जमीन पर भी बैठना चाहिए। क्योंकि यदि कभी जमीन पर बैठने का अवसर आ जाए तो हीनता का भाव उत्पन्न न हो, चोट न लगे, परिणामों में खेद-खिन्नता न हो और जो नीचे बैठा है उसे कहीं भी बैठा दो वह आसानी से बैठ जाएगा। इसलिए सदैव अपनी प्रशंसा में कान बन्द रखना तथा निंदा में खोलना चाहिए और ऐसा अभ्यास होना चाहिए ताकि परिस्थिति में सन्तुलन बना सके और जिसने निंदा में सन्तुलन बना लिया है वह कहीं भी चला जाएगा उसकी जीत होगी। लेकिन जो प्रशंसा में फुब्बारा बन गया फिर यदि उसकी निंदा हुई तो नींद नहीं आएगी, उसे हर क्रिया में आकुलता होगी। इसलिए सुख में नहीं

दुख में सन्तुलन बनाना चाहिए, सुविधा में नहीं दुविधा में सन्तुलन बनाना चाहिए।

अष्टपाहुड के मोक्षपाहुड में आचार्य कुंदकुंद महाराज लिखते हैं कि—

सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहाबलं जोई अप्पा दुक्खेहि भावए॥62॥

अर्थात् सुख में भावित ज्ञान, तप, त्याग, साधना दुख में विनष्ट हो जाती है। इसलिये योगी को यथा शक्ति आत्मा को दुख से भाविक करना चाहिए जैसे जो व्यक्ति पंखा चला कर सामायिक करते हैं तो कहते हैं महाराज सामायिक में अच्छा मन लगता है लेकिन कब तक जब तक कि लाईट है और लाईट के जाते ही उनकी सामायिक समाप्त हो जाएगी। लेकिन जिसने बिना पंखे के सामायिक करने के संस्कार बनाए हैं तो उनकी साधना कभी समाप्त नहीं होती है और फिर दोनों को एक स्थान पर सामायिक करने बैठाएँ तो जो सुविधा में रहा उसे आकुलता, परेशानी, कष्ट, तकलीफ अधिक होगी दूसरे को नहीं होगी। इस प्रकार अनुकूलता में जीने वाले साधक ने मोक्षमार्ग जो स्वाधीनता का मार्ग है इसे जानबूझकर पराधीन बना लिया। यदि वह स्वाधीन होने के लिए नित नए-नए विचार/चिन्तन करता तो सच्ची संवर-निर्जरा होती, परिणाम पवित्र रहते और प्रतिकूलता में भी अनुकूलता के दर्शन कर लेता। लेकिन जो साधु अमुक-अमुक व्यवस्था चाहते हैं असुविधा के आने पर उनकी साधना का अन्तिम संस्कार हो जाएगा या कोई कहे हमारी आदत नहीं है। तब पूज्य आचार्य महाराज कहते हैं—कि हे साधक! आज जो आप अनेक प्रकार की साधना कर रहे हैं उसकी आपको पहले आदत नहीं थी फिर भी आपने आदत बनाई अब जो शेष साधना है उसे भी प्राप्त करेंगे ऐसा अभ्यास विचार करना चाहिए क्योंकि जो ऐसा अभ्यास करते हैं वे धन्य हैं जिसके कारण उनके अन्दर अभिमान की भूमिका नहीं बन पाती है।

लेकिन जो मानव सम्पति, पुत्र और स्त्री आदि पदार्थ के विषय में अभिमान करते हैं उसमें आसक्त होकर मोह करते हैं वे किस प्रकार से है उसका उदाहरण देते हुए आचार्य भगवन् कह रहे हैं—

हन्ति व्योम स मुष्टिनाथ सरितं शुष्कां तरत्याकुलः,
तृष्णार्तोऽथ मरीचिकाः पिबति च प्रायः प्रमत्तो भवन्।
प्रोत्तुङ्गाचलचूलिकागत मरुत्प्रेङ्खत्प्रदीपोपमैः,
यः सम्पत्सुतकामिनी प्रभृतिभिः कुर्यान्मदं मानवः॥43॥

अर्थ—सम्पत्ति, पुत्र और स्त्री आदि पदार्थ ऊँचे पर्वत के शिखर पर स्थित व वायु से चलायमान दीपक के समान शीघ्र ही नाश को प्राप्त होने वाले हैं। फिर भी जो मनुष्य उनके विषय में स्थिरता का अभिमान करता है वह मानो मुट्ठी से आकाश को नष्ट करता है अथवा व्याकुल होकर सूखी (जल से रहित) नदी को तैरता है अथवा प्यास से पीड़ित होकर प्रमादयुक्त होता हुआ बालू को पीता है।

हे आत्मन्! आचार्य महाराज कह रहे हैं कि आकाश को मुट्ठी से पीटना/ताड़ित करना/व्यर्थ है क्योंकि आकाश अमूर्त है और क्या उसको पीटा जा सकता है? और आपके पीटने से क्या वह पिटेगा? अर्थात् न पीटा जा सकता है और न वह पिट सकता है फिर भी आकाश को पीटने का प्रयास किया जाए तो मूर्खता है, अज्ञानता है। क्योंकि मूर्त वस्तु को पीटा जा सकता है अमूर्त को नहीं। एक बार एक व्यक्ति को रास्ते में पत्थर की ठोकर लगी जिससे उसे गुस्सा आया तो उसने दो घूँसे उस पत्थर को मार दिए जिससे अभी तक उसका पैर टूटा था अब हाथ भी टूट गया। वह डॉ. के पास पहुँचा। डॉ. ने पूछा—क्या हुआ? उसने कहा—डॉ. साब रास्ते में पत्थर की ठोकर लगी तो मुझे गुस्सा आया जिससे मैंने उस पत्थर को दो घूँसे मार दिए जिससे पैर के साथ-साथ हाथ में भी चोट आ गई। डॉ. ने कहा—आप तो पूरे कवि कालीदास के भाई हो। क्योंकि कवि कालीदास का भाई वृक्ष की जिस डाल पर बैठा था उसी को काट रहा था। इसी प्रकार आकाश को पीटना मूर्खता है।

बन्धुओं! आचार्य महाराज इधर दूसरा उदाहरण दे रहे हैं कि शुष्क सरिता में तैरना यानी कोई कहे कि मैं इस शुष्क सरिता को तैरकर के पार कर सकता हूँ तो यह उसकी मूर्खता की ही बात है और तीसरा उदाहरण दे रहे हैं कि प्यास से पीड़ित होकर प्रमादयुक्त होकर बालुका (मारीचिका) का पान करना यानि कोई व्यक्ति जो प्यास से व्याकुल है और रेतीले स्थान में जहाँ सूर्य की किरणों से रेत चमक रही है कहे मैं इसे पीऊँगा तो यह उसकी मूर्खता/अज्ञानता है/उसी प्रकार किसी पर्वत की उत्तंग चूलिका पर जलता हुआ दीपक रखा हो, जहाँ चारों तरफ से वायु चल रही हो फिर उस दीपक के विषय में कल्पना करें कि यह दीपक बुझेगा नहीं तो मोह के कारण ऐसे परिणाम होते हैं लेकिन वह शीघ्र ही बुझ जाता है ठीक ऐसे ही अज्ञानी पुरुष के स्त्री और पुत्र आदि के विषय अचलता के परिणाम होते हैं लेकिन वे चलायमान दीपक की तरह शाश्वत नहीं रहते।

बन्धुओ! आज तुम जिस स्त्री, पुत्र, सम्पत्ति को जो तुम्हारे नहीं है जिनका तुम्हारी आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है लेकिन मोह, आसक्ति के कारण उनमें अभिमान करते हो यह हमारी मूर्खता है। अतः आपने जिसे त्याग दिया है छोड़ दिया है यदि फिर भी वे दिखे, उनसे रिश्ता बना रहे यह हमारी मूर्खता है, धर्म के साथ छल है, धर्म के साथ धोखा कर रहे हैं। इसलिए हमारा त्याग बाहर से जितना हो उससे अधिक अंतरंग से होना चाहिए और जो अंतरंग का त्याग है वह ज्ञानी का त्याग है, मोक्षमार्गी का त्याग है जबकि अज्ञानी बाहर से त्याग करता अंतरंग से नहीं। अज्ञानी का त्याग बालक के आलू के त्याग की तरह है जैसे बालक आलू के त्याग के पश्चात् दिन गिनना प्रारम्भ करता है और विचार करता है कि अमुक तारीख आएगी तो बाजार जाएँगे आलू की सभी सामग्री को खायेंगे। वह बालक तो न समझ है लेकिन आप तो समझदार हैं और आप के अन्दर यदि ऐसे विचार आ जाए तो, एक प्रकार की विडम्बना है।

बंधुओ! इसलिये भगवान महावीर स्वामी कहते हैं कि जिसे आपने छोड़ा उसे मुख मोड़कर नहीं देखना चाहिए तभी आपका त्याग, त्याग है। क्योंकि जब भगवान महावीर स्वामी दीक्षा के लिए बढ़े तो पीछे मुख मोड़कर नहीं देखा लेकिन पुष्पढाल जिन्हें दीक्षा लेने के बाद भी 12 वर्ष

तक पत्नि का ध्यान रहा कि वह कैसे रह रही होगी आदि-आदि अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प रहे। वारिषेण को जब उनके परिणामों का पता चला तो उन्होंने पुष्पढाल को संबोधा और उन्हें राजमहल में ले जाकर कहा हे पुष्पढाल! ये खड़ी हैं हमारी पत्नियाँ आप जिसे चाहे उसे चयन कर ले। साथ ही पुष्पढाल की पत्नि को भी खड़ा किया गया था। इतना सुनते ही पुष्पढाल का ज्ञान जगा, मोह टूटा कि ओहो, धिक्कार हो हमें और धन्य हैं आप कि आपको इतनी सुन्दर-सुन्दर पत्नियों से वैराग्य हो गया और दीक्षा ले ली फिर भी आपको विचार नहीं आया, और मैं कितना अज्ञानी रहा कि मैंने 12 वर्ष ऐसे ही बिता दिए, आज तक मैंने जो क्रिया की वह सब बाहर से की। इस प्रकार पुष्पढाल ने प्रतिबोध को प्राप्त हो कर पुनः दीक्षा ग्रहण की, पश्चात् उनका स्मरण नहीं किया, स्मृति में नहीं आने दिया। इस प्रकार हमें भी अपनी आत्मा को जाग्रत कर, आत्मा के स्वभाव की ओर कदम बढ़ाना चाहिए। **इसी भावना के साथ—**

महावीर भगवान की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—18.12.09
वार—शुक्रवार

बुद्धि और विद्या

वरं बुद्धिर्न सा विद्या धीर्गरीयसी।
बुद्धि हीना विनश्यन्ति तथा ते सिंहकारकाः।। ***सु.स.750।।***

अर्थ- बुद्धि अच्छी है वह विद्या अच्छी नहीं है। विद्या की अपेक्षा बुद्धि श्रेष्ठ होती है। जिस प्रकार सिंह को बनाने वाले वे विद्वान नष्ट हो गए थे उसी प्रकार बुद्धिहीन मनुष्य नष्ट हो जाते है।

चित्तेन कर्मणा त्व बद्धो यादि बहयेत त्वया तदतः।
प्रातिबन्दीकृतमात्मन् मोचयति त्वां न संदेहः।। ***37 पं.पं.वि.।।***

अर्थ- हे आत्मन् ! तुम मनके द्वारा कर्म से बांधे गए हो। यदि तुम उस मन को बांध देते हो अर्थात् उसे वश में कर लेते हो तो इससे वह प्रतिबन्दी स्वरूप होकर तुमको छुड़ा देगा, इसमें संदेह नहीं है।

दुर्गुणों का जनक-शोक

शोक की जितनी गहराई में जाता है उसका दुख उतना गहरा होता है। शोक से चतुवर्ग यानि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ नष्ट हो जाते हैं, मति विभ्रमता (विपरीतता) को प्राप्त हो जाती है।

भव्य बन्धुओ! संसार में परिवार का जो सम्बन्ध रहता है वह क्षणभंगुर होता है, चार दिन की चाँदनी की तरह होता है, क्षणिक एवं नाशवान होता है इसे दृष्टांत के द्वारा समझाया। और जो संसार के इस भौतिक सम्बन्ध को समझकर उनमें मोह का त्याग कर मोक्षमार्ग पर अपने कदम बढ़ाता है कि मुझे मोक्ष प्राप्त करना है तो वह ज्ञानी कहलाता है और जो ऐसा नहीं करता वह अज्ञानी कहलाता हैं।

इसी बात को परम हितैषी पूज्य आचार्य भगवन् कह रहे हैं—

लक्ष्मीं व्याधमृगीमतीव चपलामाश्रित्य भूपा मृगाः
पुत्रादीनपरान् मृगानतिरुषा निघ्नन्ति सेर्ष्यं किल।
सज्जीभूतघनापदुन्नत धनुः संलग्न संहृच्छरं,
नो पश्यन्ति समीप मागतमपि क्रुद्धं यमं लुब्धकम्॥44॥

अर्थ—राजा रूपी मृग अत्यन्त चंचल ऐसी लक्ष्मी रूपी व्याध्र की हिरणी का आश्रय लेकर ईर्ष्या युक्त होते हुए अतिशय क्रोध से पुत्रादिरूपी दूसरे मृगों का घात करते हैं। वे जिस यमरूपी व्याघ्र ने बहुत सी आपत्तियों रूपी धनुष को सुसज्जित करके उसके ऊपर संहार करने वाले बाण को रख लिया है तथा जो अपने समीप में आ चुका है ऐसे उस क्रोध को प्राप्त हुए यमरूपी व्याध्र को भी नहीं देखते हैं।

भव्य मनीषियो! जैसे जंगलों में एक हिरण, सिंह के द्वारा हिरणी के पकड़े जाने पर ईर्ष्या या कषायवश दूसरे हिरणों का घात करता है परन्तु भूल जाता है। या उस ओर नहीं देखता है जहाँ कोई भील उसका वध करने के लिए धनुष-बाण लेकर उसकी ओर दौड़ता हुआ समीप में आ चुका है। ठीक उसी प्रकार राजा रूपी मृग अत्यन्त चंचल ऐसी लक्ष्मी रूपी व्याघ्र के द्वारा हिरणी के पकड़े जाने पर ईर्ष्यायुक्त होते हुए अतिशय क्रोध से पुत्रादिरूपी दूसरे मृगों का घात करता है तथा जिस यमरूपी व्याध्र ने बहुत सी आपत्तियों रूपी धनुष को सुसज्जित करके उसके ऊपर संहार करने के लिये रख लिया है तथा जो अपने समीप में आ चुका है ऐसे उस क्रोध को प्राप्त हुए यमरूपी व्याघ्र को नहीं देखता है।

संसार में बड़े-बड़े राजा, सम्राट, चक्रवर्ती हुए जिन्होंने अज्ञानता या मोह के कारण दूसरों पर आक्रमण किया पर यह भूल गए कि कोई मेरे ऊपर भी आक्रमण करेगा। इस प्रकार जो युद्ध भूमि से दूसरों को परास्त करके लौटता है तो आनन्द व खुशियाँ मनाई जाती है लेकिन जिसके विषय में जो आनन्द मना रहे हैं वे यह नहीं देख रहे हैं कि मुझे भी एक दिन यम के घाट उतरना पड़ेगा, यमराज धनुष पर बाण रखे खड़ा है और आयु का अंत होते ही वह मुझे उठा लेगा।

बन्धुओ! यमराज के विषय में बहुत भ्रान्ति है हिन्दु सम्प्रदाय में मान्यता है कि ब्रह्मा के दरबार में दूत रहता है जब किसी की आयु का अंत आता है तो उसे उस व्यक्ति के पास भेजा जाता है कि उसे उठा लाओ। और वह दूत आकर के उसे उठा ले जाता है तथा ब्रह्मा के सामने खड़ा करता है फिर उसकी पेशी होती है कि तुमने अच्छा किया या बुरा किया और उसके कार्य के अनुसार उसे दण्डित किया जाता है। यदि अच्छा किया है तो कहा जाता स्वर्ग जाओ और यदि बुरा किया तो कहा जाता है नरक जाओ। इस प्रकार यह सारी व्यवस्था ब्रह्मा करता है। लेकिन जैन धर्म में हमारे कर्म ही यमराज हैं और हमारी अच्छी बुरी करनी ब्रह्मा है और जो जैसे कर्म करता है उसी प्रकार के कर्म का आस्रव-बंध होता है तथा उस कर्म के समय आपके कषाय की स्थिति कैसी है वैसी ही स्थिति-अनुभाग बंध होगा। क्योंकि कषाय को काम स्थिति-अनुभाग बंध को प्रदान करना है। स्थिति यानि कर्म के रहने की जो अवधि है तथा अनुभाग यानि सुख-दुख का संवेदन होना, अनुभव होना, रसास्वादन होना।

बंधुओ! कभी-कभी व्यक्ति के जीवन में कर्मो का अनुभाग कम तथा स्थिति अधिक होती है तथा कभी-कभी अनुभाग अधिक तथा स्थिति कम होती है। जैसे किसी एक व्यक्ति को कहा जाये कि आपको 1 घंटे छाया में खड़े रहना तथा दूसरे से कहा आधा घंटे धूप में खड़े रहना है। तथा कभी-कभी ऐसा भी होता है स्थिति समान रहती है और अनुभाग में अंतर होता है। जैसे एक व्यक्ति से कहा जाये कि तुम्हें 1 घंटा छाया में, दूसरे से कहा तुम्हें एक घंटा धूप में तथा तीसरे से कहा तुम्हें 1 घंटा धूप में घुटनों के बल खड़ा होना है तो तीनों की स्थिति (समय) समान है लेकिन अनुभाग (संवेदनाओं) में अंतर है। इस प्रकार यह जीव परिणामों के द्वारा कषायों की तारतम्यता के द्वारा ऐसे-ऐसे कर्मो को निरन्तर बाँधता रहता है और यह परम्परा निरन्तर चलती रहती है लेकिन जो ज्ञानी होते हैं वे इस चिंतन में उतरते हैं और ज्ञान को प्राप्त होकर संभल जाते हैं कि हमें कषाय नहीं करना अन्यथा स्थिति-अनुभाग बंध बढ़ेगा। और वह लड़ाई-झगड़ा हो जाने पर बात को जल्दी से जल्दी समाप्त कर देता है। (ऐसे व्यक्ति की कषायें ज्यादा नहीं होती तो स्थिति-अनुभाग बंध भी ज्यादा नहीं होता) वह सोचता है जिसने हमें कष्ट दिया है उसको नियम से उसका फल मिलेगा फिर हम क्यों कषाय करके कर्म बाँधे। जबकि अज्ञानी को कषाय के उदय में होश नहीं रहता और वह निरन्तर कषायों के द्वारा कर्म बाँधता रहता है चाहे वह किसी का कुछ कर पाये या नहीं कर पाये।

बंधुओ! ऐसे समय में ज्ञानी तत्त्व चिन्तन में उपयोग लगाता है और अशुभ परिणामों तथा राग-द्वेष से बचने का प्रयास करता है जिससे उसकी परिणति में अन्तर आता है और यही भेद विज्ञान है जिसमें विचार होता है कि मुझे ये नहीं करना चाहिए यह तो मैं अपने पैर पर ही कुल्हाड़ी पटक रहा हूँ जिसका फल मुझे दुख रूप में भोगना पड़ेगा। ऐसे तत्त्वज्ञानी को जो जाग्रत है इशारा

ही काफी होता है वह इशारे से ही संभल जाता है। गुरुजन हर शिष्य को एक ही लाठी से नहीं हाँकते (भगाते) क्यों कि सभी शिष्य एक से नहीं होते जो इशारे से मानते हैं उनको इशारे से समझाते और जो इशारे से नहीं मानते उनसे कहना पड़ता है तथा जो कहने पर भी नहीं मानते उन्हें डाँटना पड़ता है, दण्डित करना पड़ता है। शास्त्रों में कहा है कि कुलकरों के समय 3 प्रकार के दण्ड की व्यवस्था थी, हा, मा, धिक्। अगर किसी व्यक्ति ने गलत किया तो कहा जाता था 'हा' यानि आपने ऐसा किया आप ऐसा करते हो तो वह व्यक्ति सावधान होता था और स्वीकार करता था कि मैं आगे ऐसी गल्ति नहीं करूँगा और ऐसा संभलता था कि आगे गल्ति नहीं करता था। बाद में धीरे-धीरे समय आगे बढ़ा तो 'मा' दण्ड व्यवस्था आई जिसमें संकेत दिया गया कि ऐसा अब मत करना। सच तो यही है कि व्यक्ति को 'हा' में ही संभलना चाहिए था और यदि आपने 'हा' के इशारे को नहीं समझा तो 'मा' कहा कि अब तो सावधान हो जाओ। लेकिन जब समय बीतने पर 'मा' में भी नहीं संभले तो 'धिक्' कहना पड़ा कि तुम्हें धिक्कार हो जो तुम इतने सावधान नहीं कि अपनी गल्ति को सुधार सको और दूसरों को कहना पड़ा। इसके पश्चात् तो अनेक दण्ड परम्परायें प्रारम्भ हुई। पुराने समय में वैसे कितना भी खर्च कर दो लेकिन दण्ड के नाम पर एक आना भी बुरा माना जाता था कि व्यक्ति अच्छा नहीं है। आचार्यगण भी अपने शिष्यों को दण्ड नहीं देना चाहते लेकिन दण्ड देना पड़ता है कि आप असावधान है जो आपने गुरु के उपदेश को स्वीकार नहीं किया, स्मृति में अवधारणा नहीं किया इसलिए आप गल्ति करते रहते हैं। पुलिस विभाग में भी किन्हीं व्यक्ति के द्वारा बार-बार गल्ति करने पर हिट लिस्ट तैयार होती है कि जब कहीं भी चोरी होती है तो उन लोगों को बुलाया जाता है और पूछा जाता है कि आपने अमुक स्थान पर चोरी की। तो वह मना करता है लेकिन फिर भी उसे प्रसादी (मार) मिल ही जाती है वह बदनाम हो जाता है। इसलिए निरन्तर सावधान रहना चाहिए कि किसी को शिकायत करने का अवसर ही न मिले। जिससे धीरे-धीरे उसका विश्वास जमने लगता है फिर उसे कभी दण्डित होते हुए नहीं देखा जाता है। लेकिन जो व्यक्ति निरन्तर अपराध करते जाते हैं वे दृष्टि से उतर जाते हैं। आज व्यक्ति प्रायः दूसरों को देखता कि उसने ऐसा किया उसने ऐसा किया आदि लेकिन अपनी दशा नहीं देखता मैं भी कैसे-कैसे अपराध करता हूँ। आज व्यक्ति को इतना समझ में आ जाए कि जिसको मारा है एक दिन तुम भी ऐसे ही मारे जाओगे तो वह आत्मा कल्याण के रास्ते को प्रशस्त करती है। अतः अपने जीवन में इस सत्य का निरन्तर विचार करना चाहिए क्योंकि विचार करने से उन्नति होती है और जो विचार नहीं करते उनका दुर्लभ जीवन व्यर्थ में चला जाता है।

पूज्य आचार्य महाराज आगे पुनः शोक करने के परिणामों को बताते हुए कह रहे हैं–

मृत्योर्गोचरमागते निजजने मोहेन यः शोककृत्,
नो गन्धोऽपि गुणस्यतस्य बहवो दोषाः पुनर्निश्चितम्।
दुःखं वर्धत एव नश्यति चतुर्वर्गो मतेर्विभ्रमः,
पापं रुकूज मृतिश्च दुर्गति रथ स्याद्दीर्घ संसारिता॥45॥

अर्थ–अपने किसी सम्बन्धी पुरुष का मरण हो जाने पर जो अज्ञान के वश होकर शोक करता है उसके पास गुण की गंध (लेश मात्र) भी नहीं है, परन्तु दोष उसके साथ बहुत से

हैं यह निश्चित है। इस शोक से इसका दुख अधिक बढ़ता है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों पुरुषर्थ नष्ट होते हैं; बुद्धि में विपरीतता आती है तथा पाप (असाता वेदनीय) कर्म का बंध भी होता है, रोग उत्पन्न होता है तथा अन्त में मरण को प्राप्त होकर वह नरकादि दुर्गति को प्राप्त होता है। इस प्रकार उसका संसार परिभ्रमण लम्बा हो जाता है।

हे भव्य आत्मन्! जो अपने कुटुम्ब-परिवार के या इष्ट लोगों के मरण हो जाने पर शोक करते हैं उनके पास गुणों की गंध भी नहीं आ सकती है अर्थात् उसके पास लेश मात्र भी गुण नहीं है। क्योंकि आत्मा के गुण अमूर्त हैं मूर्त नहीं। क्योंकि आत्मा पुद्गल नहीं है। और पुद्गल के गुण मूर्त्त हैं अमूर्त नहीं क्योंकि पुद्गल मूर्त है और मूर्त के गुण मूर्त तथा अमूर्त के गुण अमूर्त होते हैं साथ ही मूर्त के गुण अमूर्त में नहीं और अमूर्त के गुण मूर्त में नहीं आ सकते हैं। आत्मा अमूर्त तथा पुद्गल मूर्त है इसलिए आत्मा के गुण आत्मा में, तथा शरीर (पुद्गल) के गुण शरीर में रहते हैं। तथा पुद्गल के गुणों को तो देख सकते लेकिन आत्मा के गुण को नहीं देख सकते। ऐसे पुद्गल के शोक में बैठे व्यक्ति के पास आत्मा के गुण आ नहीं सकते। क्योंकि शोक के कारण व्यक्ति विभिन्न प्रकार की शोक रूप मुद्राओं में बैठा रहता है। और इन मुद्राओं का हमारे जीवन पर तथा दूसरों पर भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए कभी शोक होने पर कभी भी कर्म पर हाथ रख कर नहीं बैठना चाहिए क्योंकि ऐसी मुद्रा में बैठे व्यक्ति को यदि कोई समझाना चाहे तो नहीं समझाया जा सकता है। और यदि कोई उसे समझाने जाए तो उसे समझ में भी नहीं आ सकता, ऐसे व्यक्ति से कोई कुछ पूछना भी नहीं चाहता, बैठना भी नहीं चाहता और जब व्यक्ति ही नहीं बैठ पा रहा तो गुण कैसे बैठ सकते हैं/आ सकते हैं? अर्थात् गुण किञ्चित मात्र भी नहीं आ पाते बल्कि निश्चित है कि बहुत सारे दोष उत्पन्न होते रहेंगे, दोष आ जाएँगे, अपराध बनते रहेंगे और फिर जो मोक्षमार्ग के कारण भूत सामग्री थी उसका भी सदुपयोग नहीं कर पाना इससे बड़ा दोष क्या होगा? यदि हमारे अन्दर गुणों को धारण करने का उत्साह नहीं बना तो दोष वृद्धि को प्राप्त होते हैं। क्योंकि दोष एक साथ सैना सहित आते हैं, बिना बुलाए शीघ्रता से आते हैं। और गुणों को पाने के लिए मेहनत करना पड़ती है इसलिए मुश्किल से आते हैं। साथ ही शोक से बढ़ता हुआ दुख होता है क्योंकि जो **शोक की जितनी गहराई में जाता है उसका दुख उतना गहरा होता है। शोक से चतुवर्ग यानि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ नष्ट हो जाते हैं, मति विभ्रमता (विपरीतता) को प्राप्त हो जाती है।**

बन्धुओ! संसार में इससे बड़ा भ्रम क्या हो सकता है कि जिसमें यह पता भी नहीं रहता कि किससे क्या पूछना? जब सीता का हरण हुआ तो राम वृक्ष से पूछते 'हे वृक्षराज! क्या तुमने मेरी सीता देखी? इस प्रकार पत्थरों से, फूलों से, पत्तों से, फलों से पूछते, लेकिन बेचारे वृक्ष क्या बतायेंगे। फिर भी शोक के कारण व्यक्ति के अन्दर ऐसा भ्रम खड़ा हो जाता है कि ये बता देंगे, ये बता देंगे या जिसे मैं चाहता हूँ वह व्यक्ति तो सामने खड़ा है वो आ गए आदि। इस प्रकार शोक के कारण वह सब कुछ भूल जाता है। और पाप कर्मों का निरन्तर आस्रव (असाता वेदनीय) बंध करता है। साथ ही निरन्तर शोकाकुल होने से व्यक्ति बीमार हो जाता है कभी-कभी खाना-पीना, सोना नहीं होने से दिमाग खराब हो जाता है, हार्ट फैल हो जाता है और अंत में ऐसे शोक से संतप्त प्राणी मरण को प्राप्त होकर नरकादि दुर्गति को प्राप्त होते हैं और दीर्घ संसार में घूमते हैं।

इसलिए ज्ञानी को निरन्तर ऐसा चिन्तवन करते हुए शोक कभी नहीं करना चाहिए।

आगे पूज्य आचार्य महाराज संसार के स्वरूप का दिग्दर्शन करते हुए कह रहे हैं—

आपन्मय संसारे क्रियते विदुषा किमापदि विषादः।
कस्त्रस्यति लङ्घनतः प्रविधाय चतुष्पथे सदनम्॥46॥

अर्थ—इस आपत्ति स्वरूप संसार में किसी विशेष आपत्ति के प्राप्त होने पर विद्वान पुरुष क्या विषाद करता है? अर्थात् नहीं करता। ठीक है—चौरास्ते में (जहाँ चारों ओर रास्ता जाता है) मकान बनाकर कौन-सा मनुष्य लांघे जाने के भय से दुखी होगा? अर्थात् कोई नहीं होगा।

हे भव्य! संसार आपत्ति-विपत्ति मय है अर्थात् विपत्तियों से भरा है और इस संसार में एक-एक व्यक्ति के साथ इतनी-इतनी विपत्ति लगी हुई है कि जिनका कोई अन्त नहीं है। आचार्य पूज्यपाद महाराज ने भी इष्टोपदेश में बहुत सुन्दर चित्रण किया है कि—

विपदभव पदावर्ते पदिके वाति वाह्यते।
यावत्तावत् भवन्त्यन्याः, प्रचुराः विपदः पुरः॥12॥

अर्थात् इस विपत्तिमय संसार में परिभ्रमण करने वाले जीव की एक विपत्ति दूर होती है (तो दूसरी अनेक प्रकार आकर के खड़ी हो जाती हैं। और यह क्रम चलता ही रहता है।)

बंधुओ! कुछ व्यक्ति हमारे पास आते हैं और कहते हैं महाराज क्या करें एक विपत्ति दूर नहीं हो पाती दूसरी पहले से आकर के खड़ी हो जाती, कुछ समझ में नहीं आता। अब मैं विषाद करूँ तो किस-किस पर करूँ? क्योंकि संसार में व्यक्ति के जीवन में चाहे शुभ हो या अशुभ दोनों प्रकार की विपत्तियाँ आती हैं। इसलिए इस आपत्ति स्वरूप संसार में किसी विशेष आपत्ति के प्राप्त होने पर विद्वान पुरुष क्या विषाद करता है? अर्थात् नहीं करता। क्योंकि जिसने संसार के स्वरूप को समझ लिया है वह अनिष्ट संयोगज आर्त्तध्यान नहीं करेगा।

बन्धुओ! साधुओं को भी इष्ट वियोगज, अनिष्ट संयोगज समाचार मिल सकते हैं कि आपके परिवार में कोई खत्म हो गया तो क्या साधु रोयेंगे, नहीं रोयेंगे बल्कि वो कहेंगे हम तो इस बात को पहले समझते थे इसलिए हम इस रास्ते पर आ गए और फिर संसार का स्वभाव ही ऐसा है जो आया है वो जाएगा कोई जल्दी जाएगा कोई देरी से जाएगा, और समय आने पर कोई बचा भी नहीं सकता। फिर उनका कर्म उनके साथ है इस प्रकार चिन्तन द्वारा अपने परिणामों को सन्तुलित करते हैं समता बनाते हैं। इस प्रकार हम भी ऐसी परिस्थिति में चिन्तन करें कि संसार क्षणभंगुर है जिसमें लोग ऐसे ही चले जाते हैं तथा यह घटना हमें शिक्षा देकर के जाती है तुम्हें भी ऐसे ही एक दिन जाना है इसलिए जो जीवन गया सो गया अब जो शेष बचा है उसमें तत्त्व चिन्तन करें, तत्त्व विचार करें। ठीक है जिसने चौराहे पर (जहाँ से चारों ओर रास्ते हो) मकान बना लिया और विपत्ति जान कर मोल ले ली है कि किसी भी समय गाड़ी आदि के द्वारा घटना घट सकती है इसमें कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि संसार में प्राणियों का वियोग होता ही है इसमें किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

आगे परमोपकारी पूज्य आचार्य महाराज संसारी प्राणी की बुद्धि पर आश्चर्य प्रकट करते हुए कह रहे हैं–

वातूल एब किमु किं ग्रहसंगृहीतो भ्रान्तोऽथ किमु जनः किमथ प्रमत्तः।
जानाति पश्यति शृणोति च जीवितादि विद्युच्चलं तदपि नो कुरुते स्वकार्यम्॥47॥

अर्थ–यह मनुष्य क्या वात रोगी है, क्या भूत-पिशाच आदि से ग्रहण किया गया है, क्या भ्रांति को प्राप्त हुआ है अथवा क्या पागल है? कारण कि वह 'जीवित आदि बिजली के समान चंचल है इस बात को जानता है, देखता है और सुनता भी है; तो भी अपने कार्य (आत्महित) को नहीं करता है।

हे भव्य प्राणी! जीवन क्षणभंगुर है, चंचल स्वभाव वाला है इसलिये संसार में जिस व्यक्ति का जन्म हुआ है उसका मरण अवश्य होगा। उसे कोई रोक नहीं सकता और यह प्रकृति की एक सहज व्यवस्था है संसार का अकाट्य सिद्धान्त है फिर भी यदि कोई शोक करता है तो आचार्य भगवन् कहते हैं कि क्या वह किसी वात रोग से पीड़ित है? क्योंकि वात रोगी को झटके-झटके से आते हैं जिससे उसे कुछ भी समझ में नहीं आता, होश नहीं रहता, और वह सहसा निर्णय नहीं ले पाता या उसे कोई भूत-पिशाच आदि लग गए हैं क्योंकि ऐसे व्यक्ति को समझाना आसान नहीं होता। या क्या किसी भ्रांति में भटक रहा है क्योंकि भ्रांति के खड़े होने पर ठूँठ को, पत्थर को, वृक्ष आदि को आदमी समझने लगता है अर्थात् किसी को कुछ भी समझने लगता है वह विवेक को खो देता है, सही गलत को भूल जाता है उसका होश-हवाश खो जाता है। कारण कि वह इस बात को जानता है, देखता है, सुनता है कि जीवन बिजली की तरह क्षणभंगुर है फिर भी वह अपने कार्य को (आत्महित) नहीं कर पाता क्योंकि उसे संसार के चंचल स्वभाव का विश्वास नहीं होता।

बंधुओ! अजितनाथ भगवान जिन्हें आकाश में तारे को टूटते देख कर वैराग्य हो गया और वे विचार में डूब गए कि हमारा जीवन भी ऐसा ही क्षणभंगुर है, विनाशीक है, चार दिन की चाँदनी की तरह है मुझे भी एक दिन ऐसे समाप्त होना पड़ेगा, चूँकि महापुरुष तत्त्व चिन्तक एवं वैरागी होते हैं और वह तत्त्व ज्ञान उनके जीवन में उतरता जाता है जिससे वे अपने जीवन को प्रशस्त मार्ग पर लगा लेते हैं।

लेकिन जो ऐसा जान कर, आँखों से क्षणभंगुरता को देखकर, सुनकर आत्महित के कार्य को नहीं करता है वह अज्ञानी/मोही है। अतः हम ऐसा देखकर, सुनकर, जान कर आत्म साधना के रास्ते को प्रशस्त करें तो हमारा कल्याण हो जाएगा। **इसी भावना के साथ–**

महावीर भगवान की जय!

स्थान–हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक–19.12.09
वार–शनिवार

मृत्युबेला में व्यर्थ प्रयास

मृत्यु तो व्यक्ति को आयु कर्म के अनुसार प्राप्त होती है अर्थात् जितने समय की आयु होती है उतने समय तक व्यक्ति जीवित रहता है और आयु के समाप्त होने पर न एक सेकेण्ड बढ़ाया जा सकता है न एक सेकेण्ड घटाया जा सकता है।

बंधुओ! परमोपकारी, परम आराध्य पूज्य आचार्य भगवन् पद्मनंदि पंचविंशतिः ग्रंथ में कह रहे हैं कि संसार में कोई व्यक्ति अजर-अमर नहीं है। जो जन्म लेता है उसे मरण को प्राप्त करना पड़ता है और इस प्रकार जन्म के बाद मरण और मरण के बाद जन्म यह संसार की एक परम्परा है। लेकिन जो जन्म लेकर अपने जीवन में अच्छे पावन-पुनीत काम करता है वह मरकर भी अमर हो जाता है स्वर्गों में देव होता है और यहाँ भी लोग उसके गुणगान गाते हैं। परन्तु जो अच्छे काम नहीं करते हैं भगवत् भक्ति, सन्तों की वाणी का श्रवण आदि नहीं करते वे जन्म लेकर भी मृत की तरह हैं, जीते-जागते मुर्दे हैं—मृत होने के पहले ही वे मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं और अंत में दुर्गति के पात्र होते हैं इसलिए अपने इस क्षणभंगुर जीवन में अच्छे काम कर लेना यही समझदारी है। तथा दूसरों को भी उसके जीवन का अंत आने के पहले सावधान कर देना चाहिए ताकि वह भी कल्याण कर सके। लेकिन यदि आपने आयु का अंत होने के बाद चर्चा की तो वह चर्चा व्यर्थ होगी। इसी बात को आचार्य भगवन् कह रहे हैं।

दत्तं नौषधमस्य नैव कथितः कस्याप्ययं मन्त्रिणो,
नो कुर्याच्छुचमेवमुन्नतमतिर्लोकान्तरस्थे निजे।
यत्ना यान्ति यतोऽङ्गिनः शिथिलतां सर्वे मृतेः संनिधौ,
बन्धाश्चर्मविनिर्मिताः परिलसद्वर्षाम्बुसिक्ता इव॥48॥

अर्थ—किसी प्रियजन के मरण को प्राप्त होने पर विवेकी मनुष्य 'इसको औषधि नहीं दी गई, अथवा इसके विषय में किसी मांत्रिक के लिए नहीं कहा' गया इस प्रकार से शोक को नहीं करता है। कारण कि मृत्यु के निकट आने पर प्राणियों के सभी प्रयत्न इस प्रकार शिथिलता को प्राप्त होते हैं जिस प्रकार कि चमड़े से बनाए गए बन्धन वर्षा के जल में भीगकर शिथिल हो जाते हैं। अर्थात् मृत्यु से बचने के लिए किया जाने वाला प्रयत्न कभी किसी का सफल नहीं होता है।

हे भव्य प्राणी। संसार में अज्ञानी प्राणी प्रायः किसी की मृत्यु के पश्चात् चर्चा करते हैं कि इलाज नहीं कराया इसलिए अमुक की मृत्यु हो गई। वह यह नहीं जानता कि जब आयु का अंत समय आ जाता है तो औषधियाँ भी नहीं बचा सकती। वैद्य और डॉ. भी कह देते हैं कि हर रोग का इलाज हो सकता है लेकिन मृत्यु का इलाज नहीं हो सकता। क्योंकि **मृत्यु तो व्यक्ति को आयु कर्म के अनुसार प्राप्त होती है अर्थात् जितने समय की आयु होती है उतने समय तक व्यक्ति जीवित रहता है और आयु के समाप्त होने पर न एक सेकेण्ड बढ़ाया जा सकता है न एक सेकेण्ड घटाया जा सकता है।** जबकि अज्ञानी व्यक्ति रागद्वेष के कारण अंगुली उठाता है, व्यर्थ की बातें करता है। तब आचार्य महाराज कहते हैं कि तुम्हारा कार्य के पहले सोचना तथा बोलना ठीक था। अब तुम्हारा बोलना व्यर्थ है, नारि मूर्खता है क्योंकि समय के बाद बोलने से काम बिगड़ता है तथा समय निकल जाने या व्यक्ति की मृत्यु के बाद औषधी, डॉ. वैद्य की कोई कीमत नहीं होती है, इसलिये उसकी चर्चा भी व्यर्थ होती है तथा उस चर्चा से कुछ लाभ भी नहीं होता है फिर भी यदि चर्चा की जाए तो वह झगड़ा कराएगी, राग-द्वेष, विघटन को कराएगी, टेन्सन को बढ़ाएगी। इसलिए यदि सलाह देना है तो समय के पहले दे, समय के बाद तो मौन लेना सार्थक है क्योंकि ज्ञानी व्यक्ति समय के पहले या कार्य के पहले बोलता है सावधान होता है। अन्यथा मृत्यु के पश्चात् भावना भाता कि वह तो चला गया है लेकिन उसे सद्गति प्राप्त हो, जहाँ भी जाए अच्छे संस्कारों को पाकर अपनी आत्मा का कल्याण करें। यही शान्ति का श्रेष्ठतम तरीका है।

बन्धुओ! इसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् मंत्र की चर्चा करना भी व्यर्थ हैं। यदि कोई कहे कि उसे महामंत्र सुना देते तो शायद बच जाता, कितने कठोर हैं ये जो उसे भगवान का नाम नहीं सुना पाए। इस प्रकार की चर्चा मृत्यु के पश्चात् मायने नहीं रखती, एक मात्र बकवाद है, फिजूल की है। जैसे कभी-कभी कोई व्यक्ति कार्य करने के बाद हमसे पूछने आते हैं कि महाराज काम करे या नहीं। और यदि पूछा जाए कि काम शुरू हो गया क्या? वह कहे—हाँ, महाराज पूरा हो गया। तब महाराज कहेंगे कि फिर आपने पूछा क्यों? यह तो आपका छल-कपट है कि पहले काम पूरा कर लिया फिर पूछने आये, हो सकता है हम मना करना चाहते हो। तो ऐसा व्यक्ति आज्ञा प्रधानी, अनुशासन प्रधानी नहीं कहलाता। इसका तात्पर्य है यह समय के पहले पूछे तो आपका पूछना सार्थक है। कुछ लोग सोचते हैं यदि काम करने के पहले पूछेंगे और मना हो गया तो अच्छा है पहले काम कर लें फिर पूछेंगे। तो आचार्य भगवन् कहते हैं यह आपका गुरु के साथ धोखा है, छल-कपट है। आप सोचते हैं कोई नहीं समझता है लेकिन गुरु सब समझते हैं वे बहुत बड़े होते हैं, हाँ, यदि छोटे होते तो सोचते कि नहीं समझ पाएँगे।

एक बार जब श्री कृष्ण और सुदामा छोटे-छोटे थे गुरुकुल में अध्ययन करते थे उनके गुरु ने उनकी प्रज्ञा की परीक्षा हेतु श्रीफल दिया और कहा इसे ऐसे स्थान पर जाकर फोड़ना है जहाँ कोई ना हो और कोई देखे ना। लेकिन श्री कृष्ण को अपने पास बैठाया कि आप तो परीक्षा में पास हो जाएँगे लेकिन सुदामा को परीक्षा देने के लिए कहा। सभी शिष्य श्रीफल लेकर विभिन्न स्थानों पर गए कोई गुफा में, कोई पर्वत की चोटी पर, कोई पानी के अन्दर, कोई घनघोर जंगलों

में गए और चारों तरफ देखा कि कोई हमें देख भी नहीं रहा और कोई इधर नहीं है तो श्रीफल फोड़ कर ले आए। लेकिन सुदामा सावत श्रीफल लेकर आ गए। गुरुजी ने पूछा—क्यों सुदामा तुम तो श्रीफल फोड़ कर नहीं लाए और सभी बच्चे फोड़ कर ले आए? सुदामा ने कहा—गुरुदेव! भगवान सबको देखता है क्योंकि उनके केवलज्ञान में सभी झलकते हैं कोई भी छिपा नहीं रह सकता। दूसरा लोक में कोई भी स्थान ऐसा नहीं है जहाँ कोई जीव या अन्य कोई द्रव्य न रहती हो, इसलिए कोई न हो ऐसा कोई स्थान भी नहीं है। गुरुदेव ने कहा—बेटा तुम उत्तीर्ण हो गए शेष सभी अनुत्तीर्ण हो गए। यदि कोई ऐसा विचार करते हैं कि हमारे कार्य को कोई नहीं जान पाया, लेकिन ऐसा नहीं है।

बन्धुओ! घर में बच्चे सोचते हैं पापा मना कर देंगे किसी कार्य के लिए इसलिए पहले काम कर लो लेकिन वह बालक भूल जाता है कि पापा बड़े हैं तो उनका ज्ञान भी बड़ा है वो हमारे नहीं बताने पर भी सब समझ जाते हैं। और काम करने के बाद पूछने वाला आज्ञाशील तथा अनुशासित नहीं कहा जाता है। इसी प्रकार मृत्यु होने के पहले औषधि या मंत्र के विषय में कहते तो तुम्हारा सुनाना ठीक था मृत्यु के बाद में औषधि या मंत्र के विषय में कहने से कोई फायदा नहीं। जैसे कोई व्यक्ति जब भूखा प्यासा था तो पूछा नहीं और जब उसने भोजन-पानी कर लिया फिर आपने भोजन-पानी के विषय में पूछा कि आप भोजन-पानी कर लो तो आपका भोजन-पानी के लिए पूछना व्यर्थ है। जब वह रोगी था तो पूछा नहीं, लेकिन जब वह स्वस्थ हो गया तो औषधि के लिए पूछने लगे। तो आचार्य महाराज कहते हैं यह आपकी मायाचारी है। अज्ञानता है। और अज्ञानी व्यक्ति ही कार्य पूर्ण होने के बाद, विभिन्न प्रकार की चर्चाएँ करता है और उसमें उलझता रहता है, सोचा-विचारी करता है लेकिन ज्ञानी व्यक्ति प्रिय जन के मरण के प्राप्त होने पर भी इसको औषधि नहीं दी गई या इसके विषय में किसी मांत्रिक का प्रयोग नहीं किया गया इस प्रकार से शोक नहीं करता। कारण कि मृत्यु के निकट आने पर प्राणियों के सभी प्रयत्न इस प्रकार शिथिलता को प्राप्त होते हैं जिस प्रकार की चमड़े से बनाए गए बंधन वर्षा के जल से भीग कर शिथिल हो जाते हैं और सड़ कर टूट जाते हैं। इस प्रकार मृत्यु के आने पर किए गए प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं। क्योंकि कोई भी किसी को मृत्यु से नहीं बचा सकता, इसलिए मृत्यु के बाद शोक नहीं करना चाहिए। अच्छा है मृत्यु के पूर्व सावधान हो ऐसा प्रयत्न करें तो हमारा जीवन उज्ज्वल होगा। **इसी भावना के साथ**

महावीर भगवान की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—20.12.09
वार—रविवार

अहंकार व ममकार संसार के द्वार

पर पदार्थों के संकल्प-विकल्प और उसमें भी 'मैं' और 'मेरे' की भावना छोड़ दीजिए क्योंकि 'मैं-मेरे' की मान्यता मिथ्या है। और निश्चय में तो 'मैं-मेरा' नहीं है।

भव्य मनीषियो! अध्यात्म सरोवर में अवगाहन करने वाले पूज्य आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि अज्ञानता से व्यक्ति पर को अपना और अपने को पर का मान लेता है इसी कारण से मोह होता है और मोह के कारण अहंकार-ममकार होता है जो जीव को आत्मा से पराङ्मुख करता है तथा संसार परिभ्रमण का कारण भी अहंकार-ममकार है। समयसार ग्रंथ में अहमेदं यानि मैं इसका हूँ-3 तथा ममेदं यानि यह मेरा है...3। यही परिणाम संसार परिभ्रमण के कारण है। इसी कारण का दिग्दर्शन कराते हुए यहाँ आचार्य महाराज यहाँ कह रहे हैं—

स्वकर्म व्याघ्रेण स्फुरितनिजकालादिमहसा,
समाघ्रातः साक्षाच्छरणरहिते संसृतिवने।
प्रिया मे पुत्रा मे द्रविणमपि मे मे गृहमिदं,
वदन्नेवं मे मे पशुरिव जनो याति मरणम्॥49॥

अर्थ—जो संसार रूपी वन रक्षकों से रहित है उसमें अपने उदय-काल आदि रूप पराक्रम से संयुक्त ऐसे कर्म रूपी व्याघ्र के द्वारा ग्रहण किया गया यह मनुष्य रूपी पशु 'यह मेरी प्रिया है, ये पुत्र मेरे हैं, यह द्रव्य मेरा है और यह घर भी मेरा है' इस प्रकार मेरा-मेरा कहता हुआ मरण को प्राप्त हो जाता है।

बन्धुओ! यहाँ आचार्य भगवन् कह रहे हैं जैसे जंगल में व्याघ्र, हिरण आदि जानवर पर जब आक्रमण करता है तो सहसा नहीं करता है पहले वह दूर से देखता है कि हिरण है फिर शनैः-शनैः दबे पैर से उसकी ओर जाता है और जैसे-जैसे पास में पहुँचता है तो ज्यादा सावधान हो जाता है लेकिन जैसे ही हिरण की दृष्टि उस पर पहुँचती है तो वह घबड़ा जाता है और भागता है तथा शेर भी उसका पीछा करने के लिए शक्ति भर दौड़ता है और सबसे पहले पंजे से प्रहार करके उसको नीचे गिरा देता पश्चात् गले को पकड़ता है फिर उसे कोई नहीं बचा पाता है। ठीक इसी प्रकार संसार रूपी वन जो शरण से रहित है, रक्षकों से रहित है जिसमें कोई बचाने वाला नहीं है जिसमें उदय में आए हुए कर्म रूपी व्याघ्र मनुष्य रूपी पशु को दबोच लेते हैं फिर वह चिल्लाता है 'यह मेरी प्रिया है, ये मेरे पुत्र है, यह मेरा द्रव्य है, और यह घर भी मेरा है' इस प्रकार मेरा-मेरा बोलता हुआ मरण को प्राप्त हो जाता है। कहा भी है—

मैं-मैं बकरी करे गला कटाया जाए।
तुही-तुही मैना करे बैठी गूलर खाय॥

बकरी को क्यों मारा जाता है? क्योंकि वह यह मेरा है, यह मेरा है ऐसा करती है और जो ऐसा करता है उसका गला कटता है। आज संसार के सारे झगड़े 'मैं' के कारण ही हुए। रावण जो प्रतिनारायण था अहंकार के कारण मृत्यु को प्राप्त हुआ, ममकार के कारण बाहुवली को 1 वर्ष तक केवल ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। इसलिये आचार्य कुंदकुंद महाराज अष्ट पाहुड ग्रंथ में कहते हैं कि बाहुवली में 'मैं' का अहंकार था मैं भरत की भूमि पर खड़ा नहीं होऊँगा, इसके कारण केवलज्ञान नहीं हुआ और जब केवलज्ञान नहीं हुआ तो ध्यान भी नहीं हुआ, (निर्विकल्प समाधि, वीतराग निर्विकल्प समाधि, परम समाधि, स्वसंवेदन भी नहीं हुआ।) क्योंकि इसे पाने के लिए विकल्पों को छोड़ना पड़ता है और जो विकल्पों को नहीं छोड़ता वह निर्विकल्प दशा को प्राप्त नहीं होता और उदय में आए हुए कर्मरूपी व्याघ्र के द्वारा पकड़ा जाता है पश्चात् चिल्लाते-चिल्लाते मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार मृत्यु की बेला में मोह, अहंकार-ममकार के परिणाम, आर्त्त-रौद्र परिणाम के कारण भगवान का स्मरण नहीं कर पाता पर पदार्थों का स्मरण करते हुए संक्लेशता से मरता है जिससे दुर्गति का पात्र बनकर घोर नरक को प्राप्त करता है। छहढ़ाला की पहली ढ़ाल में भी कहा है—

अति संक्लेश भावतैं मर्‍यो, घोर श्वभ्र सागर में पर्‍यो॥8॥

इसलिए आचार्य कहते हैं हे भव्य! **पर पदार्थों के संकल्प-विकल्प और उसमें भी 'मैं' और 'मेरे' की भावना छोड़ दीजिए क्योंकि 'मैं-मेरे' की मान्यता मिथ्या है। और निश्चय में तो 'मैं-मेरा' नहीं है।** फिर परपदार्थ जिन्हें तुम अपना कह रहे हो वे तुम्हारे कैसे हो सकते हैं? क्योंकि परपदार्थ जड़ है अचेतन है और तुम चेतन हो। और इन दोनों में बहुत बड़ा अंतर है, दोनों की विपरीत अवस्था है। यदि अचेतन पदार्थ तुम्हारे हो जाए तो फिर अचेतन को चेतन होना होगा या तुम अचेतन पदार्थों के हो तो फिर तुम्हें अचेतन होना होगा जबकि ऐसा कभी नहीं हुआ बल्कि जो जैसा था वैसा ही रहा। क्योंकि चेतन के गुण चेतन और अचेतन के गुण अचेतन होते हैं एक ज्ञानी, एक वैरागी इस बात को जानता है इसलिए वह संसार की समस्त सामग्री के बीच रह कर भी वैरागी रहता है, विरक्त रहता है। छहढाला की तीसरी ढ़ाल में पं. दौलतराम जी ने कहा भी है—

गेही पै गृह में न रचे ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है॥15॥

अर्थात् अविरत सम्यग्दृष्टि जीव घर में रहता है, साधु सन्त रास्ते में गुफा, गिरी, कंदर आदि स्थानों में रेन बसेरा करते हैं लेकिन उनमें रचते नहीं हैं जैसे कमल, जल से पैदा होता है जल में रहता है फिर भी जल से भिन्न रहता है जल से अलिप्त रहता है यदि उसके पत्ते पर जल की बूँद आ जाए तो भी वह सोखता नहीं बल्कि वह बूँद या तो सूख जाएगी या ढल जाएगी। बस

सम्यग्दृष्टि जीव भी ऐसे ही भेद-विज्ञान की भावना से संसार में रहता है कि यह मेरा नहीं है, मेरा स्वभाव नहीं है और जो कह रहे हैं वह सब मोह के कारण कह रहे हैं क्योंकि जब हम इस संसार से विदा लेंगे तो ये सब यहीं रह जाएँगे। ऐसा सोचकर वह सम्यग्दृष्टि जीव मोह से रहित होता है छहढ़ाला की तीसरी ढ़ाल में पं. दौलतराम जी भी कहते हैं—

नगर नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥15॥

जैसे वेश्या का स्नेह धन से होता व्यक्ति से नहीं। शास्त्रों में एक कहानी आती है कि चारुदत्त जो एक सदाचारी धार्मिक व्यक्ति था लेकिन वेश्या के जाल में फँसने के बाद वह वसंत-सेना को धन देता रहा और वह उससे स्नेह करती रही। लेकिन जैसे ही धन समाप्त हुआ उसे गटर में डाल दिया गया। तब चारुदत्त को समझ में आया कि वेश्या का ऐसा स्वरूप होता है कि जिसके लिए सारा धन लुटाया उसका परिणाम गटर में फेंकना। ऐसा विचार करते ही उसे वैराग्य हो गया और वह आत्मसाधना में निमग्न हो गए। क्योंकि वेश्या, व्यक्ति के पास धन समाप्त होने पर उससे विरक्त हो जाती है। उसी प्रकार यदि कीचड़ में सोना डाल दिया जाए तो वह वर्षो वर्ष पड़ा रहने पर भी खराब नहीं होता जबकि लोहे में जंग लग जाती है। उसमें जंग नहीं लगती। बस सम्यग्दृष्टि जीव भी परिवार के बीच रहता हुआ भी घर-परिवार के मोह से अलिप्त रहता है।

बन्धुओ! भरत चक्रवर्ती जो चक्रवर्ती के वैभव से सम्पन्न था उसका विशाल कुटुम्ब-परिवार था असीम धन-सम्पदा थी फिर भी वे उससे विरक्त थे। एक बार एक सेठ के मन में जिज्ञासा हुई कि भरत घर में वैरागी कैसे? जबकि उनके पास चक्रवर्ती की सम्पदा है। और सेठ जी भरत चक्रवर्ती के पास पहुँचे बोले—मैं जानना चाहता हूँ कि आपको घर में वैरागी कहा जाता है वह कैसे? तभी भरत चक्रवर्ती ने एक दीपक मँगाया और उसे तेल से भरकर सेठ जी के हाथ पर रख दिया अब उस दीपक में और 1 बूँद भरने की भी गुंजाइश नहीं थी साथ ही दो सैनिकों को खड़ा कर दिया और कहा कि आप लोग अपनी-अपनी तलवार म्यान से निकालना और उबार कर रखना कि जैसे ही तेल की बूँद गिरे तो गर्दन पर वार करना है। सेठ, भरत चक्रवर्ती के आदेश को सुन घबरा गया तथा अनेक संकल्प-विकल्पों में उलझ गया साथ ही एक परिचायक को आदेश दिया कि तुम्हें सेठ जी को सारा राजमहल घुमा कर सारे स्थानों का परिचय कराना और वापिस लाना है। जाईये महल के सभी स्थानों पर घूम कर आइए और ध्यान रखना दीपक से एक बूँद न गिर जाए। परिचायक परिचय देता है कि यह भरत महाराज का पूजा गृह है, मन्दिर है, स्वाध्याय भवन है आदि-आदि सारे दिन में विभिन्न स्थानों का परिचय कराते हुए परिचायक सेठ जी को सभा में लाया। सेठ जी जब चक्रवर्ती के सम्मुख पहुँचे तो चक्रवर्ती प्रसन्न हो गए और बोले—मुझे प्रसन्नता है कि आप प्रसन्नता से वापिस आ गए तथा आपने कहाँ-कहाँ की यात्रा की? सेठ जी ने कहा—महाराज पहले आप इस दीपक को उठा लीजिए इसमें मुझे मेरी मृत्यु झलक रही है। सैनिक ने जैसे ही दीपक को उठाया सेठ जी ने शान्ति की श्वांस ली और कहा—महाराज अब पूछिए आप क्या पूँछ रहे हैं? महाराज चक्रवर्ती ने कहा—कहाँ-कहाँ गए थे तथा क्या-क्या देखा आपने? सेठ जी—सभी जगह गए थे जहाँ परिचायक ले गया था लेकिन देखने के स्थान पर मुझे सिर्फ दीपक

ही दिखा कि कहीं एक बूँद तेल की गिर न जाए नहीं तो मृत्यु हो जाएगी। तब चक्रवर्ती ने कहा—ठीक ऐसे ही एक वैरागी, मोक्षमार्गी साधक, सम्यग्दृष्टि जीता है वह सारे काम करता है, परिचय करता है, बात करता है, लेकिन यह निर्णय लेकर के चलता है कि यह मेरा स्वभाव नहीं है, यह मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है एकमात्र मोह है, भ्रांति है इस प्रकार जो ऐसा चिंतन करता है वही व्यक्ति भरत की तरह अन्तर्मूहुर्त में केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है। साथ ही भरत चक्रवर्ती का त्याग का अभ्यास मजबूत था वे जिस पदार्थ को छोड़ देते थे, उसे फिर मुड़कर नहीं देखते थे। लेकिन आज का व्यक्ति जिन पदार्थों को छोड़ देता है उसे मुड़-मुड़ कर देखता है और फिर इच्छा हो जाती है कि मैं उनसे मिल लूँ, चर्चा-वार्ता कर लूँ, नजर भरकर के देख लूँ, ऐसी भावना बनी रहती है और फिर जिसका मन इन सब बाह्य विकल्पों से भरा है तो मोक्षमार्ग, आत्म स्वभाव से कैसे भरेगा? इस प्रकार मोह के संस्कार अनवरत् बने रहते हैं और उन्हें तोड़ने के लिए त्याग करना पड़ता है, परिश्रम करना पड़ता है। क्योंकि मात्र घर के त्याग से कोई त्याग नहीं हो जाता फिर भी अंतरंग का सम्बन्ध बना रहता है।

बन्धुओ! मोह का सम्बन्ध इतना सूक्ष्म होता है जो दिखता नहीं है उसे तो वही व्यक्ति जान सकता है जिसके अन्दर मोह है। यदि उसके अंदर देखने की, पूछने की इच्छा होती है तो वह मोह की इच्छा है लेकिन जब वैराग्य हो जाता है तो फिर इच्छा नहीं आत्मा नजर आती है। फिर जिसे संसार से भय हो जाता है वह भूल कर भी दृष्टि नहीं डालना चाहता। और यदि कदाचित् स्वप्न आ जाए तो उसका प्रायश्चित लेता है और जो साधक स्वप्न का भी प्रायश्चित ले रहा है वह क्या जागृत अवस्था में मुड़कर देखेगा? फिर उसकी अनर्गल परिचर्या होगी क्या? नहीं होगी। और वह इतना सावधान हो जाता कि फिर उसे स्वप्न भी नहीं आते। पूज्य आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि स्वप्न कब तक आते हैं? जब तक पदार्थ में मोह रहता है लेकिन धीरे-धीरे उनका स्मरण, उनकी चर्चा, उनका देखना, सुनना बन्द कर दे तो वातावरण चेंज हो जाता है फिर उनसे प्रयोजन भी नहीं रह जाता, कल्पना भी नहीं आ पाती और यदि सुनने में आ जाए तो इस कान से सुनते उस कान से निकाल देते हैं कि होंगे कोई हमें उनसे क्या प्रयोजन। एक बार एक माँ के पुत्र ने रात्रि के समय शरीर से विदाई ले ली प्रातः होने पर पति के पूछने पर पत्नि ने कहा—कुछ दिन पूर्व एक यात्री आया था आज वह चला गया। धन्य हैं वे जो परिवार के लोगों को यात्री की तरह समझने लगे। इससे पता चलता है कि उनकी अन्तर यात्रा, उनका स्वाध्याय सही चल रहा है।

इस प्रकार आचार्य भगवन् कहते हैं कि जो परिवार में इतना आसक्त था आज इतना बदलाव आया कि उसे मुड़कर देखना पसन्द नहीं, मात्र अपने आत्म ध्यान में डूबे रहते हैं। महामुनि राम के सम्मुख सीता का जीव अहमिन्द्र स्वर्ग से चल कर आया और राम को साधना से चलायमान करने का प्रयास किया लेकिन राम ने आँख नहीं खोली जिससे राम को केवलज्ञान हो गया, उनका निर्वाण हो गया। अतः हम सभी को भी इस सत्य को गहराई से समझना होगा और इस यात्रा में आगे कदम बढ़ाना होगा। क्योंकि आज हमने इतना छोड़ा तो उसके बदले में पाया क्या है? और जो छोड़ा है वह कितना अन्दर से छोड़ा है? इसलिये हम अपने अंदर ऐसा ज्ञान जाग्रत करे कि अन्दर से छूट जाए और फिर अर्जुन की तरह मात्र लक्ष्य दिखता रहे।

बंधुओ! जब पाँचों पांडव अपने गुरु द्रोणाचार्य के साथ जंगल में गए वहाँ गुरु द्रोणाचार्य ने पाँचों पांडवों की परीक्षा ली और सभी से क्रमशः पूछा कि आपको सामने क्या दिख रहा है? तो किसी ने कहा—मुझे सब कुछ दिख रहा, तो किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ कहा। लेकिन जब अर्जुन से पूछा गया तो अर्जुन ने कहा—गुरुदेव मुझे मात्र मेरा लक्ष्य जो काली मिर्च लटक रही है वह दिख रहा है। गुरु द्रोणाचार्य ने कहा—सभी फेल हैं मात्र अर्जुन पास हुए, अर्जुन की जीत हुई है क्योंकि उन्हें मात्र लक्ष्य दिख रहा है। इसी प्रकार त्याग करने के बाद भी परिवार-कुटुम्ब, धन-दौलत दिखने लग जाए तो समझना हम मोक्ष मार्ग में फेल हैं और यदि शुद्धात्मा दिखने लग जाए तो समझना हम सही रास्ते पर हैं, मोक्षमार्ग में पास हैं। इस प्रकार हमें निरन्तर लक्ष्य के प्रति प्रयास अभ्यास करना चाहिए तभी संवर-निर्जरा होगी, कर्मों का क्षय तथा निर्वाण होगा और यदि अभ्यास नहीं किया तो संवर-निर्जरा मात्र चर्चा में रहेगी, शास्त्र की पंक्ति में रहेगी लेकिन तुम्हारी आत्मा से दूर रहेगी। भगवान महावीर स्वामी कहते हैं हे भव्य! जैसा आज किया वैसा तुमने अनंतों बार धारण किया लेकिन मोह को नहीं तोड़ पाए इसलिए गिनती अनंत तक पहुँच गई। छहढ़ाला की चौथी ढ़ाल में पं. दौलतराम जी ने कहा है—

मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रीवक उपजायौ।
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पाओ॥4॥

अर्थात् हमें आत्मस्वरूप में डूबने का अभ्यास बनाना है परिश्रम और मेहनत करना है और जो परिश्रम करता है वह निर्वाण सुख को, मुक्ति को प्राप्त करता है फिर उसका आगे बढ़ना सार्थक होता है। जबकि अज्ञानी मैं-मैं करता मरता और ज्ञानी, ज्ञान में डूबता है, और कहता है न मेरा न तेरा झूठा झमेला।

आगे आचार्य महाराज कह रहे हैं कि अज्ञानी प्राणी संसार की दशा को देखता है लेकिन मोह के कारण अपने को स्थिर मानता है—

दिनानि खण्डानि गुरूणि मृत्युना विघ्न्यमानस्य निजायुषो भृशम्।
पतन्ति पश्यन्नपि नित्यमग्रतः स्थिरत्वमात्मन्यभिमन्यते जडः॥50॥

अर्थ—यह अज्ञानी प्राणी मृत्यु के द्वारा खण्डित की जाने वाली अपनी आयु के दिन रूप दीर्घ खण्डों को सदा सामने गिरते हुए देखता हुआ भी अपने को स्थिर मानता है।

हे भव्य आत्माओ! यह अज्ञानी प्राणी मृत्यु के दूवारा खण्डित की जाने वाली अपनी आयु के दिन रूप दीर्घ खण्डों को सदा सामने गिरते हुए देखता हुआ भी अपने को स्थिर मानता है। इसलिये आचार्य भगवन् कहते हैं कि हे भव्य! तुम्हारी आयु दिनों दिन घटती जा रही है और तुम कहते हो मैं बड़ा हो गया हूँ। बंधुओ! महाराष्ट्र में 'बाड दिवस' मानते हैं यानि 1 वर्ष बड़े हो गए। लौकिकता में भी कहा जाता है कि हम 10 वर्ष, 20 वर्ष, 30 वर्ष आदि के हो गए। लेकिन भगवान् कहते हैं कि आप बड़े नहीं छोटे हो गए। मान लीजिये यदि आपकी 100 वर्ष की आयु है और उसमें से 10 वर्ष आयु कम हो गई तो आप की 100 वर्ष की आयु में से 10 वर्ष आयु कम यानि

90 वर्ष की आयु शेष रही। इसी प्रकार, 20, 30, 40, 50, 60, 70, 80 वर्ष, 100 वर्ष की आयु में से व्यतीत हो गए तो मात्र अब आपकी 20 वर्ष की आयु शेष रही। और आगे जाने पर वह आयु घटते-घटते ही जाना है फिर भी आप खुशी मना रहे हैं, जन्म दिवस मना रहे हैं जबकि सत्य तो यह है कि यह खुशी का दिन नहीं मरण दिवस है क्योंकि आपके इतने दिनों की मृत्यु हो गई। उन बीतें हुए दिनों पर आपका कोई पुरुषार्थ नहीं चलेगा कि उस बीती जिन्दगी के दिनों में आपने क्या अच्छा या बुरा किया। यदि अच्छा किया तो खुशी है और आगे एक कदम अच्छा करेंगे और यदि बुरा किया तो अब उसमें बदलाव लाएँगे।

बन्धुओ! इस प्रकार जब साधक ज्ञान में डूबता है जो नए-नए चिंतन उत्पन्न होते हैं और उसके जीवन में परिवर्तन आता है। अभी हम 1 वर्ष में 1 बार जन्म दिन मना रहे थे लेकिन अब ज्ञानी के लिए प्रतिक्षण नया है और प्रतिक्षण हमारी मृत्यु हो रही है जिससे उसके जीवन में एक-एक समय की कीमत होती है।

फिर हमारा जन्म दिवस मनाना सार्थक हो सकता है और यदि मात्र बाहरी आनन्द में समय व्यतीत किया तो फिर भटकने का ही मार्ग है मुक्ति का मार्ग नहीं।

इस प्रकार संसार की नाशवान अवस्थाओं को तथा अपनी जिन्दगी के दिनों को व्यतीत होते हुए देखता हुआ भी अज्ञानी व्यक्ति अपने आपको स्थिर मानता है। उसे मृत्यु की खबर नहीं है कि मैं दिनों-दिन मृत्यु के निकट पहुँच रहा हूँ इसलिए वह अज्ञानी है और जिसे यह खबर हो जाए तो वह ज्ञानी है जिससे उसका कल्याण हो जाएगा। क्योंकि जिन्दगी कब पूरी हो जाए पता नहीं। इसलिए मृत्यु के पूर्व जो करना है कर लो। अंत में जिन्दगी पूरी होने पर तो मरना ही पड़ेगा। कहा भी है—

मरना अवश्य होगा करना जो चाहो कर लो।
फल उसका पाना होगा करना जो चाहो कर लो॥

इसलिए अच्छा है समय के पहले सावधान होना और शास्त्रों का स्वाध्याय, तत्त्वचिन्तन, धर्मोपदेश जो हमें सावधान करता है, सजग करता है। अतः ऐसा सम्यक् पुरुषार्थ करें जिससे कि जीवन सार्थक सफल हो सके। **इसी भावना के साथ**

महावीर भगवान की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—21.12.09
वार—सोमवार

श्मशान का वैराग्य

जब व्यक्ति किसी की शव (अन्तिम) यात्रा में जाता है तो श्मशान का वैराग्य होता है जो श्मशान तक ही रहता है श्मशान से लौटने पर सब समाप्त हो जाता है। क्योंकि उस समय व्यक्ति उसके विषय में विचार करता है और आश्चर्य प्रकट करता है।

शरीर से जन्म लेने का नाम इंसान नहीं, बल्कि इंसानियत को प्राप्त करने का नाम इंसान है क्योंकि इंसान, इंसानियत से अपने जीवन को सफल बनाता है।

हे आत्मेच्छुको! परम वीतरागी हितोपदेशी भगवान् महावीर स्वामी की देशना का रस पान कराते हुए पूज्य आचार्य पद्मनंदि जी महाराज कह रहे हैं कि प्रत्येक प्राणी की आयु निरन्तर क्षीण हो रही है, घटती जा रही है, उसकी जिन्दगी का अमूल्य समय व्यतीत होता जा रहा है और एक दिन घटते-घटते पूर्ण आयु समाप्त हो जाएगी और उसे संसार से विदाई लेना पड़ेगी। इसलिए मृत्यु के पूर्व जागृत हो जाना, समय के पहले सावधान हो जाना, अस्थि बिखरने के पहले अपनी आस्था को जमा लेना, बहुत बड़ी बात है तभी उसकी मृत्यु सार्थक है, उसका जीवन सार्थक है अन्यथा पश्चाताप ही हाथ में रहेगा क्योंकि सभी की मृत्यु अवश्यंभावी है (कोई उससे तथा उसे दूर नहीं कर सकता है।)

इसी बात को आचार्य महाराज कह रहे हैं—

कालेन प्रलयं व्रजन्ति नियतं तेऽपीन्द्रचन्द्रादयः,
का वार्तान्यजनस्य कीटसदृशोऽशक्तेरदीर्घायुषः।
तस्मान्मृत्युमुपागते प्रियतमे मोहं मुधा मा वृथाः,
कालः क्रीडति नात्र येन सहसा तत्किंचिदन्विष्यताम्॥51॥

अर्थ—जब वे इन्द्र और चन्द्र आदि भी समय पाकर निश्चय से मृत्यु को प्राप्त होते हैं तब भला कीड़े के सदृश निर्मल एवं अल्पायु अन्य जन की तो बात ही क्या है? अर्थात् वह तो निःसन्देह मरण को प्राप्त होगा ही। इसीलिए हे भव्य जीव! किसी अत्यन्त प्रिय मनुष्य के मरण को प्राप्त होने पर व्यर्थ में मोह को मत कर। किन्तु ऐसा कुछ उपाय सोच, जिससे कि वह काल (मृत्यु) सहसा यहाँ क्रीड़ा न कर सके।

बन्धुओ! आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि इन्द्र यानि सौधर्म आदि 16 स्वर्गों के इन्द्र और उससे

भी आगे जितने अहमिन्द्र हैं उन सभी की आयु समाप्त होने पर उनकी भी मृत्यु होती है। वे देव हैं तो नहीं होगी। ऐसा नहीं हो सकता है क्योंकि वे संसार के अन्दर हैं। संसार में चारों गतियों में से एक देवगति है और देवगति के देवों को आयु समाप्त होने के 6 माह पूर्व आभास हो जाता है चूँकि देव अवधिज्ञानी होते हैं वे 6 माह से भी पहले अपनी मृत्यु को समझ सकते हैं लेकिन आवश्यक नहीं है कि सभी का उपयोग इस ओर जाए। संसारी का उपयोग अधिकतर संसार में ही जाता है और उनका उपयोग इतना फैला रहता है कि वह सब कुछ देखता है लेकिन अपनी मृत्यु को नहीं जान-देख पाता तथा उसे समझने का लक्ष्य भी नहीं रहता। वे हमेशा अवधिज्ञान भी नहीं लगाते हैं और जब कभी लगा भी लेते हैं तो आयु का अन्त समय जान लेते हैं या उनके गले में स्थित गल माला है जो सदैव खिली हुई/प्रफुल्लित रहती है लेकिन मृत्यु की बेला आने पर 6 माह पूर्व से मुरझाने लगती है, शरीर की कांति फीकी पड़ने लगती। जिसे देख वह विचार करते हैं कि ऐसा क्यों हो रहा? तब वे अपने ज्ञान से जान लेते हैं कि हमारी आयु के 6 माह शेष रह गए हैं मेरी आयु के अवसान का समय निकट आ गया है ऐसा जान कर सम्यग्दृष्टि देव भगवान के समवशरण में जाकर पूजा-अर्चना, उपासना करते हैं और अपना समय तत्त्वचिन्तन में लगाते है।

बंधुओ! आदिपुराण में उल्लेख आता है कि ललितांग देव जिसने अपनी आयु के 6 माह शेष रहे ऐसा जानकर राजपाट से विरक्त होकर सिद्धार्थ कल्पवृक्ष के नीचे जाकर तत्त्वचिन्तन के द्वारा समाधिपूर्वक सल्लेखना व्रत के साथ मरण किया। इस प्रकार ललितांग के जीव ने अपनी आयु का अन्तिम समय धर्म ध्यान के साथ व्यतीत किया फिर भी उसे मरना पड़ा। इसी प्रकार चन्द्र आदि देव जो रात्रि में आकाश में दिखाई देता है वह देव नहीं उसका विमान है और जो उसका अधिष्ठाता होता है वह देव है वह भी आयु के समाप्त होने पर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अतः जब इन्द्र और चन्द्रमा की मृत्यु हो सकती है तो फिर कीट के समान निर्बल एवं अल्पायु वाले अन्य जन की क्या वार्ता? अर्थात् वे भी मरण को प्राप्त करेंगे और उन्हें संसार शरीर से विदाई लेनी पड़ेगी।

इसलिये आचार्य महाराज कहते हैं हे भव्य! जो तू अत्यन्त प्रिय मनुष्य के मरण को प्राप्त होने पर शोक कर रहा है वह व्यर्थ है। क्योंकि तुम्हारे शोक करने पर या मोह करने पर वे लौट कर नहीं आने वाले हैं तथा एक पर्याय से विदाई लेने के बाद जीव तुरन्त दूसरी पर्याय को प्राप्त कर लेता है। (एक बार संघ में एक महाराज की सल्लेखना चल रही थी उनसे मैंने कहा—'हाँ, अवश्य आएँगे यदि महाराज, यदि धर्म पर संकट आये तो आप स्वर्ग से जरूर आना।) महाराज बोले—आपकी आज्ञा हो तो। लेकिन मृत्यु के पहले सब याद रहता मृत्यु के बाद सब विस्मृत हो जाता है। जाति स्मरण भी सभी को नहीं विरलों को ही होता है सभी भूल जाते हैं। इसलिए हे भव्य। जहाँ पर मृत्यु न होती हो, काल सहसा क्रीड़ा न करता हो, ऐसे उपाय की प्राप्ति में सदैव प्रयास करना चाहिए-खोज करना चाहिए-आज हम सब उसी उपाय की प्राप्ति के लिए अरहंत भगवान के पथानुगामी बन ऐसा पुरुषार्थ कर रहे कि हम भी ऐसी अवस्था को प्राप्त करें जिससे जन्म-मरण को प्राप्त न करना पड़े। क्योंकि सिद्ध अवस्था प्राप्त करने के बाद कितने ही कल्पकाल निकल

जाए वे संसार में जन्म नहीं लेते कारण कि उन्होंने जन्म-मरण को जीत लिया है, समाप्त कर दिया है। लेकिन संसारी प्राणी का जन्म-मरण चल रहा है क्योंकि परमात्मा नहीं हुए। (तथा परमात्मा के 18 दोषों में जन्म-मरण दोष हैं और उनके 18 ही दोष नष्ट हो गए हैं।) भले ही संसार में कितना भी अधर्म-अन्याय बढ़ जाए तो भी वे लौट कर नहीं आएँगे। वे राग-द्वेष से रहित हैं, उन्होंने सम्पूर्ण कर्म रूप बीज को जला दिया है क्योंकि संसार में घुमाने वाले कर्म रूपी बीज हैं। अतः हम भी ऐसे रास्ते या मंजिल को पाने का पुरुषार्थ करें जिससे जन्म-मरण न करना पड़े।

आगे आचार्य महाराज कह रहे हैं—

संयोगो यदि विप्रयोगविधिना चेज्जन्म तन्मृत्युना,
सम्पच्चेद्विपदा सुखं यदि तदा दुःखेन भाव्यं ध्रुवम्।
संसारेऽत्र मुहुर्मुहुर्बहुविधावस्थान्तर प्रोल्लसद्,
बेषान्यत्वनटीकृताङ्गिनि सतः शोको न हर्षः क्वचित्॥52॥

अर्थ—जहाँ पर प्राणी बार-बार बहुत प्रकार की अवस्थाओं रूप वेषों की भिन्नता से नट के समान आचरण करते हैं ऐसे उस संसार में यदि इष्ट का संयोग होता है तो वियोग भी उसका अवश्य होना चाहिए, यदि सम्पत्ति है तो विपत्ति भी अवश्य होनी चाहिए तथा यदि सुख है तो दुख भी अवश्य होना चाहिए। इसलिए सज्जन मनुष्य को इष्ट-संयोगादि के होने पर तो हर्ष और इष्ट वियोगादि के होने पर शोक भी नहीं करना चाहिए।

बन्धुओ! आचार्य भगवन् कह रहे हैं जैसे नट (नाटक के पात्र) रंगमंच पर विभिन्न-विभिन्न वेषों को धारण करता हैं वैसे ही इस संसार रूपी रंगमंच पर प्राणियों को बार-बार बहुत प्रकार की अवस्थाओं को धारण करना पड़ता है अर्थात् कभी यह जीव तिर्यंच गति में जाता तो हाथी, गाय आदि तिर्यंच वेष को, मनुष्य गति में जाता तो मनुष्य वेष को, नरक गति में जाता तो नारक वेष को और देवगति में जाता तो देव पर्याय को धारण करता है। सभी एक जैसे नहीं रहते। ऐसे इस संसार में जो संयोग होता है वह वियोग को लिए होता है, वियोग के साथ होता है। जो आज मिला है वह कल छूटेगा, जो आया है वह जाएगा यह संसार का शाश्वत सिद्धान्त है अर्थात् संसार में ऐसा कोई संयोग नहीं जिसका वियोग न होता हो।

इसी प्रकार संयोग-वियोग की तरह यदि जन्म है तो मृत्यु भी अवश्य होगी, सम्पत्ति प्राप्त हुई है तो विपत्ति भी अवश्य आएगी, सुख है तो दुख भी अवश्य आएगा ये दोनों अवस्थाएँ कभी शाश्वत नहीं रहती हैं लेकिन इस संसार में प्राणी इष्ट संयोग होने पर हर्षित होता है और भूल जाता है कि आज जिसका संयोग हुआ है उसका वियोग भी होगा।

बन्धुओ! जिसका जितना अधिक मोह होगा उसे उतना अधिक हर्ष होता है और उसके वियोग होने पर उसे उतना अधिक विषाद होता है, उतनी अधिक पीड़ा होती है, रह-रहकर उसकी याद आती है। याद आना भी बुरा नहीं लेकिन याद के साथ जो शोक होता है उसे कर्मबन्ध होता है क्योंकि उसमें परिणाम संक्लेशित होते हैं, आँसू बहते हैं, माथे पर चिन्ता की लकीरें खिंच जाती

हैं। अतः हर्ष-विषाद दोनों नहीं करना चाहिए क्योंकि इन दोनों से कर्मों का आस्रव बंध होता है, इन दोनों के होने पर परिणामों में असंतुलन होता है, परिणाम संक्लेशित होते हैं। इसी प्रकार जन्म-मरण के समय जो सूतक-पातक होता है उसमें पूजा, विधान आदि धार्मिक क्रियाओं का निषेध किया जाता है क्योंकि जन्म के समय अत्यन्त खुशी होने से धर्मध्यान नहीं कर सकता और यदि करेगा भी तो अविनय अनादर होगा। दूसरी बात जन्म के समय अनेक सूक्ष्म जीवों का हनन होता है और हमारे हर्ष या खुशी से उन सूक्ष्म जीवों के हनन की अनुमोदना होती है। फिर जो जितना अधिक नजदीक होता है उसे उतने अधिक समय का सूतक लगता है। इसी प्रकार मृत्यु के समय भी विषाद ग्रस्त परिणाम होने से धर्मध्यान नहीं होता क्योंकि शोक के कारण वह कुछ का कुछ करता है।

दूसरा हेतु है मृत्यु के पश्चात् शव में अन्तर्मूहुर्त पश्चात् असंख्यात त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं और शव का संस्कार करने से वे सारे जीव खत्म हो जाते हैं जिससे जीव हिंसा होती है। इसलिये उस समय धार्मिक कार्य के लिए निषेध किया जाता है। साथ ही धार्मिक कार्य का निषेध एक प्रकार का प्रायश्चित है, दण्ड है। तथा जो जितने अधिक निकट होता है उसे उतना अधिक प्रायश्चित होता है लेकिन आगे-आगे की पीढ़ी में यह कम होता जाता है इस प्रकार हर्ष-विषाद की अवस्थायें हमारे धर्मध्यान में बाधक है अतः सज्जन मनुष्यों को इष्ट संयोगादि के होने पर हर्ष तथा इष्ट वियोगादि के होने पर विषाद नहीं करना चाहिए। आगे आचार्य महाराज मनुष्यों के मन की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कह रहे हैं—

लोकाश्चेतसि चिन्तयन्त्यनुदिनं कल्याणमेवात्मनः,
कुर्यात्सा भवितव्यतागतवती तत्तत्र यद्रोचते।
मोहोल्लासवशादतिप्रसरतो हित्वा विकल्पान् बहून्,
रागद्वेष विषोज्झितैरिति सदा सद्भिः सुखं स्थीयताम्॥53॥

अर्थ—मनुष्य, मन में प्रतिदिन अपने कल्याण का ही विचार करते हैं, किन्तु आई हुई भवितव्यता (दैव) वही करती है जो कि उसको रुचता है। इसलिए सज्जन पुरुष राग-द्वेष रूपी विष से रहित होते हुए मोह के प्रभाव से अतिशय विस्तार को प्राप्त होने वाले बहुत से विकल्पों को छोड़कर सदा सुखपूर्वक स्थित रहें।

हे मोक्षेच्छुक भव्य! संसार में रहने वाले प्राणी प्रतिदिन कल्याण का विचार करते हैं, सुख-शान्ति की भावना भाते हैं और चाहते भी हैं कि मेरा कल्याण हो जाए, मुझे संसार में परिभ्रमण न करना पड़े, संसार में डूबना न पड़े, लेकिन यह सब विपत्ति के आने पर ही सोचते हैं विपत्ति के निकल जाने पर सभी भूल जाते हैं। बंधुओ! वैराग्य दो प्रकार का होता है एक तो श्मशान का वैराग्य दूसरा शास्त्र का वैराग्य जिसमें श्मशान का वैराग्य का वैराग्य यानि **जब व्यक्ति किसी की शव (अन्तिम) यात्रा में जाता है तो श्मशान का वैराग्य होता है जो श्मशान तक ही रहता है श्मशान से लौटने पर सब समाप्त हो जाता है। क्योंकि उस समय व्यक्ति उसके विषय में विचार करता है और आश्चर्य प्रकट करता है।**

दूसरा शास्त्र का वैराग्य यानि शास्त्रसभा में या प्रवचन में ऐसा कोई प्रकरण आ जाए जिसमें संसार की दशा का वर्णन हो तो भी वैराग्य हो जाता है और प्रवचन के समाप्त होते ही वैराग्य समाप्त हो जाता है। लेकिन कुछ ऐसे होते हैं जिनके जीवन में उसका स्थायी प्रभाव पड़ता है उन्हें बोधित बुद्ध कहा जाता है क्योंकि आज जो व्यक्ति मन्दिर आया है, व्रत-नियम-संयम को धारण किया है वह किसी न किसी की प्रेरणा के कारण हुआ है और वे विचार करते हैं कि मुझे जो मनुष्य जीवन मिला है उसे सार्थक करना है। **शरीर से जन्म लेने का नाम इंसान नहीं, आकार को धारण करने का नाम भी इंसान नहीं, बल्कि इंसानियत को प्राप्त करने का नाम इंसान है क्योंकि इंसान, इंसानियत से अपने जीवन को सफल बनाता है।**

इसलिए इंसान बड़ा नहीं इंसानियत बड़ी है तथा इंसान कहलाने का अधिकारी इंसानियत-इंसानियत से है यदि इंसानियत नहीं तो इंसान कहलाना सार्थक नहीं। इसलिए हे विवेकी! तू मनुष्य हुआ तो मनुष्यता का विचार कर और उसे सार्थक कर ले। कहीं तेरी ऐसे ही मृत्यु न हो जाए जैसे कीट-पतंगों की होती है यदि तेरी भी मृत्यु ऐसी हो गई तो फिर तूने जन्म लेकर क्या किया? अर्थात् कुछ नहीं किया क्योंकि जन्म पाकर कुछ कर लेना जीवन की सार्थकता है।

अतः हे भव्य! जन्म के पश्चात् हर व्यक्ति सोचता है मैं अच्छा काम करूँ, अच्छा बन जाऊँ, मुझे सब कुछ मिल जाए लेकिन बन्धुओं! तुम्हारी इच्छा से कुछ नहीं होता जो दैव में होता है वही होता है। सोचने से कुछ नहीं होता, कभी-कभी विचार, विचार में रह जाते हैं और जो करना चाहते हैं वह कुछ नहीं कर पाते हैं। लेकिन भाग्य के साथ-साथ पुरुषार्थ भी काम करता है। एक समझदार व्यक्ति पुरुषार्थ करता है और सफलता मिलने पर भाग्य मानता है तथा सफलता न मिलने पर दुर्भाग्य मानता है। अरहनाथ भगवान् की स्तुति में कहा भी है कि भवितव्यता ही सब कुछ नहीं है यदि पुरुषार्थ न करें तो कुछ नहीं हो सकता। जैसे किसान खेती न करे तो फसल कैसे आएगी? इसलिए पुरुषार्थ करना पहला काम है फिर सफलता मिले या नहीं, यह भाग्य है। कभी भाग्य के सहारे ही नहीं बैठे रहना चाहिए बल्कि पुरुषार्थ करना चाहिए। इसलिए सज्जन पुरुषार्थ के द्वारा रागद्वेष रूपी विष से रहित होते हुए मोह के प्रभाव से अतिशय विस्तार को प्राप्त होने वाले बहुत से विकल्पों को छोड़कर सदा सुखपूर्वक स्थिर रहें। यही मोक्ष का रास्ता है। **इसी भावना के साथ**

महावीर भगवान की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—22.12.09
वार—मंगलवार

मोह नहीं, धर्म करो

श्री पद्मनंदि मुनीन्द्र के मुखरूपी मेघ से उत्पन्न हुई जो अनित्य पञ्चाशत् रूप अद्वितीय अमृत की वर्षा विद्वज्जनों के लिए पुत्रादि के शोक रूपी अग्नि को शान्त करके सम्यग्ज्ञान रूप सस्य (फसल) को उत्पन्न करती है वह जयवन्त होवे।

बंधुओ! पूज्य आचार्य पद्मनंदि महाराज ने पूर्व गाथाओं में समझाया था कि संसार क्षणभंगुर है जिसमें विपत्ति के बाद सम्पत्ति और सम्पत्ति के बाद विपत्ति यह क्रम चलता रहता है लेकिन ज्ञानी इस परिस्थिति में हर्ष-विषाद नहीं करता। बल्कि परिणामों को सन्तुलित कर समता को पाने का प्रयत्न करता है। इसी बात को पूज्य आचार्य महाराज कह रहे हैं–

लोका गृहप्रियतमासुतजीवितादि वाताहतध्वजपटाग्रचलं समस्तम्।
व्यामोहमत्र परिहृत्य धनादिमित्रे धर्मे मतिं कुरुत किं बहुभिर्वचोभिः॥54॥

पुत्रादिशोक शिखिशान्तिकरी यतीन्द्र श्री पद्मनन्दिवदनाम्बुधरप्रसूतिः।
सद्बोधसस्यजननी जयतादनित्यपञ्चाशदुन्नतधियाममृतैकवृष्टिः॥55॥

अर्थ–हे भव्यजनो! अधिक कहने से क्या? जो गृह, स्त्री, पुत्र और जीवित आदि सब वायु से ताड़ित ध्वजा के वस्त्र के अग्रभाग के समान चंचल है उनके विषय में तथा धन एवं मित्र आदि के विषय में मोह को छोड़कर धर्म में बुद्धि को करो।

अर्थ–श्री पद्मनंदि मुनीन्द्र के मुखरूपी मेघ से उत्पन्न हुई जो अनित्य पञ्चाशत् (पचास श्लोकमय अनित्यता का प्रकरण) रूप अद्वितीय अमृत की वर्षा विद्वज्जनों के लिए पुत्रादि के शोक रूपी अग्नि को शान्त करके सम्यग्ज्ञान रूप सस्य (फसल) को उत्पन्न करती है वह जयवंत होंवे।

हे भव्यजनो! बहुत कहने से क्या? क्यों कि जितना भी व्याख्यान किया गया है, विस्तार किया गया है वह सब क्षणभंगुरता का है, नाशवान का है क्योंकि लोक में घर, स्त्री, पुत्र और जीवित आदि स्थायी नहीं है। वे सब वायु से ताडित वस्त्र की ध्वजा के अग्र भाग के समान चंचल है। जैसे ध्वज एक दिशा में स्थिर नहीं रहती है वह सदैव फहराती रहती थी। बंधुओ! प्राचीन संस्कृति-मन्दिरों के ऊपर कपड़े के ध्वज लगाने की रही है चाँदी पीतल आदि की नहीं। भरतचक्रवर्ती ने भी कैलाश पर्वत पर स्वर्ण के बड़े-बड़े विशाल जिनालय बनवाये जिसमें रत्नों की प्रतिमा स्थापित

की लेकिन ध्वज कपड़े की लगाई क्योंकि वह फहराती है चाँदी आदि की फहराती नहीं। वैरिंग डाल देने से भी वह घूम सकती है पर फहरा नहीं सकती। क्यों ध्वज का अर्थ ही है जो फहराये। प्रतिष्ठा ग्रन्थ में भी आया है कि जिस ध्वज से फट-फट की आवाज आये, जो फहराये वह शुभ है। भजन में भी कहा है—

लहर लहर लहराये केशरिया झण्डा जिनमत का-2
होजी होजी...

बंधुओ! ध्वज के फहराने का भी सिद्धान्त है कि मन्दिर शिखर गोल होते थे और उस शिखर के नीचे स्रोत पाठ होते थे तो उसके शब्द घूमते-घूमते शिखर पर पहुँच जाते थे तथा उस शिखर से लगा (ताँबे का) पाइप पोला रहता था जिससे यह आवाज उस पाइप से प्रवेश करती थी और शिखर के ऊपर स्वर्ण या ताँबे का कलश रहता था जिसमें विशेषता होती है कि वह ध्वनि को प्रतिध्वनित करता है जिससे शब्द निष्काशित होते हैं और ध्वज उन शब्दों को, चारों दिशाओं में फैला देता है जिससे सर्वत्र सुख-शान्ति एवं समृद्धि होती है, प्राणियों के कष्ट दूर होते हैं। इस प्रकार यह मन्त्र उच्चारण तथा ध्वज द्वारा प्रसारण का करने का फल है। आज लोगों का प्रमाद कि कौन-कौन बार ध्वज चढ़ाये इसलिए एक बार पीतल की लगा दी तो नहीं, प्रमाद छोड़ना चाहिए और कपड़े की ही ध्वजा लगाना चाहिए। पूजा ग्रन्थों में भी ध्वज पूजा का अंग है, जैन चैत्यालय का आभूषण है। चैत्यभक्ति में भी पढ़ते हैं—

देवा सुरेन्द्र नर नाग समर्चितेभ्यः, पापप्रणाशकर भव्य मनोहरेभ्यः।
घंटा ध्वाजादि परिवार विभूषितेभ्यो, नित्यं नमो जगति सर्वजिनालयेभ्यः ॥6॥

अर्थात् मैं उन जिनालय को नमस्कार करता हूँ जो घंटा, ध्वजा आदि परिवार से विभूषित हैं क्योंकि मन्दिर, घंटा-ध्वजा आदि वैभव से सम्पन्न होता है। साथ ही मन्दिर पर ध्वज फटी नहीं लगाना चाहिए क्योंकि फटा ध्वज अशुभ का प्रतीक है इसलिए जिस दिन ध्वज फटे, या निकल जाए, या उड़ जाए तुरन्त नवीन ध्वज लगाना चाहिए। क्योंकि ध्वज हमारी जय का प्रतीक है, हर्ष-खुशी का प्रतीक है। इसी प्रकार राजमहलों में भी ध्वज अखण्ड रूप से लगी रहती थी और ध्वज नहीं तो पराजय मानी जाती थी। संग्राम भूमि में भी ध्वज की रक्षा की जाती है क्यों यदि ध्वज टूट (खण्डित) जाए तो पराजय का प्रतीक है और जिसकी ध्वज फहरा रही है उसकी जय मानी जाती है। इसी प्रकार प्रत्येक देश की सीमा में भी ध्वज लगी रहती है। किंवदंति है कि अमेरिका के लोगों ने चन्द्र लोक सूर्य लोक, में जाकर अपना स्थान अंकन कर ध्वज लगाई। क्योंकि ध्वज विजय का प्रतीक है। ध्वज यदि फहरा रही है तो देश में खुशहाली है और यदि टूट गई है तो देश में उतनी समृद्धि नहीं जितनी होना चाहिए। क्योंकि ध्वज से देश, धर्म, राष्ट्र की पहचान होती है।

श्रेणिक चरित्र में भी उल्लेख मिलता है कि उपश्रेणिक ने ज्योतिषी से पूछा कि इस राज्य का राजा कौन होगा? ज्योतिषी ने कहा—जो पुत्र सिंहासन एवं छत्र की रक्षा करेगा वही राजा होगा

और उसकी परीक्षा हेतु राजमहल में आग लगाई गई। तो सभी अपनी-अपनी जान बचाकर भागे लेकिन राजकुमार श्रेणिक सिंहासन, और छत्र को लेकर वन की ओर भागे और राजकुमार श्रेणिक को राज्यतिलक कर सिंहासनारुढ़ किया गया।

इस प्रकार कपड़े की ध्वज का अग्र भाग फहराता रहता है कभी स्थिर नहीं रहता। इसी प्रकार संसार के सब पदार्थ अस्थिर हैं। इसलिये उनके विषय में तथा धन एवं मित्र आदि के विषय में मोह को छोड़कर धर्म में बुद्धि को करो। क्योंकि धन जिसे मनुष्यों का 11वाँ प्राण कहा जाता है उसके लिये व्यक्ति अपने प्राणों को छोड़ना पसन्द करता है लेकिन धन को छोड़ना पसन्द नहीं करता। इस प्रकार धन में मोह रखने वाले व्यक्ति मृत्यु की बेला आने पर अपनी छाती पर भी धन बाँध लेते हैं लेकिन वह धन इस शरीर के साथ यही रह जाता है और आत्मा शरीर से निकल जाती है। उसे सदैव चिन्ता रहती है कि कहीं धन चला न जाए, कोई खर्च न कर दे। लेकिन आचार्य महाराज कहते हैं कि हे भव्य! आज तुझे किसी पुण्य योग से मिला है तुम्हारी मृत्यु के बाद यह सब यही रह जाएगा। इसलिए तुम्हारी मृत्यु के बाद यह किसी दूसरे के साथ में जाए इससे अच्छा है स्वयं अपने हाथ से दान कर दो, जो तुम्हारे साथ जाएगा। क्योंकि धन का सदुपयोग जोड़ने से नहीं त्याग से है। यदि कोई गरीब है तो उसकी सहायता करो, कोई बीमार है उसका इलाज करवाओ, कोई पढ़-लिख नहीं पा रहा है उसके पढ़ने-लिखने की व्यवस्था करो; तीर्थ यात्रा नहीं कर पा रहा है तो तीर्थ यात्रा करवा दो। जिससे धन के प्रति मोह का विसर्जन होता है। इसी प्रकार मित्र के विषय में भी मोह का त्याग करना चाहिए क्योंकि मित्र आदि कभी किसी के साथ नहीं रहते हैं उनका भी वियोग होता है। अतः हे भव्य! मोह को छोड़कर धर्म में मन को लगाना चाहिए जिससे आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सके।

इस प्रकार अंत में पूज्य आचार्य महाराज इस अध्याय का समापन करते हुए कह रहे हैं कि **श्री पद्मनंदि मुनीन्द्र के मुखरूपी मेघ से उत्पन्न हुई जो अनित्य पञ्चाशत् रूप अद्वितीय अमृत की वर्षा विद्वज्जनों के लिए पुत्रादि के शोक रूपी अग्नि को शान्त करके सम्यग्ज्ञान रूप सस्य (फसल) को उत्पन्न करती है वह जयवन्त होंवे। इसी भावना के साथ**

महावीर भगवान की जय

स्थान—हिम्मत नगर (गुज.)
दिनांक—24.12.09
वार—गुरुवार

उपसर्ग विजेता परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागरजी महाराज द्वारा लिखित, सम्पादित एवं संकलित तथा श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित प्रवचन सत् साहित्य

पुष्प नं.	नाम	मूल्य

लेखन साहित्य - (संस्कृत टीका साहित्य)

1. **सर्वोदयी संस्कृत टीका (बारसाणुवेक्खा)** 150

परम पूज्य आचार्य कुंदकुंद स्वामी के 2000 वर्ष प्राचीन बारसाणुवेक्खा ग्रन्थ पर 'प्रथम बार' लिपिबद्ध की गई 'सर्वोदयी संस्कृत टीका'। जो कि 21वीं सदी की प्रथम विशद व्याख्यान सहित टीका है। जिसमें सभी अनुयोगों के अनेक ग्रन्थों से लिए गए आगमोक्त प्रमाणों के साथ मर्मस्पर्शी, विशद् तथा सरस, सुगम व्याकरण की परिशुद्धता के साथ-साथ अनेक उद्धरण व नवीन चिन्तनों को अनुपम लेखन शैली के माध्यम से आगम के अमृत को परोसा गया है। इस ग्रन्थ का विषय विश्लेषण आध्यात्मिक विकास का अमोघ सोपान है मात्र 3 माह 18 दिन में परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज द्वारा रचित यह कृति अपने सरलीकरण एवं भाषा सौष्ठव के कारण न केवल जनमानस अपितु बड़े-बड़े मूर्धन्य विद्वानों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनेगी।

2. **रत्नत्रय वर्धिनी संस्कृत टीका—(रयणसार)** 25

आर्ष परम्परा के उद्भट आचार्य श्री कुंद-कुंद महाराज द्वारा रचित 2000 वर्ष प्राचीन रयणसार जी ग्रन्थपर प्रथम बार अपनी अनुपम लेखन रचना चातुरी का प्रयोग कर 'रत्नत्रय वर्धिनी टीका' का प्रणयन कर परम पूज्य गणाचार्य श्री 108 विराग सागर जी महाराज ने अपने अंक परिश्रम व श्रुत भक्ति से प्रेरित होकर किया है जिसमें संस्कृत भाषा का प्रयोग सरल व स्वभाविक ढंग से कर उसे एक उत्कर्ष प्रदान किया है, जो आगमिक प्रमाणों से समन्वित, सुयुक्तिक, तथा गूढ़ात्मक विषयों का स्पष्टीकरण सहित है। जिसे अंकलेश्वर से प्रारम्भ कर मात्र 9 माह 15 दिन की अल्प अवधि में गाँधीनगर (गुजरात) को पुण्य धरा पर पूज्य आचार्य श्री ने इसे पूर्ण किया है तथा आगम के मंथन से प्राप्त सुन्दर चिन्तनों रूपी मक्खन को रत्नत्रय वर्धन हेतु हम भव्यों को परोस कर अनन्य उपकार किया है। यह टीका अपने सरलीकरण व ह्रदय स्पर्शी चिन्तनों के कारण दिग् दिगन्त में जयवन्त रहेगी।

(शोधपूर्ण साहित्य)

3. **शुद्धोपयोग** 40

शुद्धोपयोग विषयक भ्रान्तिओं का जड़ से उन्मूलन करने वाली, लगभग 51 शास्त्रों के अन्वेषणपूर्ण गहन-मनन चिन्तन तथा उनके लगभग 315 उद्धारणों से निर्मित आगमोक्त प्रमाणों से युक्त शोधपूर्ण कृति। जिस पर देश के विभिन्न प्रान्तों के लगभग 150 से अधिक मूर्धन्य विद्वानों के समीक्षात्मक श्लांघनीय अभिमत प्राप्त हुए। जिसके अध्ययन से विद्वान् जगत् को एक सम्यक्दिशा का बोध मिला।

4. **सम्यग्दर्शन** 35

द्वितीय शोधात्मक कृति, जिसमें सम्यग्दर्शन विषयक अनेकानेक शंका-समाधानों तथा आगमिक और अध्यात्म भाषा के द्वारा सराग-वीतराग, निश्चय-व्यवहार, प्रथमोपशम, द्वितियोपशम आदि लाक्षाणिक भेद-प्रभेद, उत्पत्ति आदि गहन विषयों का लगभग 54 आगमोपदिष्ट शास्त्रों के 322 उद्धरणों से पूरित, मिथ्यात्वांधकार का विनाश कर आत्मरुचि रूप सम्यग्दर्शन को उत्पन्न करने वाली अमूल्य कृति है।

5. **आगम चक्खू साहू** 22

दिगम्बर मुनियों की समाचार विधि, आर्यिका चर्या, पात्रभक्ति तथा यज्ञोपवीत सम्बन्धी विषयों पर देश-समाज-संघ की पंथ-परम्परा के हठाग्रह से दूर, लगभग 150 ग्रन्थों के सूक्ष्म अध्ययन से निकाले गए 257 उद्धरणों से परिपूर्ण संघस्थ साधु-साध्वियों की तत्त्ववार्ता रूप में एक अतिशयवान् आगमोक्त शोधपूर्ण कृति।

6. **सल्लेखना से समाधि** 30

आराधना, समाधि सल्लेखना विषयक लगभग 168 विषयों पर, भगवती आराधना आदि 25 शास्त्रों के खोजपूर्ण,

अनेकानेक उद्धरणों से युक्त, मृत्यु महोत्सव की कला सिखाने वाली शोधपूर्ण अद्‌भुत कृति। जिसमें क्षपक निर्यापकों तथा निर्यापकाचार्य की क्रियाविधि, सल्लेखना-आत्मघात नहीं आदि भ्रान्तियों का निर्सन करने वाली सुन्दर यह प्रस्तुत कृति अति प्रशंसनीय है।

7. संत साधना के प्रेरक प्रसंग 20

साधना काल के दौर में गुजरते महत्त्वपूर्ण निज अनुभवों, प्रसंगों का लेखन। जिसमें साधक के पूर्व व पश्चात् परिणति, आत्मप्रभावना से दूर धर्मप्रभावना ख्याति की भावना क्यों? कैसे होती है? इन सब वास्तविक स्थितियों का अनुभव परक लेखन है।

8. परम दिगम्बर जैन मुनि (हिन्दी, मराठी, कन्नड, तमिल, अंग्रेजी) 45

सम्प्रति काल में दक्षिणभारत जैसे देश के अनजान लोगों के लिए दिगम्बर संतों की अचल साधना-आराधना, परिचर्या, गरिमा-महिमा तथा उनके सम्मान व निंदा के फलों को परिज्ञान हेतु लगभग 68 ग्रन्थों के तथा अन्य पत्रकों के आलेखन कर अथाह कठोर प्रयास से इस शोधपूर्ण कृति का सृजन हुआ। जिसमें हिन्दू, इस्लाम, सिक्ख, बौद्ध आदि धर्मो ने भी दिगम्बर मुनियों का समय-समय पर सम्मान किया है इसका विवरण है।

9. सर्वोदयी दिगम्बर जैन धर्म (हिन्दी, अंग्रेजी) 30

यह कृति जैनधर्म का गागर में सागरवत् संक्षिप्त परिचय के साथ ग्रन्थों-पुराणों-कुरानों, उपनिषदों, इतिहास के पन्नों, प्राचीन-पुरातत्व विभागों, दर्शनों तथा विदेशी विद्वानों की दृष्टि में भी शाश्वत दिगम्बर जैन धर्म का सार्वभौमिक सम्मानीय अस्तित्व को उजागर करने वाली अलखक दीपस्तंभ सदृश। पूज्य गुरुवर द्वारा लिखित धर्म की असीम व्याख्याओं से परिपूर्ण है।

10. तीर्थंकर दिव्य दर्शन 30

हमारे तीर्थंकर भगवतों के जीवन चरित्र से परिचित/अवगत कराने वाली लगभग 200 प्रश्नों के समाधान एवं त्रेसठ शलाका पुरुषों के विषय में विस्तृत अनेक ग्रन्थों के प्रमाणों से पूर्ण, जानकारी के साथ यह एक अनमोल, सारगर्भित कृति है।

11. तीर्थंकर दर्शन

तीर्थंकर दर्शन पर ही आधारित 24 तीर्थंकरों के परिचय से परिपूर्ण लघु कृति है।

12. व्यसन विचार (हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी) 25

व्यसन मुक्ति के मार्ग का दिग्दर्श कराने वाले हिन्दी, मराठी, इंग्लिश, भाषाओं में रूपान्तरित सामायिक उत्थान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कृति है जिसमें व्यस्न से होने वाली हानियों तथा उनमें प्रसिद्ध व्यक्तियों की भयानक स्थितियों का चित्रण, आगम-विज्ञान तथा महापुरुषों के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।

13. फूल नहीं, है काटें

सप्त व्यसनों का ज्ञान, त्याग से लाभ-हानि, सम्बन्धित कथाओं का विवरण।

14. संस्कार सुरभि (हिन्दी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी) 18

बालकों के लौकिक विकास के साथ नैतिक विकास में सहायक एक सुरभि वत् बेहतरीन कृति है जिसमें माता-पिता एवं बालकों के जीवनोपयोगी दैनिक चर्या तथा कर्त्तव्यों, संस्कारों का सम्यक् प्रकार से बोध कराया गया है।

15. जिनेन्द्र दर्शन, जिनेन्द्र पूजन 10

एक श्रावकोचित् प्रभावक कृति, जिसमें सद्‌गृहस्थ के आवश्यक करने योग्य भगवान् के दर्शन-पूजन की सागोपांग विधि का वर्णन है।

16. आध्यात्मिक शंका-समाधान 30

शोधात्मक/खोजात्मक आयामों से परिपूर्ण, पक्षव्यामोह, दुराग्रह से दूर आगमोक्त अध्यात्म में प्रवेश कराने वाली एक लघु कुंजीवत्, साधनोपयोगी शोधपूर्ण कृति है। जिसमें नय, निश्चयनय, व्यवहारनय आदि 12 विषयों का पूर्ण विवरण 358 प्रश्नों के समाधान रूप में लगभग 42 शास्त्रों के अन्वेषण मनन से किया गया है।

17. आध्यात्मिक तत्त्व-चर्चा 18

आगम और अध्यात्म के विवादग्रस्त विषयों पर तुलनात्मक अध्ययन रूप में एक वार्ता। जिसमें मुख्यतः मोक्ष मार्ग विषयक 17, सम्यक्त्व विषयक 45, स्वात्मानुभूति विषयक 56-62 तथा स्वरुपाचरण विषयक 63-83,

शंकाओं का समाधान काल्पनिक युक्ति से दूर, आगम प्रमाणों से किया गया है। इस कृति का उद्देश्य शिष्यों तथा साधकों को ठोस ज्ञान से परिपक्व कराना है।

18. श्रमण आहार चर्या 40

श्रावकों के मुख्य कर्तव्य दान विषयक सभी शोधात्मक गूढ़, आवश्यक जैसे सोला, पात्र, दान, देय, दाता, विधि, चौका, मर्यादा, जल गालन विधि, चौका सम्बन्धी आदि आवश्यक विषयों पर आगमिक संदर्भो द्वारा अन्वेषणात्मक लेखन।

(चिंतन साहित्य)

19. चैतन्य चिन्तन भाग-1 (हिन्दी, अंग्रेजी) 15

भाग-2 (हिन्दी, अंग्रेजी) 15

भाग-3 (हिन्दी, अंग्रेजी) 15

साधकोचित् पूज्य गुरुवर के निज आत्मचिन्तन की सरिता से उद्भूत हुए रत्नों सम चिन्तवनों का लेखन।

(बालोपयोगी साहित्य)

20. बाल विज्ञान भाग-1 (हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड, मराठी, गुजराती) 10

भाग-2 (हिन्दी, अंग्रेजी) 10 भाग-3 10 भाग-4 10

धर्म परिज्ञान के प्रथम सोपान के रूप में बालकों तथा युवाओं के लिए प्रारम्भिक क्रमशः जानकारी से परिपूर्ण कृति है। जो हिन्दी, इंग्लिश, मराठी, कन्नड, गुजराती भाषा में रूपान्तरित हो जन-जन में लोकप्रिय है।

21. कर्म विज्ञान भाग-1 (हिन्दी, अंग्रेजी) 40 भाग-2 44 भाग-3 44

हिन्दी, इंग्लिश भाषा में उपलब्ध, करणानुयोग में प्रवेश करने के इच्छुक स्वाध्यायप्रेमियों के लिए यह प्रथम पायरी है जिसमें कर्मसिद्धान्त विषयक प्रारम्भिक विषयों का सरल ढंग से लेखन किया गया है।

(कथा साहित्य)

22. नैतिक कथा मंजूषा भाग-1 (हिन्दी, अंग्रेजी) 30

भाग-2 (हिन्दी, अंग्रेजी) 30

आगमोक्त रुचिकर श्रेणिक चारित्र पर आधारित कथाओं का जनमानस में परिज्ञान कराने के लिए विभिन्न शास्त्रों से संकलित कर शिक्षाप्रद-बोधपूर्ण रूप में लिखी गई कथाओं का संग्रह। जिससे समाज में नैतिकता-धार्मिकता का विकास हो सके।

(अनुवाद साहित्य)

23. वारसाणुवेक्खा 100

आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी रचित बारसाणुवेक्खा ग्रन्थ का सरल सुबोध अनुवाद।

24. परमरत्नार्चना संग्रह 20

विनयपाठ से अर्घावलि, विसर्जन पाठ तक सम्पूर्ण पूजाविधि का अर्थ-अनुवाद।

25. सामायिक पाठ (हिन्दी, गुजराती) 30

सम्पूर्ण आद्योपांत सामायिक विधि एवं सामायिक पाठ का अन्वयार्थ तथा भावार्थ।

(पद्य साहित्य)

26. भावों के विशुद्ध क्षण 15

साधना काल के अमूल्य विशुद्ध अनुभवों-क्षणों का पद्यरचना लेखन।

27. मुक्ताञ्जलि— भाग-1 10 भाग-2 10

अनेकानेक शिक्षापूर्ण मुक्तकों के लेखन का संग्रह।

28. नव देवता निर्वाण क्षेत्र पूजा 10

पूज्य गुरुवर द्वारा रचित नवदेवता निर्वाण क्षेत्र पूजा।

(संकलित/सम्पादित साहित्य)

29. साधना से समाधि 20

समाधि सल्लेखना के

30. **विमल नित्य पाठावलि** 80
जिनेन्द्र पूजन सामायिक, प्रतिक्रमण आदि विषयों का संक्षिप्त रूप से संकलन।

31. **आराधना** 35
श्रमणों व श्रावकों द्वारा किये जाने वाले नित्योपयोगी संस्कृत के पाठों का संकलन।

32. **सुभाषित सहस्रं** 40
नैतिक व धार्मिक मर्मों से परिपूर्ण सहस्र सुभाषित गाथाओं का संकलन।

33. **आप्त अर्चना**
जिनेन्द्र पूजन-पाठ आदि का संकलन।

34. **मानतुंग की अमर भक्ति** (सचित्र भक्तामर) 65
भक्तामर स्तोत्र के काव्यों, यन्त्रों-मन्त्रों के सचित्र सुन्दर चित्रण।

35. **साधना** 30
जनोपयोगी हिन्दीभाषा के अनेक पाठों का संकलन।

36. **अनुप्रेक्षा** 10
आत्मचिन्तनोपयोगी अनित्यादि बारह भावनाओं की गाथाओं का अर्थ सहित संकलन।

37. **जिनागम दीप** 251
आगम के नित्य पठनीय 25 ग्रन्थों का अर्थ सहित सम्पादन।

38. **सम्मेद शिखर विधान** –
तीर्थराज सम्मेदशिखर जी विधान का संकलन।

39. **चारित्र शुद्धि व्रत** 25
चारित्रशुद्धि व्रत की पूजा, जाप तथा कथादि की जानकारी का संकलन।

40. **करुणामूर्ति सन्त** 100
करुणा अवतारी परम पूज्य आचार्यश्री 108 विमलसागर जी महाराज
की जीवनी का संकलन।

41. **तपस्वी सम्राट**
तपस्वी सम्राट प.पू. आचार्य श्री सन्मति सागर जी महाराज के जीवन का लेखन। 10

42. **यज्ञोपवीत विधि**
यज्ञोपवीत संस्कार विधि की उपयोगिता, महिमा तथा ग्रहण विधि का संकलन।

43. **साधना के सोपान** -

44. **पदम् पुराण प्रश्नोत्तरी** 100
पद्‌पपुराण ग्रंथ पर आधारित प्रश्न-उत्तररूप में ग्रंथ का सुन्दर विस्तृतिकरण।
लघु समय में सम्पूर्ण ग्रंथ की जानने की उत्तमविधि।

45. **स्तोत्र भारती** 50
श्रमण एवं श्रावकों के प्रतिदिन उपयोग आने वाले महत्वपूर्ण संस्कृत स्तोत्रों
का अन्वयार्थ तथा भावार्थ सहित सुन्दर संकलन एवं सम्पादन

(एकांकी/नाटक साहित्य)

46. **सत्यमित्र-सत्यदृष्टि**
पूज्य गुरुवर द्वारा रचित पात्रों की मुख्यता से नाटक का लेखन। -

47. **प्रद्युम्न हरण**
प्रद्युम्न हरण, नामक नाटक का लेखन, जिसमें पात्रों के पाठकों का अलग-अलग विवरण है।

(पूज्य आचार्य श्री पर आधारित साहित्य)

48. **विरागाभिवंदन अभिनंदन भाग-1, 2** -
सर्वाधिक पृष्ठों वाला, विभिन्न स्तरीय साधकों, भक्तगणों आदि के पूज्य गुरुवर की आलौकिक व्यक्तित्व छटा पर हृदयोद्‌गारों का संकलित, सचित्र/राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा वर्ष की बेला में प्रकाशित वृहद् दर्पण जीवनी।

49. निस्पृही संत भाग-1-2 60
जन्म से सम्प्रतिकाल तक के सम्पूर्ण जीवन-चरित्र का साहित्यतिक सुबोध लेखन।

50. विराग सेतु (महाकाव्य) (हिन्दी, गुजराती, प्राकृत) भाग-1 100
विराग सेतु (महाकाव्य) भाग-1-2
प्राकृत भाषा की पद्यरचना से गुंथित पूज्य गुरुवर के आदर्शमयी जीवन पर महाकाव्यमयी रचना।

51. संत काव्य की परम्परा में आचार्य विरागसागर 65
पूज्य गुरुवर के व्यक्तित्व व कृतित्व पर डी. लिट् उपाधि से पुरस्कृत डॉ. लोकेश खरे की एक अद्भुत शोधपूर्ण कृति।

52. कमल के महाकमल -
अरविन्द से आचार्य विरागसागर तक की जीवन यात्रा का लघु प्रभावक लेखन।

53. घटनायें ये जीवन की 80
सम्पूर्ण जीवन में घटी अनेकानेक रोचक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का लेखन।

54. दिगम्बरत्व के चितेरे 150
सचित्र, बालगोपाल को आकर्षित करने वाला कॉमिक्स रूप में जीवन चरित्र।

55. विराग सिंधु की उर्मिया 18
पूज्य गुरुवर की अनुपम जीवनी पर आधारित सरस-सरस काव्यरचना।

56. विराग वाटिका 180
पूज्य गुरुवर द्वारा दीक्षित शिष्य-प्रशिष्य सुमनों का तथा पूज्य गुरुवर से संबंधित महत्त्वपूर्ण विषयों का सविस्तृत संकलन चित्र सहित परिचय।

57. भक्ति की झंकार भाग-1, 2, 3 25
गुरुभक्ति से पूरित धार्मिक बहुताधिक भजन-गीतों का संग्रह

58 विरागार्चना 40
पू. आचार्यश्री के शिष्यों-शिष्याओं तथा श्रावक एवं श्राविकाओं द्वारा उनके हृदय से निसृत भक्ति रस से युक्त पूजा, विधान, आरती आदि का संकलन।

59. विराग काव्याञ्जलि -
पू. गुरुवर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व युक्त आदर्शमयी जीवन पर ज्ञानचन्दजी विऽरुआ (सागर) द्वारा रचित पद्म रचना।

प्रवचन साहित्य (पूज्य गुरुवर के प्रवचन से)

60. धर्म पीयूष 30
दशलक्षण पर्व में उत्तमक्षमादि दस धर्मों पर मुखरित पीयूष वाणी का संकलन।

61. ऐसे चलो मिलेगी राह 40
दिशाविहीन जीवन को सम्यक् दिशा बोध कराने वाले मार्मिक प्रवचनों का संकलन।

62. दूर नहीं है मंजिल 30
मोक्षपथ के पथिकों को पाथेय वत् प्रवचनों का संकलन।

63. उड़ रे पंछी 10
पूज्य गुरुवर के मुखारविंद से गुंजित प्रवचनों का संकलन।

64. तीर्थंकर वर्धमान 15
भगवान् महावीर स्वामी का विभिन्न दृष्टियों एवं आगम के परिप्रेक्ष्य में जीवन परिचय।

65. पहले देव-पूजा फिर काम दूजा 25
जिनेन्द्र प्रभु की पूजा, अर्चनाविधि के महत्त्व को उजागर करने वाले प्रवचनों का संकलन।

66. तीर्थंकर ऐसे बनो 60
तीर्थंकर प्रकृति बंध में हेतु सोलहकारण भावनाओं का संकलित सविस्तृत प्रवचन।

67. तट की ओर 10
हृदयस्पर्शी, जीवन की सच्चाई का दिग्दर्श कराने वाले प्रवचनों का संकलन।

68. सिर्फ दो प्रवचन 10

महत्त्वपूर्ण विशेष प्रवचनों का संकलन।

69. इष्टोपदेश

अध्यात्मप्रेमियों के आध्यात्मिकता के विकास में सहायक इष्टोपदेश ग्रन्थ पर संकलित प्रवचन।

70. मानतुंग की अमरभक्ति 150

भक्तामर स्तोत्र पर भक्ति से ओतप्रोत, भावभीने प्रवचनों का संकलन।

71. कल्याणक महोत्सव 20

अनेकानेक स्थानों पर हुए गर्भादि कल्याणकों के विशेष प्रवचनों का संग्रहीकरण।

72. दान तीर्थ 20

आहारदान की आद्योपांत महिमा, विधि, गुण, दोष, पात्र, फल आदि का वर्णन।

73. धर्म के दश सोपान 20

मूढ़बिद्री में हुए दशधर्मों के प्रवचनों का सरस-संक्षिप्त संकलन।

74. जीवों पर दया करो, शुद्ध शाकाहार करो 20

अहिंसा शाकाहार सम्मेलनों में हुए आगमिक व वैज्ञानिक तुलनात्मक प्रवचनों का संकलन।

75. बुराईयाँ ही जेल, अच्छाईयाँ ही मुक्ति 10

विभिन्न जेलों में हुए, अपराध बोध कराने वाले मार्मिक प्रवचनों का संकलन

76. प्रवचन वर्षा 15

महत्त्वपूर्ण वर्षभर के जैन पर्वों पर होने वाले उपदेशामृत का संकलन।

77. कर्तव्य मेव कर्तव्यं 25

श्रावकों के षडावश्यक कर्तव्यों पर आधारित हृदय उद्गारों का संकलन।

78. श्रद्धा प्रसून 25

मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन के आठ अगों के प्रवचनों का संकलन।

79. मोक्ष की राह 25

मोक्षपथिकों को मोक्षपथ का पाथेय प्रदान करने रूप प्रवचनों का संकलन।

80. विरागामृत भाग 1-2 30

पूज्य गुरुवर की अमृतवाणी से मुखरित अनेक विषयों पर संकलित उद्धरण।

81. समाधि तंत्र-प्रवचन 108

अध्यात्मरस से परिपूर्ण समाधि ग्रन्थ पर हुए सविस्तृत प्रवचनों का संकलन।

82. समयोचित् शिक्षायें भाग-1 20 भाग-2 20 भाग-3 20

व्यक्तित्व विकास में कारण, समय-समय पर दी गई अमिट शिक्षाओं का संकलन।

83. विराग मंथन (हिन्दी, अंग्रेजी) 10

लघु, पर ज्ञान को विकसित करने वाली आकर्षित उद्धरणों से पूरित कृति।

84. रजत पुष्प 51

सद्गुणों के विकासादि विषयों से परिपूर्ण जनोपयोगी प्रवचनों का संकलन।

85. कहानी सबसे सुहानी 30

पूज्य गुरुवर के प्रवचनों में से संकलित मनभावन कहानियों का संकलन।

86. अक्षय निधि (हिन्दी, अंग्रेजी) 20

हृदय पर सीधा प्रभाव करने वाले गूढ़रहस्यात्मक प्रवचनों का संकलन।

87. संस्कार की लहरें 20

नैतिक तथा धार्मिक सुसंस्कारों की सुरभि से महकित प्रवचनों का संकलन।

88. चलो चले प्रभु दर्शन को 30

आगमिक तथा वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर प्रभुदर्शन की आद्योपांत विधि रूप प्रवचन।

89. आध्यात्मिक धर्म प्रवचन 30

दशलक्षण धर्म से सम्बन्धित गाथाओं, कहानियों, मुक्तकों तथा उद्धरणों का विस्तृत प्रवचन संग्रह।

90. **घर-घर की कहानी** 30
पारिवारिक एक-दूसरे सदस्यों के कर्तव्यबोध कराने वाले प्रवचनों का संकलन।

91. **वारसाणुवेक्खा प्रवचन** 100
वैराग्यभाव को वृद्धिंगत करने वाले अनित्यादि भावनाओं पर आधारित प्रवचनों का संकलन।

92. **पर्यूषण निधि** 15
आत्म रुचि को उत्तमक्षमादि भावों की ओर प्रेरित करने वाले प्रेरक प्रवचनों का संकलन।

93. **पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 1. धर्मोपदेशामृतम्** 200
इस प्रवचन माला में 198 श्लोकों पर प्रवचन है जिसमें उपदेश का अधिकारी कौन, निश्चय-व्यवाहर धर्म का स्वरूप, गृहस्थ-मुनि धर्म का उपदेश किसे, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र आदि अनेक प्रकार से धर्म की महिमा की प्रकट किया गया है।

94. **पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 2. दानोपदेशम्** 40
दान प्रवर्तन, दान की आवश्यकता, महत्व दान के पात्र, नवधाभक्ति, पात्र के भेद, पात्रदान, कुपात्रदान तथा अपात्रदान के फल तथा गृहस्थयों को अवश्य ही दान करने की प्रेरणा देने वाले वैराग्यमय भावों का संकलन।

95. **पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 3. अनित्यपञ्चाशत्** 50
55 श्लोकों पर प्रवचनों के माध्यम से क्षणिक, नश्वर स्त्री-पुत्र, शरीर आदि की आरिस्थरता को दिखलाकर उनके संयोग-विनोग में हर्ष और विषाद भावों के परित्याग की प्रेरणा प्रदान करने वाले वैराग्यमय भावों का संकलन।

96. **पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 4-5. एकत्व सप्तति तथा यतिभावनाष्टकम्** 85
चतुर्थ एकत्वसप्तति अधिकार में चिदानंदस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति का उपाय, चेतन तत्व अनेक-धर्मात्मिक है, द्वैत-अद्वैत बुद्धि का फल, शुद्धोपयोग साम्यभाव तथा यतिभावनाष्टक में मुनियों की कठिन चर्या, योगधारण विधि, उपसर्गों में स्थिरता आदि का सुन्दर प्रवचनों के माध्यम से प्रस्तुतिकरण संकलन है।

97. **पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 6. उपासक संस्कारः** 60
सकल तथा देशव्रतों का स्वरूप, भेद, स्वामियों का निर्देश छह-आवश्यक का स्वरूप तथा सात व्यसनों के त्याग की उपदेश तथा गृहस्थ को निरंतर मुनिपद धारण करने की प्रेरणा को देने वाले अनुपम, श्लाघनीय प्रवचनों का संकलन।

98. **पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 7. देशव्रतोद्योतनम्** 60
सम्यग्दृष्टि एवं सम्यग्दर्शन की महिमा, अष्ट मूलगुण धारण करने की आज्ञा, आहाराचि चार प्राकर के दान करने की प्रेरणा, देवदर्शन का महत्व, चार पुरुषार्थों में मोक्ष पुरुषार्थ करने का उपदेश तथा गृहस्थ धर्मों पर आधारित अनुकरणीय प्रवचनों का संकलन।

99. **पद्मनंदि पंचविंशतिः अधिकार 8-9 सिद्धस्तुति एवं आलोचना** 85
सिद्ध भगवान के अनंतगुणों का वर्णन, उनकी स्तुति, गुणगान का फल, सिद्धत्व पद प्राप्ति के उपाय और जीवन में आलोचना के द्वारा पापकर्म को कैसे कम किया जा सकता है, आलोचना किससे करें, किससे न करें आदि महत्वपूर्ण विषयों पर आधारित प्रवचनों का संकलन।

100. **आचार्य विराग सागर साहित्य दर्शन** 10
पूज्य गुरुदेव से सम्बन्धित सकल साहित्य का लघु परिचय, प्राप्ति स्थान, विरागवाणी सम्पर्क सूत्र, SMS नम्बर कैसे Join करें, निर्देश, V.D.O. तथा O.D.O. सी.डी. के नाम, विशेष जानकारी के लिए वेबसाईड, विरागोदय क्षेत्र संबंधी जानकारी आदि का निर्देश।

101. **मेरी भावना प्रवचन** 50
पं. जुगलकिशोर मुख्तार द्वारा रचित मेरी भावना पर लोक जनकल्याण, विश्वमैत्री, भाईचारे, नैतिक-धार्मिक अनेक प्रकार की हृदय स्पर्शी मार्मिक हृदय से स्फुटित प्रवचनों का संकलन।

102. **फॉर यूथ प्रोग्रेस** 22
नवीन युवा पीढ़ी को धार्मिक क्षेत्र में अग्रसर करने, उनके प्रगति उत्थान के प्रभावक सूत्रों तथा जन-जागृति धार्मिक रुचि को प्रकट करने वाले अति प्रभावक प्रवचनों का संकलन।

103. रत्नकरणडक श्रावकाचार प्रवचन भाग-1 100
श्रावकोचित महत्वपूर्ण विषयों पर श्लाकों के आधार पर मुखरित प्रवचनों का संकलन।

104. सामायिक पाठ प्रवचन- 85
सामायिक की सम्पूर्ण क्रियाविधि, समायिक कैसे कहाँ, कब आदि अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर अनुगूंजित आध्यात्मिक प्रवचनों का संकलन।

105. अपने नैतिक कर्त्तव्य 30
माता-पिता, पिता-पुत्र, भाई-भाई, सास-बहु, भाई-बहन, पति-बहिन आदि गृहस्थिक संबंधों को एकता-संगठन, आपसी प्रेमभाव में बांधने वाले वसुधैवकुटुम्बकं की सूक्ति चरितार्थ करने वाले प्रवचन।

106. क्यूं इतना अभिमान है..... 30
अष्टमदों पर जीवन को नम्रशील, निरभिमान आदि गुणों से पूरित करने वाले प्राजंल प्रवचनों का संकलन।

107. सिद्धों का खजाना 30
सिद्ध भगवान के अनंतज्ञान आदि अष्टगुणों पर आधारित निज आत्म वैभव खजाने का परिज्ञान करने वाले प्रवचनों का संकलन।

108. अपनी-अपनी आभायें..... लेश्याएँ 90
कृष्ण आदि अशुभ तथा पीत आदि शुभ लेश्याओं युक्त प्राणी मात्र की परिणीत का आभाष करने वाले प्रवचनों तथा अन्यमतों तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लेश्या विषयक सुन्दर संकलन।

109. ऐसे घर को स्वर्ग बनायें
भौतिक युग में बिगड़ते संबंधों को घर-घ्रार को अशांति को दूर करने वाले नये आयामों युक्त प्रवचनों का संकलन।

ग्रंथ संगोष्ठी एवं स्मारिका साहित्य

1. **सम्यग्दर्शन संगोष्ठी - पू.आचार्य श्री द्वारा लिखित शोधपुर्ण ग्रंथ सम्यग्दर्शन पर आयोजित गाथा 2010 में संगोष्ठी में मुनिराजों, आर्यिकाओं, ब्र. भईया एवं अनेक विद्वानों द्वारा पढ़ गये महत्त्वपूर्ण आलेखें का संकलन।**
2. **सर्वोदया टीका अनुशीलन - पू. गुरुवर द्वारा 23.02.2008 नागेवाड़ी (सांगली) से प्रारम्भ कर 08/06/2008 क्षुतपंचमी, नंदीश्वर जिनालय बोरीवली, मुम्बई में मात्र 108 दिनों में पूर्ण होने वाली कुन्दकुन्द स्वामी कृत बारसाणुवेक्खा ग्रंथ पर प्रथम संस्कृत सर्वोदया टीका का विमोचन लोकार्पण एवं 200 साधु-साध्वियों तथा शताधिक विद्वानों की उपस्थिति में आयोजित राष्ट्रीय विद्वत, संगोष्ठी में पढ़े गये महत्त्वपूर्ण आलेखों का संकलन एवं चित्रण।**
3. **बीना स्मारिका 1994 - में हुए प्रभावनापूर्ण बीना चातुर्मास की यादगारों का संकलन।**
4. **विराग-अनुभूति - लोहारिया 2010 में हुए भव्य चातुर्मास की सुन्दर-सुन्दर अनुभूति युक्त, प्रवचनों, प्रोग्रामों के चित्रों तथा भक्तों की भावनाञ्जलि का संकलन।**
5. **विराग-प्रभावना - अजमेर 2011 चातुर्मास की अनोखी मनभावन स्मृतियों का प्रवचन, प्रोग्राम, चित्रों, शिविर आदि तथा नगर में हुई धर्मयुक्त आकर्षण प्रभावनापूर्ण भक्तों की भावनाओं का संकलन।**
6. **स्वर्णिम विरागाञ्जलि - स्वर्णिम जन्म जयन्ती वर्ष का स्वर्णिम आयोजनों, स्मृतियों से परिपूर्ण जयपुर गुलाबी नगरी में हुए ऐतिहासिक स्वर्णिम 2012 चातुर्मास की स्वर्णिम भावभीनी झलकियाँ, स्मृतियों का संकलन।**
7. **विराग पुष्प पुञ्ज- इन्दौर 2013 चातुर्मास में उपलब्धि साधु-साध्वियों के परिचय तथा अन्य विधि का लघु रूप में सागर में सागर की तरह पू. गुरुवर द्वारा लिखित वर्णन।**

साहित्य प्राप्ति स्थान

1. **श्री सम्यक्ज्ञान विराग विद्यापीठ**
चैत्यालय मंदिर, बताशा बाजार, भिण्ड (म.प्र.), सम्पर्क सूत्र : पं. वीरेन्द्र जैन (मो. 9754803220)
2. **आचार्य श्री विराग सागर विद्यापीठ** (बी.एड.कॉलेज) पुष्प विहार कॉलोनी, बीना-470113, जिला-सागर (म.प्र.)
3. **विराग फाउण्डेशन** द्वारा-श्री अरुण कोटड़िया, 11-A विक्रम नगर सोसायटी, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380013 (गुजरात)
4. **श्री भूपेन्द्र शांतिलाल शाह**, 12-B, वर्धमान सोसायटी, डेरी रोड़, मेहसाना-2 (गुजरात) सम्पर्क सूत्र- श्री भूपेन्द्र शाह, (मो. 9898494914, 9829452020)

5. **विराग महिला मंच**, बोरीवली, मुंम्बई (महा.)
6. **श्रीमती पुष्पा पाटनी,** 574, शांतिनगर, जैन मंदिर के सामने, गोपालपुर वायपास, जयपुर (राज.) मो. 09460765050
7. **श्री मनीष पाटनी** नया बाजार, 54, धर्मकांटा के पास, अजमेर (राज.) मो. 09414002306
8. **श्री तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, विष्णु व्यास** मोहता हॉस्पिटल के पास, मोहता चौक, बीकानेर (राज.) मो. 9314962474/75
9. **राष्ट्रीय विराग युवा मंच**, अध्यक्ष - श्री राजेश जैन, अंजनी नगर, इन्दौर मो. 09425316970
10. **राष्ट्रीय युवा मंच अध्यक्ष** - श्री पंकज पाटनी, 72, विंध्याचल नगर, एरोड्रम रोड, इन्दौर मो. 09425476665
11. **डॉ. महेन्द्र कुमार जैन 'मनुज'** 22/2, रामगंज, जिन्सी, इन्दौर-7 मो. 09826091247

Audio C.D.

- आचार्य पदारोहण द्रोणगिरि
- उपसर्ग पर उत्कर्ष की यात्रा
- व्यसन मुक्ति शाकाहार अभियान
- ज्योतिर्लोक और चन्द्रयात्रा
- स्कूल प्रवचन
- अहिंसा रैली
- 25 दीक्षायें-श्रवण बेलगोला
- 8 दीक्षायें-गिरनार जी
- 26 दीक्षायें-उदयपुर
- हे गणाचार्य मेरे तरस रहे दो नैन
- 25 दीक्षायें जयपुर
- देश के नाम कंलक बूचड़खाने
- गुरु नाम की धूम मची है
- प्रथम सूरि बुदेलखण्डके
- जियो हजारों साल गुरुवर
- राष्ट्रीय रजत मुनि दीक्षा जयन्ती ऊदगाँव
- आर्यिका विशान्तश्री माताजी, समाधि
- लोक और मध्यलोक
- जेल प्रवचन
- शाकाहार रैली
- न्यायालय में प्रवचन
- 11 दीक्षायें-गाँधी नगर
- 11 दीक्षायें-किशनगढ़
- कैसे बनाये घर को स्वर्ग
- 7 दीक्षायें- इन्दौर
- सिद्धांत एवं आध्यात्मिक प्रवचन
- पद्मनन्दी पञ्चविंशति (भाग 1-14 तक)
- स्वर्णिम जयंती याद रहेगी।
- मेरे मन वीणा के तारे
- विराग स्वर्णोत्सव